DATA BASE COMPLETED

चालुक्य और राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० एस० के० जायसवाल

रीडर

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधार्थिनी

प्रतिभा सिंह

Forwarded
28.4.09

Professor & Head
Department of Ancient Indian
History & Archaeology
University of Lucknow

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ

2009

RH
934.007
P 19 C

515041

5~~2004~~1

LUCKNOW UNIVERSITY
TAGORE LIBRARY
LUCKNOW

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रतिभा सिंह** ने प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से **'चालुक्य और राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन'** शीर्षक पर मेरे निर्देशन में अपना शोध प्रस्तुत किया है। जहां तक मेरी जानकारी है यह लेखिका का प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक स्रोतों पर आधारित महत्वपूर्ण प्रयास है, जिससे अनेक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घटित हुए हैं।

(S.K. JAISWAL)

निर्देशक
प्राचीन भारतीय इतिहास
एवं
पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ।

विभागाध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास
एवं
पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ।

आभार

पहले मैं लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ जिसका भारतवर्ष में अपना एक विशिष्ट स्थान है, की ऋणी हूँ, जहां पर मुझे शोध कार्य के लिए एक उचित एवं उपयोगी वातावरण मिला। जिसका प्रतिफल रहा कि शोध कार्य जैसे कठिनतम कार्य की राह मेरे लिए आसान हो गयी। जहां - जहां भी इस कार्य में कठिनाई एवं असुविधा महसूस हुई, विश्वविद्यालय द्वारा सही दिशानिर्देश एवं मार्गदर्शन और अपार सुविधाएं प्रदान की गयीं जिससे मैं यह शोध कार्य पूरा करने में समर्थ हो पायीं।

उल्लेखनीय है कि शोध कार्य के सफल निष्पादन के लिए एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है, जिनमें शोध - प्रबन्धन के समस्त आवश्यक गुण विद्यमान् हों। डॉ0 एस0के0 जायसवाल जी, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग एक ऐसे ही सद्गुरू मार्गदर्शक हैं, जिनके मार्गदर्शन में मुझे शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ, मैं उनके प्रति अपना आभार एवं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिन्होंने शोध ग्रन्थ प्रस्तुत करने में सदैव प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं उचित मार्गदर्शन दिया। मैं उनकी धर्म पत्नी श्रीमती मुक्ता जायसवाल जी की भी सदैव आभारी रहूँगी जिन्होंने

मुझे समय – समय पर मानसिक प्रोत्साहन एवं उत्साह प्रदान किया। मैं जीवन भर उनकी ऋणी रहूँगी।

इसी के साथ मैं विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग के प्रति और इस विभाग के प्रो0 डी0पी0 तिवारी, विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग एवं कला संकायाध्यक्ष, प्रो0 एस0एन0 कपूर, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, डॉ0 अमर सिंह एवं डॉ0 प्रशान्त श्रीवास्तव एवं सभी उन अध्यापकों के प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत विषय पर शोध कार्य करने में मेरा सदैव उत्साहवर्धन किया। इसके लिए मैं इनके प्रति आभारी हूँ और सदैव रहूँगी।

अपने शोध कार्य के दौरान मैंने लखनऊ विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, आचार्य नरेन्द्र देव पुस्तकालय, लखनऊ, अमीरुद्दौला पुस्तकालय, लखनऊ संस्कृत परिषद् पुस्तकालय, लखनऊ में प्रस्तुत विषय से संबंधित उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया है। मैं उपर्युक्त सभी पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं अन्य कर्मचारियों द्वारा प्रदान किये गये महत्वपूर्ण सहयोग के लिए हमेशा उनकी ऋणी रहूँगी।

सम्यक् कार्य निष्पादन के लिए मैं अपने पारिवारिक वातावरण की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए अपनी स्नेहमयी माताजी जिन्होंने मुझे भावनात्मक संरक्षण प्रदान किया, की विशेष ऋणी हूँ और आभार प्रकट करती हूँ। यदि मेरे पिता श्री राज़ नरायण सिंह जी, अनुभाग अधिकारी, उ.प्र. शासन, लखनऊ का सहयोग मुझे प्राप्त न हुआ होता तो यह शोध कार्य कभी पूर्ण नहीं हो पाता। अस्तु मैं अपने माता – पिता जी का आभार प्रकट करती हूँ। प्रस्तुत शोध कार्य में टंकण के लिए मैं श्री मारुति पाण्डेय की विशेष रुप से आभारी हूँ, जिन्होंने टंकण कार्य में काफी सावधानी बरती, इसके बावजूद भी यदि टंकण संबंधी कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं उसके लिए क्षमाप्रार्थिनी हूँ।

मैं उन सभी विद्वानों और उनकी कृतियों की आभारी भी हूँ जिनसे मुझे प्रस्तुत शोध कार्य हेतु पूरी मदद मिली। इस संदर्भ में, मैं ए०एस० अलतेकर, वी०पी० देसाई, नीलकण्ठ शास्त्री आदि की विशेष रुप से ऋणी हूँ, जिनकी कृतियां हमारे कार्य में मूर्तरुप प्रदान करने में काफी सहायक सिद्ध हुई।

प्रतिभा सिंह

प्रतिभा सिंह

संकेत सूची

1.	अग्नि0 पु0	अग्निपुराण
2.	अथर्व0	अथर्ववेद
3.	ऐ0ब्रा0	ऐतरेय ब्राह्मण
4.	कौ0अर्थ0	कौटिलीय अर्थशास्त्र
5.	कात्यायन0	कात्यायन स्मृति
6.	काम0नीति0	कामन्दकीय नीतिसार
7.	गौतम0	गौतम धर्मसूत्र
8.	तैत्ति0ब्र0	तैत्तिरीय ब्राह्मण
9.	तैत्ति0सं0	तैत्तिरीय संहिता
10.	नीतिवा0	नीतिवाक्यामृत
11.	नारद0	नारद स्मृति
12.	बृह0	बृहस्पति स्मृति
13.	मनृ0	मनुस्मृति
14.	म0भा0	महाभारत
15.	मत्स्य पु0	मत्स्य पुराण
16.	मार्कण्डेय पु0	मार्कण्डेय पुराण
17.	मानसो0	मानसोल्लास

18. याज्ञ0	याज्ञवल्क्य स्मृति
19. रामा0	रामायण
20. विष्णु0धर्मो0	विष्णु धर्मोत्तर पुराण
21. वायु0	वायु पुराण
22. शुक्र0	शुक्रनीतिसार
23. शत0 ब्रा0	शतपथ ब्राह्मण
24. इंडि0 ऐण्टी0	इंडियन ऐंटिक्वेरी
25. एपि0इण्डि0	एपिग्राफिया इण्डिका
26. एपि0कर्नाटिका	एपिग्राफिया कर्नाटिका
27. का0इं0इं0	कार्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडिकेरम्
28. ज0रा0ए0सो0	जर्नल ऑफ् दि रायल एंशियंट सोसाइटी
29. सा0इं0इं0	साउथ इंडियन इंस्क्रिप्शन्स
30. इलियट	इलियट, हिस्ट्र ऑफ् इण्डिया
31. वाटर्स	ऑन् यूवान – न – च्वांग ट्रैवेल्स् इन इण्डिया

भूमिका

भूमिका

प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्तर्गत दक्षिण भारतीय इतिहास में चालुक्य और राष्ट्रकूट दोनों राजवंशों का प्रमुख स्थान है। यद्यपि और भी राजवंशों ने दक्षिण भारत में सफल शासन किया, किन्तु जिस सुव्यवस्था, समुन्नति एवं राष्ट्रहित की दृष्टि से चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासकों ने शासन व्यवस्था चलाई, वह वास्तव में अद्वितीय थी। दोनों राजवंशों के शासक महान् और राज्य विस्तारक होने के साथ ही साथ प्रजा की सुरक्षा, विकास और समुन्नति के अतिरिक्त कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने और कुशल प्रशासक होने का भी अच्छा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। चालुक्य वंश ने लगभग 540 ई० के बाद तथा बारहवीं सदी तक[1] अपना स्थान बनाये रखा और राष्ट्रकूट वंश ने लगभग 753 ई० – 975 ई० तक दक्षिण भारत में राज्य किया। इन दोनों राजवंशों के शासकों ने प्रशासनिक क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान प्रदान करते हुए एक सुसंगठित शासन प्रणाली की स्थापना की और दक्षिण भारत के इतिहास में महान् गौरव अर्जित

---

[1] चालुक्य वंश के बादामी नरेश पुलकेशिन प्रथम को वास्तविक संस्थापक माना जाता है जिसने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी। उसका शासन काल 540 – 566 ई० स्वीकार किया जाता है। चालुक्य वंश के कल्याणी के नरेश सोमेश्वर चतुर्थ जो वंश का अन्तिम नरेश था, ने बारहवीं सदी के आस – पास शासन किया था।

किया जिनके विवरण हमें इन राजवंशों के साहित्यिक स्रोतों एवं अभिलेखों में मिलते हैं।

चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों के इतिहास पर प्रकाश डालने हेतु अनेक साहित्यिक ग्रन्थों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। रन्न का 'गदायुद्ध' जो कन्नड़ भाषा में लिखा गया और इसकी रचना सत्याश्रय के शासनकाल में हुई थी, लघु होते हुए भी तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डालने हेतु महत्वपूर्ण है।[1] सोमेश्वर का 'मानसोल्लास' भी इस क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण है।[2] चालुक्यों के इतिहास को स्पष्ट करने के लिए बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरित' भी एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है।[3] इसी समय में विज्ञानेश्वर ने

---

[1] दृष्टव्य शास्त्री, के0ए0 नीलकंठ, हिस्ट्री ऑफ् साउथ इण्डिया, पृ0-23.

[2] सोमेश्वर स्वयं एक चालुक्यवंशीय नरेश था, अतः उसका ग्रन्थ 'मानसोल्लास' इस वंश के इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश डालने हेतु काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। एक शासक होने के कारण उसने तत्कालीन राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था का जो सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत किया है, वह हमारे विषय हेतु काफी उपयोगी है।

[3] यह ग्रन्थ चालुक्यों के सबसे यशस्वी पश्चिमी चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ के दीर्घकालीन शासन का वर्णन विशेष रूप से प्रस्तुत करता है। ऐतिहासक दृष्टि से तो यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, परन्तु कार्य सुलभ अव्युक्तियां भी मिलती हैं। दृष्टव्य जी0याजदानी (सम्पादक) दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 - 297.

'याज्ञवल्क्यस्मृति' पर 'मिताक्षरा' नामक सुविख्यात टीका लिखी थी। राष्ट्रकूट इतिहास के लिए साहित्यिक साक्ष्य के रूप में सोमदेव के 'यशास्तिलक' और 'नीतिवाक्यामृत' तथा पम्प के 'विक्रमार्जुनविजय' का भी विशेष महत्व है।[1]

चालुक्यों के विषय में कर्नाटक के वातापी के चालुक्य राजवंश के अभिलेख भी काफी महत्वपूर्ण हैं। इनमें पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, महाकूट स्तम्भ लेख, हैदराबाद दानपत्र काफी महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। पुलकेशिन द्वितीय के पश्चात् अन्य शासकों में भी समय-समय पर अनेक दानपत्र जारी किए थे। इनमें तर्लमचि, कर्नूल, रायगढ़ तथा नौसारी प्रभृति स्थानों से मिले दानपत्र इस राजवंश के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

चालुक्यों की एक शाखा वेंगी में शासन करती हुई पाई जाती है। वेंगी नगर के पूर्व में बसे होने के कारण इस शाखा को पूर्वी चालुक्य वंश कहा जाता है। इस राज्य की सीमा का सर्वाधिक विस्तार कलिंग में स्थित महेन्द्र पर्वत श्रृंखला से लेकर नेल्लोर में मण्णेरू नदी के बीच के पूरे भू - भाग में था। कौथेम अभिलेख में पूर्वी चालुक्यों के प्रारम्भिक इतिहास के संदर्भ में काफी जानकारी मिलती है।

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, भूमिका पृ० - 6.

617 – 618 ई० के सतारा अभिलेख में इस वंश के शासक विष्णुवर्धन ने अपने को युवराज और बादामी के शासक का प्रिय कहा है।[1] इस वंश के विष्णुवर्धन तृतीय के समय के कम से कम 9 अभिलेख प्राप्त होते हैं। इनमें एक अभिलेख प्राचीन तेलगू भाषा में है और शेष संस्कृत भाषा में है।

चालुक्यों की एक तीसरी शाखा *कल्याणी* के चालुक्यों के नाम से विख्यात थी। इस वंश के अनेक अभिलेखीय साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि यह भी वातापी के चालुक्यों के वंशज थे। वे अपने को विक्रमादित्य द्वितीय के एक भाई का वंशज कहते हैं।[2] तीनों शाखाओं के संदर्भ में जहां एक ओर साहित्यिक ग्रन्थों से सूचना मिलती है, वहीं अभिलेखीय साक्ष्य भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं, जिनका अध्ययन शोध को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करने में काफी सहायक है।

चालुक्यों की ही भांति राष्ट्रकूटों के अभिलेख भी काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं जो इस वंश के संदर्भ में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इन लेखों में गोविन्द तृतीय का पैठण लेख, राधनपुर लेख, पटिण (नेसरिका) लेख, अमोघवर्ष

---

[1] दि क्लासिकल् एज, पृ० – 250.

[2] दृष्टव्य दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० – 297.

प्रथम का संजन – ताम्रपत्र, गोविन्द चतुर्थ का सांगली ताम्रपत्र लेख, कृष्ण तृतीय के शासनकाल का चिचनी ताम्रपत्र लेख एवं कन्धार प्रस्तर स्तम्भ लेख एवं ध्रुवराज का मोहरराज संग्रहालय दान पत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इन लेखों के आधार पर जहां एक ओर शासकों की सामरिक उपलब्धियों के बारे में जानकारी मिलती है, वहीं प्रशासनिक व्यवस्था संबंधित संदर्भों पर जो उल्लेख मिलता है, उससे एक शासन व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं को स्पष्ट करने में काफी सहायता मिलती है।

दक्षिण भारत के इतिहास के निर्माण में सिक्कों से बहुत कम सहायता प्राप्त होती है। इलियट महोदय का मानना है कि दक्षिण भारत के सिक्कों के अध्ययन से उतना महत्वपूर्ण सार नहीं प्राप्त होता है, जितना कि उत्तर भारत के सिक्कों से होता है।[1] दक्षिण भारत की मुद्राओं पर तिथियां अंकित नहीं मिलती हैं, केवल राजा का नाम, उपाधियां ही प्राप्त होती हैं। प्रायः सभी राजवंशों – सातवाहनों, इक्ष्वाकु, पल्लव, चोल, यादव, पांड्यों आदि ने सिक्के चलाए। वस्तुतः यह आश्चर्यजनक लगता है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट जैसे शक्तिशाली एवं दीर्घकाल तक शासन करने वाले राजवंशों के शासकों ने ज्यादा सिक्के नहीं चलाए।

[1] इलियट, क्वाइन्स ऑफ् इण्डिया, पृ० – 35.

दक्षिण भारत के अन्तर्गत राष्ट्रकूट वंश ने भी लगभग दो शताब्दी तक राज्य किया, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट शासकों को मुद्रा निर्माण में कोई रूचि नहीं थी। अभी तक लिखित अथवा लेख विहीन कोई भी सिक्के नहीं मिले हैं, जिन्हें निश्चित रूप से इस वंश के किसी भी शासक का बताया जा सके।[1] चाँदी के कुछ अर्धदरहम नासिक जिले से मिले हैं, जिनके अग्रभाग पर क्षत्रियों जैसे रूपचित्र तथा पृष्ठ भाग पर परम् – माहेश्वर मातापितृपादानुध्यात्श्री – कृष्णराजस्य लेख में युक्त वृषभ को प्रदर्शित किया गया है।[2] राष्ट्रकूट अभिलेखों में द्रम्म, गद्यणक, काशु, कलंजु एवं सुवर्ण नामक पाँच सिक्कों का उल्लेख मिलता है।[3] किन्तु राष्ट्रकूटों द्वारा जारी किये गये इन सिक्कों का अभी तक कोई प्रमाणित नमूना नहीं मिला है। डॉ० एम.एम. कृष्ण ने लगभग 60 ग्रेन के मानक वजन के चार स्वर्ण सिक्कों को राष्ट्रकूटों का बताया है।[4] किन्तु इन सिक्कों पर कोई लेख नहीं है, अतः डॉ० एम.एम. कृष्ण का उपर्युक्त निर्धारण केवल अनुमानित ही प्रतीत होता है।

---

[1] दृष्टव्य याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० – 770

[2] दृष्टव्य मिराशी, वी.वी. कार्पस इसक्रिप्शंशनम इण्डिकारम्, IV, पृ० – CLXXX-CLXXXI

[3] दृष्टव्य याजदानी जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० – 770

[4] एनुवल रिपोर्ट ऑफ् द मैसूर आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट, 1933, पृ०–99.

राष्ट्रकूटों ने कोई स्वर्ण अथवा चाँदी की मुद्रा जारी की थी, इस विषय में विद्वानों में अब भी मतभेद है।

चालुक्य काल में राजकीय विरूद्ध और पदवियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था जिनमें राजाओं के अस्तित्व का बोध होता है। इस वंश के आरम्भिक शासकों ने 'महाराजा', 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। चालुक्य वंश के प्रारम्भिक नरेशों में बहुत समय तक पृथ्वीवल्लभ उपाधि का प्रयोग होता रहा।[1] चालुक्य वंश में पारिवारिक एवं राजकीय चिन्ह सामान्यतः राजकीय सीलों, ताम्रपत्रों के ऊपरी भाग, पौराणिक प्रतिवेदनों और पताकाओं पर उत्कीर्ण एवं चित्रित किये जाते थे, जिसके द्वारा उनकी राजसत्ता का बोध होता है। चालुक्यों का कुल चिन्ह वाराह था।[2] चालुक्यों के पैतृक पल्लवों की सीलों में 'साड़' अंकित मिलता है। किन्तु कुछ पल्लव ताम्रमुद्राओं में सिंह का चिन्ह भी मिलता है। सम्भवतः इस प्रकार के ताम्रपत्रों को विजयोपरान्त उत्कीर्ण किया जाता था।[3] चालुक्यों का राज चिन्ह मयूरध्वज था जिसे वे कात्यायनी देवी के प्रसाद के रूप में स्वीकार करते थे।[4]

---

[1] ऐहोल अभिलेख, श्लोक-4, एपि0इण्डि0, भाग-6, पृ0 - 1-12.

[2] एपि0 इण्डि0, 26, पृ0 - 323.

[3] साउथ इण्डि0 पॉलिटी, पृ0 - 85

[4] एपि0 इण्डि0, भाग-12, नीलगुण्ड अभिलेख, पंक्ति -5, पृ0-150. 'मयूरपिच्छेदकुंतध्वजानाम्'

वे समस्त *भुवनाश्रय*, *सर्वलोकाश्रय*, *विष्णुवर्धन* और *विजयादित्य* जैसे विरूद्धों को अपनी विशेषता के रूप में धारण करते थे।[1] उनकी मुद्रा वाराह से अंकित थी, जिसकी याचना (प्रार्थना) प्रायः सभी चालुक्य अभिलेखों में की गयी है।[2] इसी प्रकार राष्ट्रकूट शासकों ने '*श्रीवल्लभ*', '*वल्लभेद्र*', '*श्रीनारायण*', '*त्रिभुवननारायण*', '*कीर्तिनारायण*', '*वीरनारायण*', 'कल्विल्लभ' आदि उपाधियां धारण कीं और राजमुद्रा गरूण से अंकित थी। दान की अपनी प्रवृत्तियों की सूचक *धारावर्ष*, *प्रभूतवर्ष* एवं *अकालवर्ष* जैसी उपाधियां भी राष्ट्रकूट नरेशों ने धारण की थीं। गोविन्द तृतीय ने *जगत्तुंग*, *त्रिभुवनधवल* एवं *विक्रम* जैसी उपाधियां गृहण की थीं।

चालुक्य काल में स्थान और काल के अनुसार भाषा और लिपि में भी अन्तर मिलता है। संस्कृत साहित्य के अन्य अनेक लेखकों और विद्वानों का नाम भी चालुक्य काल में प्राप्त होता है। उदाहरण हेतु जयसिंह द्वितीय के समकालीन वाडिराज नामक जैन लेखक ने 'पार्श्वनाथ चरित' और 'यशोधरचरित' नामक काव्यों की रचना की।[3] इससे ज्ञात होता है कि वे कन्नड़ भाषा और संस्कृत साहित्य, व्याकरण और छन्दशास्त्र के अनुगामी एवं सहचर थे। राष्ट्रकूट काल में

---

[1] कौथेम अभिलेख, इण्डि०ऐण्टी०, भाग - 16.

[2] साउथ इण्डियन इन्स्कृपशन्स-11, 11, 2-3.

[3] एपि० इण्डि० - 12, पृ० - 142.

कन्नड़ तथा संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें जिनसेन का 'आदि पुराण', महावीराचार्य का 'गणिसारांशनग्रहण', अमोघवर्ष का 'कविराजमार्ग' आदि विशेष उल्लेखनीय है। इनके अध्ययन से तत्कालीन समाज तथा संस्कृति एवं प्रशासनिक व्यवस्था का विशेष बोध होता है। कन्नड़ का प्रयोग राष्ट्रकूट युग एवं चालुक्यों के समय गतिमान रहा। चालुक्यों के अनेक अभिलेख इन दोनों भाषाओं के माध्यम से द्विभाषी रूप में प्राप्त होते हैं। सम्भवतः चालुक्य और राष्ट्रकूट काल के अन्तर्गत संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृत, कन्नड़ के अतिरिक्त तमिल, तेलगु भाषा भी प्रधान थी।

दक्षिण भारत के विषय में साहित्यिक ग्रन्थों तथा पुरातात्विक साक्ष्यों के अतिरिक्त विदेशी यात्रियों के विवरण से भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। चूँकि दक्षिण भारत का इतिहास काफी प्राचीन है और इसके इतिहास पर समय-समय पर अनेक यूनानी और चीनी यात्रियों ने प्रचुर प्रकाश डाला है जिनमें मेगस्थनीज और फाह्यिान का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय बताया जा सकता है। जहाँ तक चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंश का प्रश्न है उनमें ह्वेनसांग और मुस्लिम यात्रियों के विवरण काफी उल्लेखनीय रहे हैं। सुलेमान, अबुजैद, अलमसूदी आदि अरब लेखकों के विवरण से राष्ट्रकूट वंश व उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। आधुनिक लेखकों में नीलकंठ शास्त्री द्वारा

लिखित दक्षिण भारत का इतिहास, याजदानी द्वारा सम्पादित दकन का प्राचीन इतिहास, बलराम श्रीवास्तव द्वारा लिखित दक्षिण भारत का इतिहास, हरि नारायण दुबे कृत् दक्षिण भारत का इतिहास, एस.एम. मिश्र द्वारा लिखित दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, राम निहोर पाण्डेय का दक्षिण भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, विशुद्धानन्द पाठक कृत दक्षिण भारत का इतिहास आदि ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें दक्षिण भारत के संदर्भ में अनेक उल्लेखनीय तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं। जहां तक शासन प्रणाली का प्रश्न है, इनमें बहुत ही संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। अतः चालुक्य एवं राष्ट्रकूटों की शासन–व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करते हुए दोनों राजवंशों की प्रशासनिक व्यवस्था का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करना ही इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है। समस्त साहित्यिक एवं अभिलेखनीय स्रोतों को आधार मानकर शोध विषय के अन्तर्गत समस्त प्रशासनिक बिन्दुओं पर यथेष्ट प्रकाश डालते हुए एक उचित निष्कर्ष पर पहुँचना शोध का प्रमुख ध्येय है।

जहां तक चालुक्य वंश की उत्पत्ति का प्रश्न है, इस संदर्भ में काफी मतभेद हैं। कतिपय विद्वान इन्हें शूलिक जाति से जोड़ते हैं तो कुछ लोग इन्हें पश्चिमोत्तर भारतीय क्षेत्र में निवास करने वाले 'चुलिक' राजवंश की एक शाखा

से संबंधित मानते हैं।[1] अभिलेखों में इन्हें चल्कि, चुलिक, चलुक्य, चालुक्य आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। नागार्जुननिकोण्डा से प्राप्त तीसरी शताब्दी के एक अभिलेख में खण्ड चलिकि रमूमड़तक नाम मिला है, जिससे कुछ लोगों ने चालुक्य नाम से मिलाने की कोशिश की है।[2] विक्रमांकदेवचरित में इस वंश की उत्पत्ति भगवान ब्रह्मा के चलुक से बतायी गई है। एक किंवदन्ती के अनुसार चालुक्य का जन्म हारीति के जल पात्र से उस समय हुआ था, जब वे देवताओं का तर्पण कर रहे थे। इसी कारण चालुक्यों ने स्वयं को हारीतिपुत्र भी कहा है।[3] एक किंवदन्ती यह भी है कि चालुक्यों के वंशज अयोध्या के क्षत्रियवंशी लोग थे जो बाद में दक्षिण में जाकर बस गए।[4] विक्रमादित्य षष्ठ के शासन काल के कुछ अभिलेखों में चालुक्यों को चन्द्रवंशी (क्षत्रिय) एवं ब्रह्मा के पुत्र अत्रि के नेत्र से उत्पन्न बताया गया है।[5] भगवान लाल इन्द्रजी एवं आर.जी. भण्डारकर का मत है कि इस वंश का प्रारम्भिक नाम चालुक्य था।[6] सी.वी.

---

[1] दृष्टव्य दुबे, हरि नारायण, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 - 5.

[2] दृष्टव्य शास्त्री नीलकण्ठ, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ् दि डेकन, पृ0-204.

[3] इण्डि0 ऐण्टी0, भाग - 3, पृ0 - 305.

[4] वही, भाग - 8, पृ0 - 28.

[5] दृष्टव्य मिश्र श्याम मनोहर, दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 - 153.

[6] दृष्टव्य दुबे हरि नारायण, पूर्वोक्त, पृ0 - 51.

वैद्य, जी.एच. ओझा, डी.सी. सरकार का मत है कि चालुक्य क्षत्रिय थे।[1] चीनी यात्री युवा- न -च्वांग पुलकेशिन द्वितीय को क्षत्रिय कहता है। चालुक्य अभिलेखों में भी उन्हें क्षत्रिय ही कहा गया है और सबसे मुख्य बात यह है कि '*विक्रमांकदेवचरित*' में भी उन्हें क्षत्रिय ही कहा गया है, जो चालुक्यों के इतिहास पर प्रकाश डालने हेतु एक महत्वपूर्ण कृति है। चालुक्य निश्चित रूप से कर्नाटक के ही मूल निवासी प्रतीत होते हैं और इस वंश के प्रारम्भिक शासक बनवासी के कदम्बों के सामन्त या उच्चपदाधिकारी रहे होंगे।[2] समस्त विवरणों के आधार पर चालुक्यों को क्षत्रिय मानना ज्यादा न्यायसंगत है।

चालुक्यों की ही भांति राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति के संदर्भ में भी परस्पर भिन्न-भिन्न सूचनायें मिलती हैं। राष्ट्रकूटों के 8 अभिलेखों में उन्हें यदुवंश से जोड़ने का प्रयास किया गया है। इनमें 860 ई0 के अमोघवर्ष के लेख में यदुवंश से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होता है।[3] इसी तरह 914 ई0 के इन्द्रराज तृतीय के लेख में भी उन्हें यदुवंशीय

---

[1] दृष्टव्य पाण्डेय वी.सी. एवं पाण्डेय अनूप, ए न्यू हिस्ट्री ऑफ् एन्शियन्ट इण्डिया, पृ0 - 796.

[2] दृष्टव्य मिश्र श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ0 - 153.

[3] एपि0 इण्डि0, भाग - 6, पृ0 - 29, तदीयभूपायत यादवान्वये।

बताया गया है।[1] 930 ई0 एवं 933 ई0 के दो लेखों में उन्हें इसी वंश से जोड़ने का प्रयास किया गया है।[2] कृष्णराज तृतीय के क्रमशः 940 ई0 एवं 958 ई0 के दो लेखों में भी यही उल्लेख मिलता है। अर्थात् राष्ट्रकूटों को यदुवंश से ही सम्बन्धित बताया गया है।[3] 972 ई0 के कृष्णराज द्वितीय के लेख से भी यही सूचना मिलती है।[4] 1008 का एक अन्य लेख भी राष्ट्रकूटों को यादव वंश से ही सम्बन्धित बताता है।[5] परन्तु इन लेखों में राष्ट्रकूट वंश और यादव वंश में समानता का जिक्र है। गोविन्द तृतीय के 808 ई0 के राधनपुर अभिलेख से स्पष्ट होता है कि इस तिथि तक राष्ट्रकूट वंश यदुवंश से भिन्न माना जाता था। बाद के लेखों में भी केवल राष्ट्रकूट वंश को यदुवंश से समान कहा जा सकता है, परन्तु उन्हें इस वंश का मानने का कोई औचित्य नहीं है। कुछ विद्वानों का मत काफी तर्क संगत प्रतीत होता है कि बाद में कल्पना के आधार पर

520041 515041

[1] जर्नल ऑफ् बाम्बे, एशियाटिक सोसाइटी, भाग - 18, पृ0 - 261, तस्माद्वंशों यदूनां जगति स ववृधे।

[2] एपि0 इण्डि0, भाग -7, पृ0 -36 एवं इण्डि0 ऐण्टी0, भाग -12, पृ0 - 249. वंशों बभूव भुवि सिन्धुनिभो यदूनाम्।

[3] एपि0 इण्डि0, भाग -5, पृ0 -192 एवं भाग -4, पृ0 -281. यदुवंशे दुग्ध सिन्धूपमाने

[4] इण्डि0 एण्टी0, भाग - 12, पृ0 - 264, समभूदन्यों यदोस्वयः।

[5] एपि0 इण्डि0, भाग - 3, पृ0 - 300, सोऽपूर्वोस्तीह वंशो यदुकुलतिलको राष्ट्रकूटेश्रराणां।

LUCKNOW UNIVERSITY TAGORE LIBRARY * LUCKNOW *
515041

उन्होंने अपने के यदुवंशी मान लिया।[1] कुछ विद्वानों के अनुसार राष्ट्रकूट राजपुताने तथा कन्नौज के राठौरों के वंशज थे। परन्तु इस सन्दर्भ में कोई ठोस आधार नहीं मिलता है। राठौरों तथा गहड़वालों का उदय राष्ट्रकूटों के पतन के बाद ही हुआ था। इस तरह राष्ट्रकूटों का सम्बन्ध कन्नौज के गहड़वालों अथवा राठौरों से जोड़ना गलत होगा।[2] प्रारम्भिक राष्ट्रकूट अभिलेखों में उन्हें 'रिट्ट' कहा गया है। इन्द्र तृतीय के नौसारी अभिलेख में राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष को रट्ट–कुल–लक्ष्मी का उद्धारक कहा गया है। इस कथन की पुष्टि देवली और करहद अभिलेखों से भी होती है। वर्धा से प्राप्त ताम्रपत्रों में राजकुमारी रट्टा के पुत्र को 'राष्ट्रकूट' कहा गया है। एम.सी. नन्दिपथ तथा चिन्तामणि विनायक वैद्य जैसे विद्वानों ने अशोक के अभिलेखों में वर्णित रट्ठिकों की पहचान राष्ट्रकूटों से की है।[3] दिनेश चन्द्र सरकार के अनुसार[4] राष्ट्रकूट नाम का कारण यह था कि वह एक प्रशासनिक शब्द था और उनके पूर्वज बादामी के चालुक्य शासकों के अधीन प्रान्तों या जिलों के शासक के रूप में राष्ट्रकूट कहे

---

[1] मिश्र, श्याम मनोहर, दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ० – 194.

[2] मिश्र, श्याम मनोहर, दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ० – 194.

[3] दृष्टव्य दुबे हरि नारायण, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ० – 128.

[4] दि क्लासिकल् एज, पृ० – 198.

गये हैं। ऐसा लगता है कि राष्ट्रकूटों के पूर्वज रठिक लोग ही थे, जिनका उल्लेख अशोक के शिलालेखों में हुआ है।[1] ए. एस. अलतेकर जैसे विद्वान् भी राष्ट्रकूटों का संबंध अशोक के अभिलेखों में उल्लिखित 'रट्ठिकों' से ही लगाते हैं, परन्तु सी.वी. वैद्य एवं नन्दिपथ उस मत का खण्डन करते हैं कि राष्ट्रकूटों का मूल निवास महाराष्ट्र था। अलतेकर के अनुसार राष्ट्रकूटों का संबंध कर्नाटक से था।[2] अमोघवर्ष प्रथम द्वारा लिखित '*कविराजमार्ग*' नामक ग्रन्थ से भी यही सूचना मिलती है कि राष्ट्रकूट मूलतः कन्नड़ देश (कर्नाटक देश) के ही निवासी थे और उनकी भाषा कन्नड़ थी।[3] *असगब्बा, अब्बेलब्बे* तथा *रेवकनिर्मडि* जैसे नामों से भी कन्नड़ प्रभाव स्पष्ट होता है।[4] इस आधार पर राष्ट्रकूटों को कर्नाटक का ही मूल निवासी मानना ज्यादा तर्कसंगत है।

प्रस्तुत शोध कुल सात अध्यायों में विभक्त है। शोध के *प्रथम अध्याय* में चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश की राजनीतिक पृष्ठभूमि की पूर्ण रूप से व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस अध्याय के अन्तर्गत दोनों राजवंशों के शासकों के

---

[1] दृष्टव्य पाठक विशुद्धानन्द, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 – 67.

[2] दृष्टव्य दुबे हरिनारायण, पूर्वोक्त, पृ0 – 129.

[3] दृष्टव्य पाठक, विशुद्धानन्द, पूर्वोक्त, पृ0 – 67.

[4] दृष्टव्य मिश्र, श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ0 – 193.

राजनीतिक जीवन, उनकी युद्धनीति, शासकों की उपलब्धियाँ आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी प्रदान की गयी है।

शोध का *द्वितीय अध्याय* चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था पर आधारित है। इसके अन्तर्गत राजा की स्थिति, राज्याभिषेक विधि, उत्तराधिकार के नियम, राजपरिवार, राजधानी तथा राज्य के प्रमुख मंत्रियों और अधिकारियों के विवेचन के साथ दोनों राजवंशों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने राजा को सप्तांग सिद्धान्त (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र) में सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। राजा को समाज के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में स्वीकार किया गया और उसे कार्यपालिका, न्याय व्यवस्था व सेना का प्रधान माना गया है। यही तथ्य हमें चालुक्यों और राष्ट्रकूटों में दृष्टिगोचर होता है जहाँ राजा केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत सर्वोच्च अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित था और समस्त शक्तियों का स्रोत था। परन्तु इन शक्तियों के बावजूद वह निरंकुश व स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उसकी निरंकुशता पर हमेशा से अनेक बन्धन लगे हुए थे।

प्राचीन भारतीय इतिहास में राजा द्वारा अनेक उपाधियां धारण करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस प्राचीन परम्परा का पालन करते हुए चालुक्य और राष्ट्रकूट

शासकों ने भी अनेक विरूद्ध धारण किये जिनसे शासकों के विजयों और कृत्यों का ज्ञान होता है। प्राचीन राजवंशों की भाँति चालुक्य व राष्ट्रकूट वंश के भी राजचिन्ह प्राप्त होते हैं। राजवंश बहुधा आनुवांशिक था और सामान्यतः राजा के ज्येष्ठ पुत्र (युवराज) को ही राज्य पद प्राप्त होता था। वह राज्य कार्य में राजा की सहायता करता था। कभी-कभी सम्राटों द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र के स्थान पर छोटे पुत्र को भी प्राथमिकता दी गयी थी। चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने दक्षिण के युद्धों में व्यस्त होने के कारण अपने छोटे भाई विष्णुवर्धन को केन्द्रीय शासन देखने के लिए युवराज नियुक्त किया था। राष्ट्रकूट शासक ध्रुव प्रथम ने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्तम्भ के स्थान पर गोविन्द तृतीय को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। प्राचीन भारत में प्रायः सभी राजवंशों के इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता हे कि राजा अपने भावी उत्तराधिकारी को प्रायः अपने राज्यकाल में ही युवराज नियुक्त कर उसे सैन्य संचालन एवं प्रशासनिक कार्यो से संबद्ध कर व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान करते थे। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट शासकों ने भी इस परम्परा का पालन किया। इन राजवंशों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जब शासकों ने युवराज रूप में ही अनेक विजय प्राप्त कर अपनी ख्याति स्थापित की, जिसके अन्तर्गत हम चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम को युवराज के रूप में अनेक युद्धों का संचालन करते हुए पाते हैं। राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए धर्मशास्त्रों में मंत्रिपरिषद्

की महती आवश्यकता निरूपित की गयी है। राज्य में राजा के पश्चात् मंत्रियों का स्थान था। अतः राजा से यह अपेक्षा की जाती थी कि राज्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए वह योग्य मंत्रियों व अधिकारियों की नियुक्ति करे। चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में किसी बड़ी मंत्रिपरिषद् का कोई स्पष्ट साक्ष्य तो नहीं है, परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इतने विशाल साम्राज्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए मंत्रियों की आवश्यकता आवश्यक ही होती होगी। इस प्रकार चालुक्य एवं राष्ट्रकूट प्रशासन में मंत्रिपरिषद् का स्थान महत्वपूर्ण रहा होगा। इसके अतिरिक्त अभिलेखीय साक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि शासकगण राजकीय पदाधिकारियों की सहायता से शासन का संचालन करते थे।

शोध का *तृतीय अध्याय* चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों की प्रशासनिक इकाईयों पर आधारित है जिसके अन्तर्गत प्रान्त, जिला, तहसील एवं ग्राम का उल्लेख प्रस्तुत किया गया है। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट राजवंशों ने विस्तृत भू–भाग पर अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया। अतः इन राजवंशों के शासकों ने शासन के सम्यक् संचालन के लिये अपने पूर्ववर्ती मौर्य, गुप्त आदि राजाओं द्वारा अपनायी गयी शासन प्रणाली में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन करके उसे अपनाया। चालुक्यों और राष्ट्रकूटों का विशाल साम्राज्य *प्रान्तों* (मण्डल) में विभक्त था जिसका अधिकारी चालुक्य काल में

महामंडलेश्वर कहलाता था, और राष्ट्रकूट काल में '*राष्ट्रपति*' कहलाता था। इसमें छोटी इकाई *विषय* थी जो आधुनिक जिलों के समान थी, इसका अधिकारी *विषयपति* कहलाता था। जिले में छोटी इकाई *भुक्ति* थी, जिसे आधुनिक तहसील के समान माना जाता था, जिसका अधिकारी *भौगिक* व *भोगपति* कहलाता था। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट वंश में प्राचीनकाल की भाँति *ग्राम* प्रशासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में था। अभिलेखों में ग्राम के अनेक अधिकारियों के उल्लेख मिलते हैं। ग्राम शासन इन्हीं अधिकारियों द्वारा सम्पन्न होता था। चालुक्य काल में ग्रामाधिकारी को 'गामुंड' कहा गया है जिसकी पुष्टि अभिलेखों से होती है। राष्ट्रकूट प्रशासन प्रणाली में सामान्यतया प्रत्येक ग्राम एक ग्राम प्रधान के अधीन होता था, जिसे '*ग्रामकूट*' कहा जाता था। राष्ट्रकूट शासन प्रणाली मे ग्राम का प्रशासन कार्य प्रायः पटवारी तथा ग्राम प्रधान (मुखिया) के द्वारा संचालित होता था। इसके अतिरिक्त वे राजस्व एकत्र करते थे तथा न्यायाधीश भी होते थे जो अपने क्षेत्र के छोटे – छोटे विवादों को स्वयं हल करते थे। इस प्रकार समस्त प्रशासनिक इकाइयों का विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय चालुक्य तथा राष्ट्रकूट वंशों के राजस्व व्यवस्था से संबंधित है। इस अध्याय में दोनों राजवंशों के अन्तर्गत राजस्व व्यवस्था का वर्णन किया गया है। आर्थिक दृष्टिकोंण से चालुक्य काल को उत्तम माना जा

सकता है। इस समय कृषि आय – व्यय का प्रमुख स्रोत था। राष्ट्रकूट साम्राज्य में आय का प्रधान स्रोत 'भूमिकर' था, जिसके लिए राष्ट्रकूट लेखों में 'उद्रंग' शब्द आया है। भूमिकर अनाज व नकद दोनों रूपों में लिया जाता था। इसके अतिरिक्त सीमा – शुल्क, गृहकर, चुंगी, खानों की उपज, वन सम्पदा व अर्धदण्ड आदि से भी राजकीय आय होती थी। इस अध्याय के अन्तर्गत प्रजा पर लगाये गये प्रमुख कर, उनसे प्राप्त होने वाली आय, राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियों, करों में छूट और शासन प्रबन्ध में किये जाने वाले व्ययों का उल्लेख किया गया है।

पंचम अध्याय चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की न्याय व्यवस्था से संबंधित है। इस अध्याय के अन्तर्गत दोनों राजवंशों की न्याय व्यवस्था का अध्ययन किया गया है। सम्भवतः दोनों राजवंशों की न्याय व्यवस्था प्राचीन भारतीय पद्धति पर ही आधारित थी, जिसके अन्तर्गत राजा ही न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी था और उसका निर्णय अन्तिम समझा जाता था। राजा के साथ–साथ प्रान्तों, विषयों, नाडुओं तथा ग्रामों में भी अधीनस्थ न्यायालय होते थे। अभिलेखीय प्रमाणों से भी विभिन्न प्रकार के न्यायालयों, न्यायाधिकारियों और न्याय प्रणाली का उल्लेख मिलता है। चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में न्याय प्रणाली से संबंधित दण्डों का उल्लेख मिलता है। दोनों राजवंशों में अपराधों के लिए अधिकतर अर्थदण्ड दिये जाते थे। सम्भवतः दण्ड व्यवस्था काफी उदार

थी। इन कालों की समृद्धि और शान्ति को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की न्याय व्यवस्था जनता के लिए हितकर थी। समस्त न्याय व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय में चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश के सैन्य प्रशासन का उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में सेना के प्रकारों, सैन्य संगठन, सैन्य अधिकारियों और उनकी योग्यता, नियुक्ति व कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रायः भारत के सभी महान् सम्राटों ने अत्यधिक कौशल युक्त सैन्य संगठन कर रखा था। चालुक्य और राष्ट्रकूटों – साम्राज्यों का सैन्य संगठन उच्च कोटि का था, जिसके अन्तर्गत साम्राज्य की सुरक्षा के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया गया था। चालुक्य शासक पुलकेशिन के ऐहोल, अभिलेख में अर्जित सैनिकों तथा 'मौल' प्रवृत्ति छः प्रकार के सैनिकों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस काल में सैन्य प्रशासन के अन्तर्गत सर्वप्रथम स्थल सेना महत्वपूर्ण थी। इसके बाद जल सेना (नौ सेना) गज सेना, अश्व सेना, रथ सेना, पदाति सेना प्रमुख समझी जाती थी। राष्ट्रकूट नरेशों ने भी सेना के संगठन पर प्रचुर ध्यान दिया था। इन्होंने राजधानी तथा अन्य महत्वपूर्ण किलों में विशाल एवं स्थायी सेना का संगठन किया था। सेना का मुख्य दायित्व साम्राज्य की सुरक्षा करना तथा आवश्यकतानुसार वाह्य राज्यों पर अभियान करना था। सेना

में पदाति सैनिकों तथा घुड़सवारों की महत्ता तथा संख्या अधिक थी। राष्ट्रकूट सेना में सभी जातियों तथा धर्मों के युवक सम्मिलित होते थे। इस प्रकार चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की सैन्य व्यवस्था निपुण तथा उदार थी, दोनों ही राज्यों में नियमित सैन्य बल थे, जिससे प्रजा का भौतिक तथा नैतिक दोनों ही प्रकार उत्थान हुआ। सैन्य प्रशासन से संबंधित समस्त बिन्दुओं पर इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम् अध्याय अन्तर्राष्ट्रीय संबंध और कूटनीति से संबंधित है। इस अध्याय में चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय संबंध का वर्णन किया गया है। चालुक्य अभिलेखों से विदित होता है कि चालुक्य नरेशों ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में पर्याप्त रूचि दिखाई थी। अरब लेखक टबरी के विवरण के अनुसार पुलकेशिन द्वितीय ने ईरान के शासक खुसरो द्वितीय के दरबार में एक दूतमंडल भेजा था। अजन्ता के एक गुफा चित्र में चालुक्य नरेश को फारसी दूतमंडल का स्वागत करते हुए दिखाया गया है। इस प्रकार चालुक्य राजाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संबंध दूसरे देशों के साथ थे। प्राचीन भारत के अन्तर्गत मण्डल सिद्धान्त, षाड्गुण नीति आदि के जो उल्लेख मिलते हैं, उनका महत्व भी इस काल के कुछ साहित्यिक ग्रन्थों में मिलता है, जिनका अनुशीलन कर एक निष्कर्ष निकालने का यथासंभव प्रयास प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

शोध का *अष्टम् अध्याय* सामन्तवादी व्यवस्था से सम्बन्धित है। इसमें सामन्तवाद के उत्कर्ष, उसकी विशेषताओं आदि पर प्रकाश डालते हुए विवेच्य युग में जो तथ्य सामने आयें, उन पर यथेष्ट प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। तत्कालीन राजनीति को सामन्तवाद ने कैसे प्रभावित किया, इसकी चर्चा भी प्रस्तुत अध्याय में की गयी है।

अन्त में शोध प्रबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत कर सम्पूर्ण बिन्दुओं को सारांश के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत दोनों राजवंशों की प्रशासनिक व्यवस्था की तुलना को आधार बनाकर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है।

अनुक्रम

अध्याय		विवरण	पृष्ठ संख्या
	➢	आभार	i - iii
	➢	संकेत शब्द सूची	iv – v
	➢	भूमिका	1 - 23
✷ अध्याय : 1		चालुक्य एवं राष्ट्रकूट वंशों का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास एवं महत्व	24 - 80
✷ अध्याय : 2		केन्द्रीय प्रशासन	81 - 121
✷ अध्याय : 3		प्रशासनिक इकाइयाँ	122 - 157
✷ अध्याय : 4		राजस्व व्यवस्था	158 - 188
✷ अध्याय : 5		न्याय व्यवस्था	189 - 205
✷ अध्याय : 6		सैन्य प्रशासन	206 - 232
✷ अध्याय : 7		अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और कूटनीति	233 – 252
✷ अध्याय : 8		सामन्तवादी व्यवस्था	253 - 269
	➢	उपसंहार	270 - 282
	➢	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	283 - 300

उपसंहार

उपसंहार

प्राचीन भारतीय इतिहास में दक्षिण भारत का इतिहास अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसके अन्तर्गत चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंश दक्षिण भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजवंशों में से एक थे। इन दोनों ही राजवंशों ने अपनी पूर्ववर्ती उत्तर भारत के मौर्य, गुप्त एवं वर्धन सम्राटों की परम्परा का आधार ग्रहण करते हुए एक विकसित शासन – व्यवस्था की स्थापना की जिसने दक्षिण भारत के राजनैतिक उत्कर्ष को चरम् सीमा पर पहुंचा दिया। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राजवंशों ने प्राचीन भारतीय परम्पराओं का आधार ग्रहण करते हुए भी दक्षिण भारतीय राजनीति में आवश्यकतानुसार कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। इन दोनों राजवंशों ने दक्षिण भारत के राजनैतिक क्षितिज पर कई शताब्दियों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा। इन राजवंशों की शासन सत्ता की दीर्घ अवधि में दक्षिण भारत अपनी शान्ति की पराकाष्ठा पर था। चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। विल्हण रचित '*विकमांकदेवचरित*' में किये गये उल्लेख के अनुसार चालुक्य उस व्यक्ति के वंशज थे जिसे ब्रह्मा ने अपनी हथेली से जन्म दिया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने चालुक्यों को भारतीय क्षत्रिय माना है। एक किंवदन्ती के अनुसार चालुक्य का जन्म हारीति के जल पात्र से उस समय हुआ था, जब वे देवताओं का तर्पण कर रहे थे। इसी कारण चालुक्यों ने स्वयं को हारीतिपुत्र कहा है।

चालुक्य वंश के अभिलेखों से पता चलता है कि यह सोमवंशी क्षत्रिय थे और वाराह उनका राजचिन्ह था। इस विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य क्षत्रिय वंश से संबंद्ध थे और उत्तरापथ से दक्षिणापथ की ओर गये थे जहां इन्होंने पांचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक शासन किया।

राष्ट्रकूट वंश के उद्‌भव के विषय में भी इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ इतिहासकारों का मत है कि राष्ट्रकूट यादव वंश के थे। फ्लीट का मत है कि राष्ट्रकूट राठौरों के वंशज थे। भण्डारकर का मत है कि राष्ट्रकूट तुंग वंश से सम्बन्धित थे। तुंग के पुत्र का नाम रट्ट था और उसके नाम पर ही इस वंश का नाम राष्ट्रकूट पड़ा। सर्वाधिक न्यायसंगत मत अलतेकर का है। इनके मतानुसार राष्ट्रकूट वंश रठिक अथवा महारठी वंश की संतान थे। राष्ट्रकूट (या रठिक) का अर्थ राष्ट्र (प्रान्त) का कूट (पति) जैसे ग्रामकूट (ग्रामपति) होता है। अतः प्रारम्भ में यह जाति प्रान्तीय अधिकारी होती थी जो बाद में एक जाति के रूप में संगठित हो गयी। यह कर्नाटक के मूल निवासी थे और इनकी भाषा कन्नड़ी थी।

चालुक्य वंश का सबसे शक्तिशाली, महान् शासक पुलकेशिन द्वितीय था जो सर्वाधिक योग्य सम्राट् था। उसने 609 ई0 से 642 ई0 तक सफलतापूर्वक चालुक्य वंश के शासन का संचालन किया। पुलकेशिन द्वितीय न केवल महान्

विजेता ही था, वरन् उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ भी था। इस वंश की अन्य शाखाओं में वेंगी के चालुक्य एवं पश्चिमी चालुक्यों में भी अनेक पराकमी और योग्य नरेशों ने शासन किया। इनमें तैलप द्वितीय, इन्द्र वर्मन, विष्णुवर्धन तृतीय, विजयादित्य प्रथम एवं विजयादित्य द्वितीय आदि प्रमुख थे। दक्षिण भारत के प्रमुख राष्ट्रकूट वंश के शासकों के विभिन्न अभिलेखों और ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि दन्तिदुर्ग मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंश एवं साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। दन्तिदुर्ग चालुक्य वंश का सामन्त था। इस राष्ट्रकूट शासन ने धीरे – धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करके स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का प्रयास किया जिसमें वह सफल भी हुआ परन्तु सम्पूर्ण चालुक्य शक्ति का नाश राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम द्वारा किया गया। राष्ट्रकूट शासनकाल की दीर्घ अवधि में भी अनेक पराक्रमी और योग्य नरेशों ने शासन किया जिनमें ध्रुव, गोविन्द तृतीय, कृष्ण तृतीय, इन्द्र तृतीय, अमोघवर्ष द्वितीय, खोट्टिग आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कर्क द्वितीय राष्ट्रकूट वंश का अन्तिम शासक था जिसे चालुक्य सम्राट् तैलप ने युद्ध में परास्त कर राष्ट्रकूट वंश को समाप्त कर दिया।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने एक सुव्यवस्थित व उत्कृष्ट शासन व्यवस्था लागू की। चालुक्यों के समय जो शासन पद्धति थी उसका पूर्ण निखार तो हमें राष्ट्रकूटों के समय में ही दिखाई देता है, किन्तु राष्ट्रकूट

शासकों के जो उद्देश्यपरक मानदण्ड थे, उन सभी मानदण्डों का बीजारोपण चालुक्य शासकों के समय ही स्पष्ट रूप से हो चुका था। उन मानदण्डों में प्रमुख थे, सम्पूर्ण भाव वाली धार्मिक सहिष्णुता और उदारता, सभी सम्प्रदायों को बराबर का प्रश्रय, सभी धर्मों के मंदिरों के निर्माण और उनके खर्चों को चलाने हेतु पूरी - पूरी राजकीय सहायतायें, मंदिरों के जनकल्याणकारी स्वरूप, विद्या और कलाकेन्द्रों के रूप में उनका विकास तथा राजपरिवारों के विभिन्न धर्मों को मानने वाले सदस्यों का एक साथ रहना आदि।

प्राचीन भारत के अन्तर्गत पूर्ववर्ती कालों की भांति चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों की शासन पद्धति भी राजतंत्रतात्मक थी तथा राजा ही साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने अनेक विरूद् धारण किये थे, जिससे इनकी विजयों और कृत्यों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों में उत्तराधिकार की परम्परागत पद्धति लागू थी। प्रायः राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता था। यद्यपि इस परम्परा का अपवाद भी पाया जाता है किन्तु इससे इन राजवंशों के वंशानुगत उत्तराधिकार को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों के काल में शासकों की शिक्षा - दीक्षा और शासन के कार्यों की देख - रेख का विशेष प्रबन्ध उनके युवराजत्व काल में ही कर दिया जाता था। चालुक्य

अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि राजा की मृत्योपरान्त युवराज का विधिवत् राज्याभिषेक किया जाता था, परन्तु राष्ट्रकूट शासकों द्वारा अभिषेक के अवसर पर धारण की गयी उपाधियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्रकूट शासक भी सिंहासनारोहण से पूर्व अपना राज्याभिषेक अवश्य कराते थे। ऐसा लगता है कि इस समय की राज्याभिषेक की परम्परा वैदिक कालीन परम्परा से बिल्कुल भिन्न थी और शायद शपथ ग्रहण की भी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। राजा के पश्चात् साम्राज्य में अमात्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। चालुक्य राजवंश में शासन कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा राजा की सहायता हेतु मंत्रिपरिषद् की स्थापना की गई थी परन्तु राष्ट्रकूट काल में किसी मंत्रिपरिषद् के संगठन का कोई स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु इतना निश्चित है कि इतने बड़े साम्राज्य के शासन संचालन के लिए अधिकारियों की आवश्यकता अवश्य होती होगी। राज्य व्यवस्था की देख - रेख के लिए विभिन्न राजकीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इनके चयन में प्रायः शासकीय योग्यता, सैन्य - दक्षता तथा कूटनीतिक निपुणता का विशेष ध्यान रखा जाता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट प्रशासन में स्त्रियां भी शासन कार्य में भाग लेती थीं। चालुक्य प्रशासन में राजमहिषी एवं महामण्डलेश्वर की पत्नी का भी महत्वपूर्ण स्थान होता था।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में शासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए साम्राज्य को कई प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त किया गया था। चालुक्यों का साम्राज्य मंडल (प्रान्त) विषय, भुक्ति (तहसील) व ग्राम में विभाजित था, जिनके अधिकारी क्रमशः महामण्डलेश्वर, विषयपति, भोगपति, गामुंड (ग्राम अधिकारी) कहलाते थे। इसी प्रकार राष्ट्रकूटों का साम्राज्य राष्ट्र, विषय, भुक्ति व ग्राम में विभक्त था। प्राचीन काल की भांति इन दोनों कालों में भी ग्राम शासन की सबसे छोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई के रूप में थी। राष्ट्रकूट शासन प्रणाली में ग्राम का प्रशासन कार्य प्रायः पटवारी तथा ग्राम प्रधान के द्वारा संचालित होता था। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट दोनों ही प्रशासनों में ग्राम स्वायत्तशासी थे।

राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी राजस्व व्यवस्था पर ही निर्भर होती है। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट वंश के राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत राजाओं ने प्रजा पर विभिन्न प्रकार के कर लगाये थे। यह कर नकद और अनाज दोनों ही रूपों में लिये जाते थे। चालुक्य काल में विभिन्न करों के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें भूमि कर, उपरिकर, गृहकर, सामयिक कर, भोगकर आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त अपराधियों पर लगाया गया अर्थदण्ड का धन राज्य की सम्पत्ति होती थी। पूर्ववर्ती कालों की भांति चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में भी आय का प्रमुख साधन भूमिकर ही था। राष्ट्रकूटों की अपेक्षा चालुक्यों के शासन में करों की संख्या

अधिक थी परन्तु तत्कालीन उन्नत सामाजिक जीवन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इन करों का उपयोग प्रजा के कल्याणार्थ ही अधिक होता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासक जनता से वसूले गये करों को राज्य की समृद्धि तथा विकास के लिए व्यय करते थे। इस प्रकार दोनों राजवंशों की शासन प्रणाली में समृद्धि एवं ऐश्वर्य वृद्धि की समुचित व्यवस्था की गई थी।

चालुक्य और राष्ट्रकूट साम्राज्यों की न्याय व्यवस्था के विषय में स्पष्ट जानकारी तो प्राप्त नहीं होती है परन्तु कुछ लेखों से ज्ञात होता है कि चालुक्य और राष्ट्रकूट शासकों ने प्राचीन भारतीय परम्पराओं पर आधारित रहकर न्याय व्यवस्था स्थापित की। न्याय व्यवस्था का प्रधान राजा होता था। न्याय व्यवस्था के लिए अलग – अलग स्तर पर न्यायालय स्थापित थे। चालुक्य और राष्ट्रकूट न्याय व्यवस्था में स्थानीय ग्राम सभायें एवं अन्य स्थानीय संस्थायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। मंडल, विषय, भुक्ति और ग्रामों में क्षेत्रीय न्यायालय होते थे। दोनों ही कालों की न्याय प्रणाली में दण्ड विधान उदार था और प्रायः अर्थदण्ड ही दिये जाते थे। न्याय व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य सुधारवादी दृष्टिकोंण था।

चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओं ने अपनी साम्राज्य की सुरक्षा के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया था। इन्होंने अपनी विशाल एवं बलशाली सेना की सहायता से ही

विस्तृत भू – भाग पर दीर्घ अवधि तक कुशलतापूर्वक शासन किया। पूर्व प्राचीन परम्परा की भांति इस समय राजा ही सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। राजा के पश्चात् युवराज सैन्य संचालन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। चालुक्य और राष्ट्रकूट सैन्य प्रशासन में गज सेना, अश्व सेना, पदाति का विशेष उल्लेख मिलता है। इन सैन्यांगों के अतिरिक्त चालुक्य सैन्य प्रशासन में एक शक्तिशाली नौ सेना भी मुख्य रूप से विद्यमान् थी। राष्ट्रकूटों की सैन्य व्यवस्था भी निपुण तथा उदार थी और इसी सैन्य संगठन के आधार पर उन्होंने उत्तरी भारतीय अभियान में गौरवपूर्ण सफलताएं अर्जित की थीं। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट कालीन सैन्य प्रशासन की प्रमुख विशेषता थी कि उन्होंने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा हेतु विशाल सैन्य संगठन को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए विभिन्न सैन्याधिकारियों की नियुक्ति की थी। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट राज्यों में नियमित सैन्य बल थे। आवश्यकता पड़ने पर सामन्त लोग भी अपनी सेनायें भेजते थे। तत्कालीन अनेक स्रोतों से अस्त्र – शस्त्रों एवं दुर्गादि की आवश्यकता पर भी प्रकाश पड़ता है।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राजाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। पूर्ववर्ती कालों की भांति इन राजवंशों के शासकों चालुक्यों और राष्ट्रकूटों ने बाहरी देशों में दूतमण्डल भेजे थे। चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने ईरान के शासक खुसरो द्वितीय

के दरबार में एक दूतमण्डल भेजा था। चालुक्य नरेश सोमेश्वर के मानसोल्लास नामक ग्रन्थ से जो मण्डल सिद्धान्त एवं षाड्गुण्य नीति पर प्रकाश पड़ता है, वह पूर्ववर्ती विचारकों कौटिल्य, मनु एवं कामन्दक आदि से काफी मेल खाता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को स्थापित करने हेतु इन नीतियों का प्रयोग होता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य नरेश प्रायः योग्य एवं कुशल प्रशासक थे। राजा प्रमुख प्रशासक था जिसके सहायतार्थ मंत्रिमण्डल नियमित अधिकारितंत्र था। साम्राज्य के विभागों प्रान्त, जिला एवं स्थानीय स्तर पर संस्थायें प्रशासन में सुचारू रूप से अपनी भूमिकाएं निभाती थीं। चालुक्य नरेशों के शासनकाल में धर्म, कला एवं संस्कृति की उल्लेखनीय प्रगति हुई तथा अर्थ व्यवस्था संतोषजनक रही। इसी प्रकार राष्ट्रकूट प्रशासन में भी राजा सर्वोच्च प्रशासक एवं नीतिज्ञ था। युवराज की प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका थी। राष्ट्रकूट राजाओं की राजसभा प्रशासन की महत्वपूर्ण अंग थी, जिसमें महत्वपूर्ण अधिकारी, सामन्त, दूत एवं स्थानीय अधिकारी उपस्थित रहते थे। विभिन्न प्रशासनिक अनुभागों में स्वायत्तशासी संस्थायें कार्यरत थीं। वे कुशल एवं सुयोग्य शासक थे, जिसकी छत्रछाया में धर्म, कला, अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति के क्षेत्र में विशिष्ट प्रगति हुई।

इस प्रकार चालुक्य और राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि दोनों ही शक्तियां दक्षिण भारत के इतिहास में अपने – अपने समय की श्रेष्ठतम थीं तथा दोनों ही राजवंशों ने अपने कुशल शासन व्यवस्था से अपने साम्राज्य का अत्याधिक विकास किया। ये दोनों ही राजवंश भारतीय इतिहास में अपनी सुसंगठित शासन व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय प्रशासन, ग्राम प्रशासन, राजस्व व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सैन्य प्रशासन की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। दोनों ही राजवंशों में काफी समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। चालुक्य और राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों ने प्राचीन काल से चली आ रही परम्परागत विशेषताओं के आधार पर ही आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए दक्षिण भारत के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण उल्लेखनीय योगदान दिया जो कि पूर्ण रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास में विद्यमान् है। जो कुछ असमानतायें दिखती हैं वह राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की गयी थीं।

शासन व्यवस्था के दृष्टिकोंण से दोनों राजवंशों के मध्य असमानताओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :–

- चालुक्यों के समय में विभागों का जितना विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है, उतना राष्ट्रकूटों के समय

नहीं होता। राष्ट्रकूटों के समय केवल तत्कालीन कुछ साक्ष्यों से ही विभागों और उससे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है। केवल अनुमान लगाया जाता है कि पूर्ववर्ती शासन व्यवस्था की तरह अनेक विभागों की सहायता से शासन का कार्य संचालित होता होगा।

- ❖ राष्ट्रकूटों के समय उत्तराधिकार के संदर्भ में कभी – कभी ज्येष्ठता के सिद्धान्त का उल्लंघन पाया गया है। यही कारण रहा है कि राष्ट्रकूटों के समय में उत्तराधिकार को लेकर आपसी संघर्ष हुए। इसके प्रभाव आने वाले समय में देखने को मिले और राजकीय पदाधिकारियों, सामन्तों आदि ने इसमें भूमिका निभायी।

- ❖ दोनों ही राजवंशों के अन्तर्गत महिलाओं ने शासन कार्य में काफी सक्रियता दिखाई लेकिन जितने ज्यादा विवरण चालुक्य वंश में मिलते हैं उतने राष्ट्रकूटों के समय में नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि चालुक्य वंशीय प्रशासनिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ – चढ़ कर रही।

- ❖ चालुक्यों ने अपने सैन्य संगठन के अन्तर्गत जल सेना का जितना उपयोग किया उतना सम्भवतः

राष्ट्रकूटों के समय में नहीं किया गया। केवल समकालीन कुछ राजवंशों के साक्ष्यों के आधार पर ही ये अनुमान किया जाता है कि राष्ट्रकूट शासक भी कभी – कभी जल सेना का उपयोग करते रहे होंगे।

- ❖ सामन्त व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्तों से कर प्राप्त करने के उल्लेख विशेष तौर पर राष्ट्रकूटों के समय ज्यादा प्राप्त होते हैं। कुछ विशेष प्रकार के कर राष्ट्रकूटों के समय ज्यादा लगाये गये प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ जब कोई सरकारी अधिकारी गांव में सरकारी कार्य हेतु रूकता था तो उसका सारा खर्चा गांव वाले ही उठाते थे, यह एक तरह का विशेष कर था जिसका उल्लेख राष्ट्रकूटों के समय में मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि कुछ विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार के कर लगाने की प्रथा राष्ट्रकूट काल में थी।

- ❖ सामन्ती राज्यों का जितना बोलबाला राष्ट्रकूटों के समय हुआ, उतना सम्भवतः चालुक्यों के समय नहीं हुआ। राष्ट्रकूटों के समय सामन्ती राज्यों की संख्या काफी थी और उन्होंने तत्कालीन राजनीति को प्रभावित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। अधिकांश राज्यों का शासन इन

सामन्तों द्वारा ही संचालित होता था। कभी - कभी यह सामन्त राजा के चुनाव आदि में भी बढ़ - चढ़ कर भाग लेते थे।

इस प्रकार दोनों ही राजवंशों की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक समानतायें और असमानतायें दृष्टिगोचर होती हैं।

अध्याय : १

चालुक्य एवं राष्ट्रकूट वंशों का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास एवं महत्व

चालुक्य एवं राष्ट्रकूट वंशों
का
संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास एवं महत्व

आन्ध्र सातवाहनों के पतन के पश्चात् दक्षिण भारत में जो राजनीतिक एकता विलुप्त हो गयी थी, उसे एकता के सूत्र में बांधने का कार्य चालुक्यों ने ही किया, जिन्होंने न केवल सम्पूर्ण भारत में बल्कि इससे बाहर भी अपनी कीर्ति पताका स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इस राजवंश की प्रमुख तीन शाखायें थीं, बादामी, पूर्वी एवं कल्याणी के चालुक्य। बादामी से शासन करने वाले चालुक्य शासकों में प्रथम नाम जयसिंह और रणराग के प्राप्त[1] होते हैं। यद्यपि बहुत बाद में कल्याणी से शासन करने वाले विक्रमादित्य पंचम के कौथेम अभिलेख और अन्य परवर्ती चालुक्य अभिलेखों में जयसिंह को राष्ट्रकूट शासक कृष्ण के पुत्र इन्द्र का विजेता कहा गया है, इस कथन को बहुत महत्व नहीं दिया जा सकता। ऐहोल अभिलेख में मात्र यही उल्लेख है कि चालुक्य अन्वय के रूप में जयसिंह वल्लभ प्रसिद्ध था।[2] वंश का वास्तविक संस्थापक तो पुलकेशिन प्रथम ही था।

---

[1] ऐहोल अभिलेख, श्लोक सं0–5 और 6. एपि0 इण्डि0, भाग–6, पृ0–1–12.

[2] वही, 5, जयसिंह वल्लभ इति ख्यातिश्चालुक्यान्वयः।

➢ पुलकेशिन प्रथम :-

पुलकेशिन प्रथम रणराग का पुत्र था, निश्चित ही वह चालुक्य वंश का प्रथम, प्रतापी राजा था। पुलकेशिन प्रथम का शासन काल 540 ई० से 566 ई० तक निश्चित किया गया है।[1] इसके द्वारा वातापी में दुर्ग निर्माण और उसको बनाने का उल्लेख भी अभिलेख में मिलता है।[2] उसने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में अश्वमेध सहित अनेक यज्ञों का सम्पादन कराया था। उसने महाराज की उपाधि धारण की। उसे सत्याश्रय और रणविक्रम भी कहा गया है। मंगलेश के नेरूर दानपत्र में इसे धर्मज्ञ तथा मनु की तरह धर्मशास्त्रविद् तथा पुराणों, महाकाव्यों एवं इतिहास का ज्ञात कहा गया है।

पुलकेशिन प्रथम के दो पुत्रों में कीर्तिवर्मन ज्येष्ठ पुत्र था। ऐसा जान पड़ता है कि उसके एक पुत्र पूगवर्मा की मृत्यु अपने पिता के सामने ही हो गयी थी। कीर्तिवर्मन ही 566 ई० में उत्तराधिकारी हुआ। पुलकेशिन प्रथम की अन्तिम तिथि भी यही ज्ञात होती है।

---

[1] दृष्टव्य देसाई, पी.बी., ए हिस्ट्री ऑफ् कर्नाटक, पृ० - 93.

[2] ऐहोल अभिलेख, पंक्ति-7,

तस्याभदन्तनूजः पोलिकोशियःश्रितेन्दुलान्तिरापि।

श्री वल्लभोंव्यायातीद्वातापिपुरी बरताम्।

➢ कीर्तिवर्मन प्रथम :-

पुलकेशिन प्रथम बप्पूर कुल की दुर्लभा देवी का पुत्र था। उसने चालुक्य राज्य का शासन 566 – 567 ई0 से 597 – 598 ई0 तक किया। चिपलुन अभिलेख में तो वातापी नगर का संस्थापक कीर्तिवर्मन प्रथम को ही माना गया है।[1] अपने पिता के समान उसने भी अनेक विरूद्धों को धारण किया था। मंगलेश के महाकूट[2] अभिलेख स्तम्भलेख में कीर्तिवर्मन को बंग, अंग, कलिंग, वट्टूर, मगध, माद्रक, केरल, गंग, मूषक, पाण्ड्य, द्रमिड, चुलुक और मूलक देशों का विजेता कहा गया है। यह अभिलेखकार की कोरी कल्पना मात्र है। किन्तु ऐहोल अभिलेख का यह कथन ऐतिहासिक प्रतीत होता है कि उसने नलों, मौर्यों और कदम्ब शासकों का नाश किया।[3] यह वैष्णव था और उसने अपने छोटे भाई मंगलेश की देख – रेख में विष्णु के लिए गुफा मन्दिर का निर्माण करवाया था। ऐहोल अभिलेख में इसके चित्रण की बड़ी प्रशंसा की गई है।[4]

---

[1] वाताप्यः प्रथम–विधाता, एपि0इण्डि0, भाग–3, पृ0 – 8.

[2] एपि0इण्डि0, भाग–19, पृ0 – 36.

[3] एपि0इण्डि0,भाग–6, पृ– 1–12,
नलमौर्य्यकदम्बकालरात्रिस्तनयस्तस्य बभूव कीर्तिवर्मन।

[4] ऐहोल अभिलेख,पंक्ति–9,परदारनिवृत्तचितवृत्रपिथीर्यस्य रिपुश्रीयानुकृष्टा।
एपि0 इण्डि0, भाग–6, पृ0 – 1–12.

➢ मंगलेश :–

मंगलेश कीर्तिवर्मन प्रथम का छोटा भाई था। कीर्तिवर्मन की मृत्यु 598 ई0 में हुई। उसके बाद ये गद्दी पर बैठा। महाकूट स्तम्भ अभिलेख में उसकी उपलब्धियों की चर्चा की गई है। रविकीर्ति विरचित ऐहोल प्रशस्ति तथा बाद के कल्याणी वाले चालुक्यों के कौथेम दानपत्र में उसके विजितों में कल्चुरियों और रेवतीद्वीप के शासकों की गिनती की गई है।[1] नीलकंठ शास्त्री की धारणा है कि सब मिलाकर कल्चुरि – भूमि पर मंगलेश का आक्रमण चिरस्थायी न रहा और उसे एक सफल अभियान मात्र समझना चाहिए।[2] ऐहोल अभिलेख में मंगलेश द्वारा कोंकण अभियान की भी चर्चा है। अभिलेख के अनुसार मंगलेश ने एक बड़ी सेना लेकर रेवतीद्वीप को हर तरफ से घेर लिया।[3] उसका यह अभियान सफल था।

---

[1] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, पूर्वोक्त, पृ0–201, देसाई, पी.बी., पूर्वोक्त, पृ0 – 93.

[2] दृष्टव्य याजदानी, जी0, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् द देकन, भाग–1, पृ0 – 210.

[3] ऐहोल अभिलेख, श्लोक – 13,

पुनरपि च जिधृक्षोभ्सैन्यमाकान्त सालम्।
रचिर बहुपतांक रेवतीद्वीपमाशु।।

मंगलेश ने 'पृथ्वीवल्लभ', 'श्रीपृथिवीवल्लभ', के अतिरिक्त 'रणविक्रान्त' और 'अरूरणविक्रान्त' जैसे विरूद्ध धारण किये। 'परमभागवत्' नामक उपाधि से उसकी विष्णुभक्ति परिलक्षित होती है। आगे चलकर पुलकेशिन ने मंगलेश को युद्ध में पराजित कर चालुक्य सत्ता पर अपना अधिकार स्थापित किया।

➢ *पुलकेशिन द्वितीय :-*

पुलकेशिन द्वितीय चालुक्य वंश का सर्वाधिक प्रतापी सम्राट् था। वह कीर्तवर्मन का पुत्र था। पुलकेशिन ने 609 ई0 से 642 ई0 तक सफलतापूर्वक चालुक्य वंश के शासन का संचालन किया।

पुलकेशिन द्वितीय साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का शासक था। साम्राज्य को पूर्णतः अपने अधीन लाने तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए पुलकेशिन ने अनेक सैनिक अभियान किये, जिसका क्रमिक वर्णन ऐहोल अभिलेख में मिलता है। उसने सर्वप्रथम आप्पायिक और गोविन्द को युद्ध में पराजित किया। तत्पश्चात् उसने कदम्बों पर आक्रमण करके राजधानी बनवासी पर अधिकार कर लिया। कदम्बों को पराजित करने के बाद पुलकेशिन द्वितीय ने तलकाड़ के गंगनरेश[1] दुर्विनीत को पराजित

[1] ऐहोल अभिलेख, पंक्ति-18.

किया तथा उसकी कन्या से अपना विवाह किया जिससे विक्रमादित्य प्रथम उत्पन्न हुआ।

पुलकेशिन द्वितीय के समक्ष लाटों, मालवों तथा गुर्जरों ने भी आत्मसमर्पण किया।[1] पुलकेशिन द्वितीय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय कन्नौज के प्रतापी सम्राट् हर्षवर्धन पर थी। 'हुई ली' नामक चीनी विवरण से ज्ञात होता है कि स्वयं हर्ष ने पुलकेशिन द्वितीय के विरूद्ध सैन्य – संचालन किया था।[2] किन्तु इस संघर्ष का परिणाम हर्ष के पक्ष में नहीं गया। रतिकीर्ति इस युद्ध प्रसंग और उसके परिणाम का वर्णन ऐहोल अभिलेख में करता है "पुलकेशिन द्वितीय के द्वारा रण में मारी गई अपनी गजेन्द्र सेना को देखकर भयग्रस्त होकर हर्ष हर्षरहित हो गया।[3]" पुलकेशिन द्वितीय का नर्मदा तक प्रभाव स्थापित हो गया और वह 'परमेश्वर' की उपाधि से प्रख्यात हुआ। इस विजय ने उसे तीन महाराष्ट्रों का स्वामी बना दिया और उसके अधीन 89000 ग्राम हो

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग–6, पृ0 – 8.

[2] वील, लाइफ् ऑफ् युवा– न – च्वांग, पृ0 – 1–47.

[3] ऐहोल अभिलेख, पंक्ति–23, एपि0 इण्डि0, भाग–6.
अपरिमित विभूतिस्फीतसामन्तसेना मुकुटमणि मयूखाकान्त पदारिविन्दः।
यधिपतितगजेन्द्रानीक वीभत्य भृतो भयविगलित हर्षो येन चाकारिहर्ष।।

गये।[1] इस बात को लेकर बड़ा विवाद है कि हर्ष और पुलकेशिन के बीच युद्ध कब हुआ। कुछ विद्वानों को मानना है कि इन दोनों सम्राटों के बीच का युद्ध 612 ई० के पूर्व लड़ा जा चुका था।[2] अधिकांश विद्वानों के अनुसार यह युद्ध 630 ई० और 634 ई० के मध्य लड़ा गया था।

ऐहोल अभिलेख से स्पष्ट है कि पुलकेशिन द्वितीय ने पल्लव शासक महेन्द्रवर्मन प्रथम को पराजित किया था।[3] पुलकेशिन द्वितीय द्वारा कावेरी पार कर चोड़ (चोल), केरल और पाण्ड्य राजाओं से मित्रता स्थापित करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[4] सम्भवतः पल्लवों के विरूद्ध एक मार्चा बनाने का ही यह चालुक्य प्रयत्न था।

पुलकेशिन द्वितीय केवल युद्धों में ही नहीं फंसा रहा, अपितु उसने दूर - दूर के देशों के साथ कूटनीतिक

---

[1] वही, पंक्ति-25, अगमदधिपिचवं योमहाराष्ट्रकाणां।
नवनवति सहस्त्रग्रामभाषां त्रयाणां।।

[2] दृष्टव्य नीलकंठ शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ० - 214.

[3] ऐहोल अभिलेख, श्लोक- 29-30,
आकान्तात्मषलोन्नतिम्बलरजछनन कांचीपुरः।
प्रकान्तरितप्रतापमकरोधः वल्लभ्वांना पतिम्।।

[4] ऐहोल अभिलेख, श्लोक-31, एपि०इण्डि०, भाग-6, पृ०-1-12.
चोलकेरलपाण्ड्यानां योभूत्तत्रमहर्दये पल्लवानीकहार तुहिनेतर दीधितिः।

सम्बन्ध भी स्थापित किया। मुस्लिम इतिहासकार टबरी के अनुसार[1] पर्सिया के राजा खुसरो द्वितीय ने चालुक्य नरेश के द्वारा भेजे गये दूत का स्वागत 625 – 26 ई0 में किया। यह पुलकेशिन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दृढ़ता को स्पष्ट करता है।

पुलकेशिन द्वितीय को अपने शासन के अन्तिम वर्षों में पराजय का मुंह देखना पड़ा। अन्ततः पल्लव – चालुक्य संघर्ष पुनः प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध में निःसंदेह पुलकेशिन द्वितीय मारा गया और 642 ई0 से 655 ई0 तक पल्लवों का अधिकार बादामी पर बना रहा।[2] किन्तु इतना स्पष्ट है कि 654 – 55 में गंग वंशीय नृप दुर्विनीत के सक्रिय सहयोग से विक्रमादित्य प्रथम ने वातापी की अराजक स्थिति का अन्त किया और चालुक्य राज्य की सुरक्षा की।

---

[1] दृष्टव्य दि क्लासिकल एज, पृ0–627.

[2] पुलकेशिन द्वितीय का पल्लवों के साथ संघर्ष महेन्द्रवर्मन प्रथम के शासन काल से प्रारम्भ हुआ था जिसमें वह विजयी भी हुआ था पर अन्त में वह 642 ई0 में नरसिंहवर्मन प्रथम द्वारा बादामी में पराजित हुआ और सम्भवतः इसी युद्ध में वह मारा भी गया।

➢ विक्रमादित्य प्रथम :-

पुलकेशिन द्वितीय के उत्तराधिकारी विक्रमादित्य प्रथम के शासनकाल के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य प्रथम का शासनकाल 654 ई0 – 55 ई0 से 679 ई0 – 81 ई0 तक रहा। चालुक्य अभिलेखों में विक्रमादित्य प्रथम की अनेकानेक उपाधियों के साथ यह कथित है कि उसने अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। ये शत्रु पल्लव आक्रमण और उत्तराधिकारी के लिए लड़ने वाले उसके अपने ही भाईगण थे। गदवल[1] अभिलेख में जहां एक ओर चालुक्य पल्लवों के विरूद्ध सम्पूर्ण विजय का दावा करते हैं, वहां कूरम दानपत्र[2] में पल्लव अपनी सफलता का बखान करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पल्लव चालुक्य संघर्ष का पुनारम्भ विक्रमादित्य प्रथम ने 654 ई0 के पूर्व कर दिया था और उसे जो आरम्भिक सफलता मिली उसी के परिणामस्वरूप वह वातापी को निरापद बनाकर अपने राज्य का शुभारम्भ कर सका था।

विक्रमादित्य प्रथम निःसन्देह एक महान् शासक था। जिसने अपने पिता के समय समाप्त गरिमा को पुनस्थापित किया। अपने घोर शत्रु पल्लव वंश की तीन

[1] एपि0इण्डि0, भाग–10, पृ0 – 100–144.

[2] साउथ इण्डियन इन्सिकृप्शनस, भाग–1, पृ0 – 144.

पीढ़ियों से युद्ध करता रहा तथा पल्लव शान्ति को गहरा धक्का दिया। अभिलेखों में रणरसिक, श्री पृथ्वीवल्लभ, भट्टारक - महाराजाधिराज परमेश्वर तथा सत्याश्रय आदि विरूद्धों से उसे विभूषित किया गया है।

➢ विनयादित्य :-

विनयादित्य ने अपने पिता विक्रमादित्य के जीवित रहते ही शासन संभाल लिया था। उसके अभिलेखों में उसके राज्यारोहण की विभिन्न तिथियों का संकते मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 671 ई0 के पूर्व ही विनयादित्य युवराज बन गया और उसने 696 ई0 तक राज्य किया। उसने वंश के राजाओं द्वारा धारण किये जाने वाले उन सभी विरूद्धों को धारण किया, जो एक परिपाटी जैसी हो चुकी थी।

विनयादित्य के अभिलेखों में विस्तृत विजयों का श्रेय दिया गया है। उसने पल्लवों, वल्लभों, कलभ्रों, दैह्यों, विलों, मालवों, चोलों, पाण्ड्यों तथा अन्य शक्ति को अपने अधीन किया।[1] रायगढ़ अभिलेख[2] में उसकी उत्तरी अभियान की भी चर्चा है। विनयादित्य ने अनेक बाहरी

---

[1] दृष्टव्य मिश्र, श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ0-173, दुबे, हरि नारायण, पूर्वोक्त, पृ0-67.

[2] इपि0इण्डि0, भाग-10, सं0 - 14.

देशों से भी भेंटे वसूली थी। उसने अपने पितामह की तरह सम्पूर्ण उत्तर भारत के सम्राटों को पराजित कर पालिध्वज व सम्प्रभुत्व के अन्य चिन्हों को प्राप्त किया।[1] 696 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई।

➢ *विजयादित्य :-*

विनयादित्य का 'प्रिय पुत्र' विजयादित्य 696 ई0 - 733 ई0 में उसका उत्तराधिकारी हुआ। अपने वंश की परम्परागत उपाधियों के अतिरिक्त उसने सत्याश्रय, समस्तभुवनाश्रय और परमभट्टारक जैसी उपाधियां भी धारण कीं। विजयादित्य वास्तुनिर्माता भी था। बीजापुर में उसने भगवान शंकर को निर्मित करके अपने नाम से ही विजयेश्वर का भव्य मंदिर बनवाया, जिसे अब संगमेश्वर का मंदिर कहा जाता है।[2]

➢ *विक्रमादित्य द्वितीय :-*

734 - 35 ई0 में विजयादित्य का 'प्रिय पुत्र' विक्रमादित्य द्वितीय सिंहासनस्थ हुआ और लगभग 11 वर्षों (734-745ई0) तक शासन चलाता रहा। उसने भी अपने पूर्वजों के सभी राजकीय विरूद्ध धारण किये। लाट

---

[1] इण्डि0ऐन्टी0, भाग-1, पृ0 - 129.

[2] एपि0इण्डि0, भाग-3, पृ0-1.

(पट्टडकल इन्सकृप्शन ऑफ् कीर्तिवर्मन सेकेण्ड)

के स्थानीय गर्वनर पुलकेशिराज के 738 ई० – 739 ई० में तिथित नौसारी लेख से सूचना मिलती है कि अरबों ने नौसारी पर आक्रमण किया, लेकिन पुलकेशिराज ने उन्हें बुरी तरह पराजित कर वापस लौटा दिया। केन्दूर तथा वक्केरि लेखों से पता चलता है कि विक्रमादित्य द्वितीय ने पल्लव नरेश नंदिवर्मा द्वितीय को पराजित करने में सफलता प्राप्त की थी।

विक्रमादित्य द्वितीय भी एक महान् निर्माता था। उसकी दो पत्नियां थीं। ये दोनों बहनें थीं और कल्चुरि राजकुमारियां थीं। बड़ी महादेवी ने पट्टदकल में विरूपाक्ष मन्दिर (लोकेश्वर) का निर्माण कराया। छोटी महारानी त्रयलोक द्वारा निर्मित त्रयलोकेश्वर का मन्दिर पत्थरों का है, जो अब नष्ट हो गया।

➢ कीर्तिवर्मन द्वितीय :–

विक्रमादित्य का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कीर्तिवर्मन द्वितीय हुआ और उसने वंश की अनेक उपाधियां धारण कीं – यथा नृपसिंह, सत्याश्रय, वल्लभ आदि। किन्तु चालुक्य वंश की सत्ता क्षीण होती ही गयी और अन्ततः उन्हीं के अनेक सामन्तों में से एक सामन्त वंश ने उन्हें उखाड़ फेंका। वहीं नया वंश राष्ट्रकूट नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसका प्रथम संस्थापक दन्तिदुर्ग था। यह

घटना आठवीं शताब्दी के मध्य में घटी और इस तरह कीर्तिवर्मन द्वितीय के साथ बादामी के चालुक्य वंश का अन्त हो गया।

वेंगी के पूर्वी चालुक्य

वेंगी का चालुक्य वंश बादामी के चालुक्य वंश की ही एक शाखा के रूप में स्थापित हुआ। पूर्व में बसे रहने के कारण इस शाखा को पूर्वी चालुक्य कहा गया। यह राज्य मुख्य रूप से वर्तमान आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच स्थित था। वेंगी के चालुक्य वंश का संस्थापक कुब्ज विष्णुवर्धन बादामी से शासन करने वाले पुलकेशिन द्वितीय का छोटा भाई था। वह और उसके सभी वंशज अपने को पश्चिमी चालुक्यों की तरह ही मानव्यगोत्री, हारितिपुत्र तथा कार्तिकेय और सप्तमात्रृकाओं से जोड़ते हैं। साथ ही वे अपने को कदम्बों और इच्छवाकुओं से भी जोड़ते हें, जिनके अधिकार वाले भू – क्षेत्रों को उन्होंने स्वयं अधिकृत कर लिया था।[1] किन्तु उनका पूरा वांशिक मूल पुलकेशिन द्वितीय के हैदराबाद वाले (613 ई0) अभिलेख[2] से

---

[1] फ्लीट, डाइनेस्टीज् ऑफ् दि कनारीज डिस्ट्रिक्ट्स, बाम्बे गजेटियर, भाग – 1–2, पृ0 – 336–337.

[2] दृष्टव्य वेंकटकृष्णराव, भवराजु, ईस्टर्न चालुक्याज ऑफ् वेंगी, पृ0–5.

ही प्राप्त होता है। वही मूल बाद वाले सभी चालुक्य वंशी अभिलेखों में भी दुहराया गया है, जिनमें विक्रमादित्य पंचम का कौथेम अभिलेख[1] मुख्य प्रतीत होता है। लगभग 500 वर्षों तक वे वेंगी के स्वामी बने रहे। इस वंश का इतिहास अनगिनत ताम्रपत्रों तथा कतिपय शिलालेखों पर आधारित है। पूर्वी चालुक्यों का इतिहास समय - समय पर उत्तराधिकार के संघर्ष का इतिहास रहा है, जिसमें अन्य समकालीन शक्तिशाली राजवंशों ने हस्तक्षेप किया।

➢ कुब्ज विष्णुवर्धन :-

कुब्ज विष्णुवर्धन वेंगी का संस्थापक था। उसने लगभग 18 वर्ष (624 - 41 ई0) तक शासन किया। उसने 'विषयसिद्धि', 'मकरध्वज', 'कामदेव' जैसे विरुद्ध धारण किये। पुलकेशिन द्वितीय के कोप्पारम पत्रों से जारी किये जाने (631 ई0) तक विष्णुवर्धन ने पूर्वी दक्कन में अनेक सफलतायें प्राप्त कर ली थीं तथा लगभग स्वतंत्र हो चुका था।[2] 617 - 618 ई0 के सतारा अभिलेख में वह अपने को युवराज और बादामी के शासक का प्रिय कहता है।[3] यह अनुमान लगाया गया है[4] कि विष्णुवर्धन

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग-18, पृ0-15 और आगे.

[2] दृष्टव्य मिश्र, श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ0 - 82.

[3] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, पूर्वोक्त, पृ0 - 216.

[4] दृष्टव्य वेंकटकृष्णराव, भवराजु, पूर्वोक्त, पृ0 - 90.

की मृत्यु कलिंग के विरुद्ध युद्ध लड़ते हुए ही हो गयी। यह शासक विद्या प्रेमी और विद्वानों का संरक्षक भी था। एक अनुश्रुति के अनुसार *किरातार्जुनीयम्* महाकाव्य का रचयिता भारवि उसके आश्रय में रहता था।

➢ जयसिंह प्रथम :-

कुब्ज विष्णुवर्धन के पश्चात् उसका पुत्र जयसिंह प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने लगभग 32 वर्षों (642 – 73 ई0) तक राज्य किया। उसने 'सर्वसिद्धि' नामक उपाधि धारण की। उसकी विद्वता की प्रशंसा उसके अभिलेखों[1] में की गई है। उसी के समय तेलगू भाषा का सबसे पहला अभिलेख लिखवाया गया।[2] विप्परला से प्राप्त शिलालेख उसके राज्यकाल के आठवें वर्ष का है, जो प्राचीनतम् तेलगू अभिलेख में एक है।

➢ इन्द्र भट्टराक :-

जयसिंह के पश्चात् इन्द्र भट्टारक राजगद्दी पर बैठा। इसे 'इन्द्रराज', 'इन्द्र महाराज' तथा 'त्यागधेनु' भी कहा गया है। अधिराज इन्द्र के नेतृत्व में उसके शत्रुओं के

---

[1] दृष्टव्य वेंकटकृष्णराव, भवराजु, पूर्वोक्त, पृ0–99 तथा 104, दृष्टव्य विष्णुकुण्डिनराजा तृतीय माधववर्मन का पोलमोरू अभिलेख।

[2] आके0 सर्वे ऑफ् इण्डि, 1905–1906, पश्चिमी चक, साउथ इण्डि इन्स्क्रप्शन्स भाग–6, सं0–584।

आक्रमण के कारण वह मात्र सात दिन ही राज्य कर सका।

➢ विष्णुवर्धन द्वितीय :-

इन्द्र भट्टारक के बाद उसका पुत्र विष्णुवर्धन द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसे विषमसिद्धि, मकरध्वज और प्रलयादित्य आदि की उपाधियां प्राप्त हुईं। उसने लगभग नौ वर्ष (673 – 682 ई0) तक राज्य किया। उसके समय की भी कोई विशेष घटना ज्ञात नहीं होती।

➢ मंगि – युवराज :-

विष्णुवर्धन द्वितीय के पश्चात् उसका भाई मंगि – युवराज राजगद्दी पर आसीन हुआ उसने 24 वर्षों (682 – 706 ई0) तक राज्य किया। उसे 'विजयादित्य' तथा 'विजयासिद्धि' भी कहा गया। उसके अपने अभिलेख उसे लोकश्रय कहते हैं।

➢ जयसिंह द्वितीय :-

मंगि – युवराज का उत्तराधिकारी उसका पुत्र जयसिंह द्वितीय था, जिसने 13 वर्ष (706 – 98 ई0) तक राज्य किया। जयसिंह के राज्य के पश्चात् राजगद्दी पर उत्तराधिकार के लिए प्रथम संघर्ष प्रारम्भ हुआ। जयसिंह द्वितीय के अन्य भाई राजगद्दी के लिए आपस में

उलझ पड़े। उसके एक चचेरे भाई ने छः महीने राजगद्दी पर अपना अधिकार जमाये रखा। तत्पश्चात् उसे भी हटाकर विष्णुवर्धन तृतीय ने वेंगी राज्य को अधिकृत कर लिया।

➢ *विष्णुवर्धन तृतीय* :-

विष्णुवर्धन तृतीय ने गद्दी धारण करने के बाद विष्णुराज, विषयसिद्धि, मकरध्वज आदि उपाधियां धारण की। इन साधारण उपाधियों के अतिरिक्त उसने 'महाराजाधिराजपरमेश्वर', 'परमभट्टारक' और '*समस्तभुवनाश्रय*' जैसी साम्राज्यसूचक उपाधियां भी धारण कीं।[1] उसने लगभग 37 वर्षों (719 – 755 ई0) तक शासन किया। इसके द्वारा लड़े गये युद्धों का उल्लेख विष्णुवर्धन तृतीय के उदयेन्दिरम् अभिलेख[2] में प्राप्त होता है।

विष्णुवर्धन के समय के कम से कम 9 अभिलेख प्राप्त होते हैं। उनमें एक तो प्राचीन तेलगू भाषा में है और शेष संस्कृत भाषा में लिखित है। उसने वैष्णव धर्म तथा शैव धर्म एवं अनेक याज्ञिक विधियों को

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग–13, पृ0–185, अहदकरम का लेख और तृतीय विष्णुवर्धन का गणपवरम अभिलेख.

[2] एपि0इण्डि0, भाग–3, पृ0–145, साउथ इण्डि0 इन्स्कृप्शन्स, भाग–2–3, सं0–141.

प्रोत्साहन दिया, जिसका उल्लेख उसके अभिलेखों से प्राप्त होता है।[1] उसने जैन धर्म के प्रति भी बहुत उदार व्यवहार किया तथा नन्दुम्बसति नामक एक जैन मंदिर (बसति) का निर्माण करवाया।

➢ विजयादित्य प्रथम :-

विष्णुवर्धन तृतीय का पुत्र विजयादित्य प्रथम राजगद्दी पर आसीन हुआ। उसने 18 वर्षों (755 - 72 ई0) तक राज्य किया। उसने त्रिभुवनांकुश, विजयसिद्धि, शक्तिवर्मन और विक्रमाराम जैसी उपाधियां धारण कीं। उसे विजयादित्य भट्टराज भी कहा गया। उसके शासनकाल की सर्वमुख्य घटना पश्चिमी चालुक्य वंश (बादामी) को समाप्त कर दन्तिदुर्ग और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा राष्ट्रकूट नामक एक नई सत्ता की कर्नाटक (कुन्तल) में स्थापना करना था।[2] उसका परिणाम केवल बादामी के चालुक्य वंश के अंत मात्र में ही नहीं हुआ, अपितु वेंगी के पूर्वी चालुक्य वंश पर उसका सीधा प्रभाव पड़ा। विजयादित्य प्रथम की सेनाओं को पराजित करने का दावा कर्क सुवर्णवर्ष के अभिलेख[3] में किया गया है।

---

[1] दृष्टव्य वेंकटकृष्णराव, भवराजु, पूर्वोक्त, पृ0-138-141.

[2] इण्डि0ऐण्टी0, भाग-9, पृ0-108, 18वीं से 26वीं पंक्तियां।

[3] वही, भाग-12, पृ0 - 156.

> ***विष्णुवर्धन चतुर्थ*** :-

विजयादित्य प्रथम का पुत्र विष्णुवर्धन चतुर्थ उसके पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने 37 वर्षों (772 - 808 ई0) तक राज्य किया। विष्णुवर्धन चतुर्थ को राष्ट्रकूटों के सैनिक दबाव का सामना प्रायः अपने पूरे शासनकाल तक करना पड़ा। उसने शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी पुत्री शीलमहादेवी का विवाह ध्रुव निरूपम के साथ किया।[1] ध्रुव के पश्चात् गोविन्द तृतीय के राज्यकाल में भी वेंगी राष्ट्रकूटों के अधीन रहा।

> ***विजयादित्य द्वितीय*** :-

799 ई0 में विष्णुवर्धन चतुर्थ के पुत्र विजयादित्य द्वितीय ने राज्यभार संभाला। उसने सम्भवतः कुल 45 वर्षों तक राज्य किया। उसने 'नृपनरेन्द्र' तथा 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराजपरमेश्वर' जैसी उपाधियां धारण की थीं।

विजयादित्य एक महान् योद्धा था तथा उसने राष्ट्रकूटों तथा उसके मित्रराष्ट्रों के साथ एक लम्बे अरसे तक युद्ध किया था। परवर्तीकालीन अभिलेखों के अनुसार उसने गंगों एवं रट्टों के साथ 108 युद्ध किये। उसे परमब्रह्मण्य और परममाहेश्वर कहा गया है, जिससे प्रतीत

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग-22, पृ0 - 105.

होता है कि वह ब्राह्मण धर्म मानने वाला शैवमतानुयायी था।

➢ ***विष्णुवर्धन पंचम*** :-

विजयादित्य द्वितीय के पुत्र विष्णुवर्धन पंचम ने उसके बाद लगभग डेढ़ वर्ष तक शासन किया। इसने 'कलिविष्णुवर्धन', 'सर्वलोकश्रय', 'वेंगीनाथ' तथा 'विषमसिद्धि' जैसी उपाधियां धारण कीं। वेंगवेल्ली नामक स्थान पर लड़े जाने वाले युद्ध में विष्णुवर्धन पंचम मारा गया।[1] यह घटना राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के हाथों हुई थी।

➢ ***विजयादित्य तृतीय – 'गुणग'*** :-

विष्णुवर्धन पंचम के पश्चात् इसका पुत्र विजयादित्य तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने लगभग 44 वर्षों तक राज्य किया। वह इस वंश का एक शक्तिशाली शासक था, जिसके राज्यकाल में इस वंश की प्रतिष्ठा बढ़ी। उसने *'गुणकेनल्लाट'*, *'परमचक्रराम'*, *'त्रिपुर – महेश्वर'*, *'वल्लभ'* तथा *'समस्तभुनाश्रय'* आदि अनेक उपाधियां धारण कीं। उसके समय में वेंगी राज्य उत्तर में महेन्द्रगिरि से लेकर दक्षिण में पुलकित झील तक प्रसारित था।

---

[1] गोविन्द पंचम का खम्भातदानपत्र, एपि०इण्डि०, भाग–7, पृ० – 25.

➢ भीम प्रथम :-

फ्लीट के अनुसार भीम प्रथम का राज्यारोहण 888 ई0 में हुआ किन्तु उसी के अट्टिलि अभिलेख[1] से ज्ञात होता है कि उसका राज्याभिषेक 892 में हुआ। उसे 'विष्णुवर्धन' भी कहा जाता था। उसने '*त्रिभुवनांकुश*', '*द्रोहार्जुन*' तथा '*सर्वलोकाश्रय*' की उपाधि धारण की। उसने 30 वर्ष तक राज्य किया। वह शैवमतावलम्बी था तथा उसने अनेक शिव मन्दिरों का निर्माण करवाय। इसने राष्ट्रकूटों से वेंगी की रक्षा की थी।

➢ विजयादित्य चतुर्थ :-

भीम प्रथम का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र विजयादित्य चतुर्थ हुआ। उसका उप – नाम कोल्लाभिगण्ड था। राज्यारोहण के पश्चात् उसने कलिंग के विरूद्ध सैनिक अभियान किया। सम्भवतः पूर्वी गंगों ने स्वतंत्र होने का प्रयास किया था। अभी उसके शासन के छः माह भी नहीं बीते थे कि उसकी राष्ट्रकूटों के विरूद्ध युद्ध में ही मृत्यु हो गयी।[2] यह युद्ध कृष्णा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित विजयपुरी में लड़ा गया था।

---

[1] ऐनुअल, रिर्पोट्स आन साउथ इण्डियन एपिग्राफी, 1918, पृ0 – 131.

[2] इण्डि0ऐण्टी0, भाग–7, पृ0 – 15.

➢ अम्म प्रथम :-

विजयादित्य के बाद उसका पुत्र अम्म प्रथम 922 ई0 में शासक हुआ और अगले सात वर्षों तक शासन करता रहा। उसकी मृत्यु 927 ई0 में हुई। उसने गोदावरी के तट पर राजमहेन्द्र नामक एक नवीन नगर की नींव डाली जो उसके उत्तराधिकारियों के अधीन वेंगी राज्य की राजधानी बनी। अम्म प्रथम को विष्णुवर्धन भी कहा गया है। उसके समय के राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ ने वेंगी की राजनीति में काफी हस्तक्षेप किया था।

➢ विजयादित्य पंचम :-

अम्म प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र विजयादित्य पंचम राजगद्दी पर आसीन हुआ। उसे लगभग 15 दिन शासन करने के पश्चात् ही राजगद्दी छोड़कर पिष्टपुर के किले में शरण लेनी पड़ी। जहां वह एक स्थानीय चालुक्य वंश का स्थापक बना।

➢ ताल प्रथम :-

विजयादित्य पंचम का उत्तराधिकारी ताल प्रथम भी केवल एक महीने तक शासक रहा। उसके बाद भीम प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य द्वितीय ने केवल 11 महीने मात्र राज्य करने का सौभाग्य प्राप्त किया। उसके बाद

भीम द्वितीय ने केवल आठ माह तक राजगद्दी का भोग किया।

➢ युद्धमल्ल द्वितीय :-

युद्धमल्ल द्वितीय ने राजगद्दी पाने में राष्ट्रकूटों की सहायता प्राप्त की थी। युद्धमल्ल ने किसी प्रकार सात वर्ष (929 – 35 ई0) तक राज्य किया। इसमें कोई संदेह नहीं है कि चालुक्य राजगद्दी पर वह प्रतिष्ठित हुआ परन्तु उसके हाथों में वास्तविक शक्ति बहुत कम थी। उसने विजयवाड़ (विजयवाटिका – बेजवाड़ा) नगर में रहकर ही अपना शासन चलाया और वहां उसने मल्लेश्वरस्वामी नामक एक शिव मन्दिर का निर्माण करवाया।

➢ चालुक्य भीम द्वितीय :-

चालुक्य भीम द्वितीय ने सम्भवतः युद्धमल्ल द्वितीय की हत्या कर के ही चालुक्य राजगद्दी पर अपना अधिकार जमाया। इसके लिए किये गये संघर्षों के उल्लेख उसके और उसके पुत्र अम्म द्वितीय के अभिलेखों में प्राप्त होते हैं।[1] उसने *सर्वलोकाश्रय, त्रिभुवनांकुश, राजमार्त्तण्ड* और *गण्डमहेन्द्र* जैसे विरूद्ध धारण किये। उसने लगभग 12 वर्षों तक राज्य किया। दानार्णव तथा अम्म नामक

---

[1] सा0इं0इं0, भाग–1, सं0, एपि0इण्डि0, भाग–9, पृ0–45.

उसके दो पुत्र थे जो दो अलग – अलग पत्नियों से उत्पन्न हुए।

➢ ***अम्म द्वितीय*** :–

चालुक्य भीम द्वितीय के पश्चात् अम्म द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने *राजमहेन्द्र*, *त्रिभुवनांकुश* और *समस्तभुवनाश्रय* की उपाधियां धारण कीं। कुछ इतिहासकारों ने उसके काल को चालुक्य साम्राज्य के इतिहास का एक उच्चशिखर वाला चमकीला काल माना है। उसे अनेक संत्रालयों (संत्रों) की स्थापना का श्रेय दिया गया है। उसके धार्मिक क्रिया – कलापों के कारण परमधार्मिक का विशेषण भी उसे प्राप्त था। उसने 970 ई0 तक शान्तिपूर्वक राज्य किया। परन्तु दानार्णव ने सम्भवतः मल्लन मुदुगोण्ड वंश के गोविन्द की सहायता से अम्म द्वितीय की हत्या कर राजगद्दी प्राप्त की।

➢ ***दानार्णव*** :–

दानार्णव ने लगभग 03 वर्षों तक राज्य किया। दानार्णव को 973 ई0 में मारकर जटाचोड़ भीम ने राजगद्दी हथिया ली। दानार्णव के पुत्रों ने चोड़ सम्राट् राजराज के तंजावुर वाले राजदरबार में शरण ली और 999 ई0 में जटाचोड़ भीम को राजराज ने मारकर

शक्तिवर्मन (दानार्णव के पुत्र) को पुनः वेंगी की राजगद्दी पर राज्यासीन कर दिया।

➢ शक्तिवर्मन प्रथम :-

वह दानार्णव का पुत्र था जो चोड़भीम के बाद वेंगी का राजा बना। उसने 12 वर्षों (999 – 1011 ई०) तक शासन किया। आगे चोड़ सम्राट् राजराज की ओर से वह चोड़ों के युद्धों में एक अधीनस्थ के रूप में भाग लेता रहा। शक्तिवर्मन ने विद्रोहियों का दमन करके कुछ हद तक चालुक्य राज्य में शान्ति स्थापित की। उसके बाद 1011 ई० में उसके छोटे भाई विमलादित्य ने सात वर्षों तक शान्तिपूर्वक शासन किया।

➢ राजराज नरेन्द्र :-

1018 ई० में विमलादित्य की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र राजराज नरेन्द्र वेंगी का राजा बना। राजराज अपने मामा महान् चोड़ नरेन्द्र की पुत्री भमंगादेवी (ममेरी बहन) से ब्याहा गया, जिससे राजेन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यही राजेन्द्र कुलोत्तुंग नाम से आगे चलकर चोल साम्राज्य का शासक बना। लगभग 1061 ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

➢ विजयादित्य सप्तम् :-

विजयादित्य सप्तम् राजराज नरेन्द्र का छोटा भाई था। राजराज के बाद वह वेंगी के चालुक्य वंश का अन्तिम शासक हुआ। 1075 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके साथ ही वेंगी के पूर्वी चालुक्य वंश का अन्त हुआ।

1011 ई0 तथा 1063 ई0 के बीच वेंगी में कई छोटे - छोटे राजाओं ने शासन किया, जिनके शासन काल का कोई महत्व नहीं था। अन्ततः वेंगी का चालुक्य राज चोल राज्य में मिल गया।

वेंगी के चालुक्य नरेशों को नये - नये नगरों के निर्माण का काफी शौक था। उनका मुख्य नगर पिष्टपुर (आधुनिक पीठापुरम्) था। बाद के समय में वेंगी उनका प्रमुख नगर हो गया यह पूर्वी चालुक्यों की प्रथम राजधानी थी। आगे वहां से हटा दिए जाने के बावजूद भी चालुक्यों का नाम वेंगी से जुड़ा रहा। आगे चलकर भीमपुरम् एवं राजमहेन्द्रपुरम् नामक नगरों की भी स्थापना हुई। नगरों की स्थापना के साथ - साथ मन्दिरों की स्थापना में पूर्वी चालुक्य नरेशों ने पूरी दिलचस्पी दिखायी और अनेक शैव मन्दिरों का निर्माण करवाया था।

कल्याणी के चालुक्य

दसवीं शती के उत्तरार्ध से बारहवीं शती तक कल्याणी से चालुक्य वंश के शासन का शुभारम्भ हुआ। इनके इतिहास के लिए असंख्य अभिलेख हैं तथा कन्नड़ साहित्य से भी इनके विषय में जानकारी प्राप्त होती है। बिल्हण द्वारा रचित 'विक्रमांकदेवचरित' विक्रमादित्य षष्ठ के इतिहास के लिए उपादेय है। रन्न की कन्नड़ कृति 'गदायुद्ध' से कल्याणी के चालुक्यों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

परवर्ती चालुक्य भी अपने को बादामी के चालुक्यों का ही वंशज कहते हैं।[1] अभिलेखों के अनुसार दोनों ही शाखाओं के एक समान विरूद्ध यथा – *सत्याश्रय, जगदेकमल्ल, त्रिभुवनमल्ल*[2], *युद्धमल्ल* तथा *राजमल्ल* थे। इस वंश का प्रथम ज्ञात शासक भीम बादामी के चालुक्य विजयादित्य का पुत्र एवं विक्रमादित्य द्वितीय का भाई था।

---

[1] कौथेम अभिलेख, एपि०इण्डि०, भाग–16, पृ०–21 :
मानव्यसगोत्राणां हारितिपुत्राणां कौशिकीनर प्रसादलब्धश्वेतापत्रादि राज्यच्छिन्नां सप्तमातृकापरिरक्षितानां कार्तिकेयवरप्रसादलब्ध।
नीलगुण्ड अभिलेख, एपि०इण्डि०, भाग–12, पृ० – 150.

[2] कौथेम अभिलेख, इण्डि०ऐण्टी०, भाग – 16, पृ० – 16.

➢ तैल प्रथम :-

भीम प्रथम के पश्चात् सम्भवतः इस वंश का शासक तैल प्रथम था जिसे तैल 'महाराजाधिराजदेव' और 'परग्गडे महाराज' भी कहा गया है।[1] उसकी तीसरी पुश्त में अय्यण हुआ, जिसने राष्ट्रकूट शासक द्वितीय कृष्ण की पुत्री से विवाह किया। इस विवाह से उसकी प्रतिष्ठा अवश्य बढ़ी होगी। इस विवाह से विक्रमादित्य जन्मा, जिसका विवाह लक्ष्मणराज (चेदि शासक) की पुत्री बोन्नया देवी से हुआ था। इन संबंधों के आधार पर उसने राष्ट्रकूट – चोल संघर्ष के दौरान अपनी शक्ति का विस्तार किया।[2] इसका पुत्र तैलप द्वितीय था, जिसने राष्ट्रकूट शक्ति के पराभव की स्थिति का लाभ उठाकर चालुक्य राजस्व की स्थापना कल्याणी में की।

➢ तैलप द्वितीय :-

कल्याणी के उत्तरकालीन पश्चिमी चालुक्यों के शासन की व्यवस्थापना तैलप द्वितीय ने की।[3] स्वतंत्र राज्य स्थापन के पूर्व तैलप द्वितीय 957 ई0 से 945 ई0 के बीच कृष्ण द्वितीय के सामन्त के रूप में बीजापुर क्षेत्र में

---

1 बाम्बे कर्नाटक इन्स्कृप्शन्स, 1928 – 29, सं0 – 176.

2 दृष्टव्य याजदानी, हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 – 319.

3 दृष्टव्य कटारे, एस.एल., दि चालुक्याज ऑफ् कल्याणी, इण्डियन कल्चर, भाग–4, पृ0 – 41–45. इण्डि0हि0क्वा0, भाग–17.

शासन कर रहा था।[1] विक्रमादित्य षष्ठ के गड्ग नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि 973 - 74 ई0 तक उसने अपने वंश की राज्यश्री को पुनस्थापित कर चुकने के बाद पृथ्वी पर शान्ति स्थापित कर दी थी[2] और उसके बाद वह 24 वर्षों तक चालुक्य राज्य की प्रतिष्ठा को बढ़ाता ही रहा।[3]

तैलप द्वितीय का सुप्रसिद्ध संघर्ष मालवा के मुंज से हुआ। 1304 ई0 में जैन कवि मेरूतुंग द्वारा लिखित '*प्रबन्ध चिन्तामणि*' में इस संघर्ष का वृतांत मिलता है। तद्नुसार[4] मुंजराज और तैलप के बीच युद्धों का एक लम्बा दौर चला। कथित है कि तैलप ने छः बार मुंज पर आक्रमण किया, किंतु प्रत्येक बार उसकी हार हुई।

---

[1] दृष्टव्य याजदानी, पूर्वोक्त, पृ0 - 319.

[2] इण्डि0ऐण्टी0, भाग-21, पृ0-167-168, एपि0इण्डि0, भाग-15, पृ0-340.

[3] वही.

[4] दृष्टव्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी अनुवाद, प्रबन्धचिन्तामणि, पृ0-21-31, टानी का अंग्रेजी अनुवाद, 1, पृ0 - 235.

विक्रमादित्य पंचम का 'कौथेम दानपत्र' सूचित करता है कि उसने मुंज को कारागार में डाला।[1] विक्रमादित्य षष्ठ का गड्ग अभिलेख[2] गर्व करता है कि उसने वीर मुंज का वध किया। इस प्रकार तैलप द्वितीय की गणना पश्चिमी चालुक्य शाखा के महानतम् शासकों में की जाती है। उसने परमार – वंश के शासक मुंज को पराजित कर अपना सिक्का सर्वत्र जमा लिया। उसने 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' और 'चक्रवर्ती' आदि उपाधियां धारण कीं। एक चालुक्य अनुश्रुति में उसे कृष्ण का अवतार कहा गया है।

➢ **सत्याश्रय** :–

चालुक्य – वंश में तैलप द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र 'सत्याश्रय' 997 ई0 में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने '*अलंकारचरित्र*' की उपाधि धारण की। उसका 10 – 11 वर्षों का सारा शासन काल तंजाऊर के शक्तिशाली और तेजी से वर्धमान चोड़ (चोल) साम्राज्य के साथ युद्धों में बीता। होट्टूर अभिलेख[3] में उल्लेख है कि उसने राजेन्द्र चोल पर आक्रमण कर उसे पराजित कर

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग–1, पृ0 – 235.

[2] वही, भाग–2, पृ0 – 218.

[3] साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन्स, भाग–1, अभिलेख सं0–50 और भाग–6, अभिलेख सं0–102.

विजित हुआ किन्तु चोल अभिलेखों में इस पराभव का कोई उल्लेख नहीं है।

नीलकण्ठ शास्त्री द्वारा होट्टूर अभिलेख और चोल अभिलेखों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि सत्याश्रय को राजेन्द्र के आक्रमण के प्रतिरोध में भारी क्षति हुई और सत्याश्रय की सत्ता डावांडोल हो गयी थी।[1] सत्याश्रय के अन्य किसी राजनीतिक और सामरिक क्रियाकलाप के संबंध में ज्ञान नहीं है।

➢ विक्रमादित्य पंचम :–

चालुक्य – नरेश सत्याश्रय की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई का पुत्र विक्रमादित्य पंचम 1008 ई0 में गद्दी पर बैठा। उसके छः या सात वर्षों के शासनकाल में किसी विशेष घटना का परिचय नहीं मिलता है। कौथेम दानपत्र में उसकी लोकप्रियता, सत्यनिष्ठा, दानशीलता आदि का उल्लेख है।

➢ अय्यन :–

विक्रमादित्य पंचम का उत्तराधिकारी उसका भाई अय्यन द्वितीय और भी सामान्य सिद्ध हुआ। वह लगभग

[1] वही, भाग–2, अभिलेख सं0–1, छन्द–92 : याजदानी, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 – 325.

कुछ सप्ताह तक[1] शासन कर सका। उसके शासनकाल का न तो कोई अभिलेख प्राप्त होता है और न ही कोई विशेष घटना ज्ञात होती है।

➢ ***जयसिंह द्वितीय :–***

जयसिंह द्वितीय अय्यन द्वितीय का सबसे छोटा भाई था। उसने *'जगदेकमल्ल'*, *'त्रैलोकमल्ल'*, *'मल्लिकामोद'*, और *'विक्रमसिंह'* आदि की उपाधियां धारण कीं। उसने लगभग 28 वर्षों तक अर्थात् 1041 ई० तक शासन किया। जयसिंह द्वितीय एक बहुत बड़े साम्राज्य का भोक्ता बना रहा, जिसमें शिमोंग, तुमकुर, अनन्तपुर और कुडप्पर जिले उसके राज्य के दक्षिणवर्ती क्षेत्र थे। पूर्व में हैदराबाद के उत्तरीपूर्व में कुल्पक तक उसकी राज्यसीमा फैली थी। उत्तर में दक्षिण कोंकण उसके राज्य के अन्तर्गत था। उसके सामन्तों के अधीन बनवासी भी था और गोवा का कदम्ब सामन्त भी उसके संरक्षण में था। उसके राज्य का केन्द्र मान्यखेट ही था, किन्तु सम्भवतः उसी के राजत्व के अन्तिम वर्षों में उसने अपनी राजधानी कल्याणी में स्थापित की।[2] 1041 ई० के लगभग उसकी मृत्यु हो

---

[1] डी०सी० गांगुली के अनुसार उसने एक वर्ष तक शासन किया। स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ०–166.

[2] दृष्टव्य याजदानी, जी०., अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, भाग–1, पृ०–330.

गयी और इसके बाद उसका पुत्र सोमेश्वर प्रथम राजगद्दी पर बैठा।

➢ सोमेश्वर प्रथम :-

सोमेश्वर प्रथम 1043 ई0 में चालुक्य सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। इसने 'आहोमल' तथा 'त्रिव्योल्यवक' की उपाधियां धारण की थीं। सोमेश्वर प्रथम ने मालवा राजा भोज पर आक्रमण करके उसे नतमस्त होने के लिए बाध्य किया[1] और अपने अनवांशिक शत्रुओं यथा चोल और परमार के प्रति युद्ध की नीति अपनाई।

सोमेश्वर के समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना चोलों से उसका संघर्ष था। राजाधिराज के 1046 ई0 के 'मणिमंगलम् अभिलेख'[2] में इस युद्ध का संक्षिप्त विवरण उपस्थित है। इसकी परम्परा वस्तुतः जयसिंह द्वितीय के समय में आरम्भ हुई जो परवर्ती समयों में लगातार चलती रही। सोमेश्वर प्रथम ने शासन – सूत्र सम्हालते ही वेंगी की राजनीति में हस्तक्षेप किया और 1044 ई0 में इस सफलता के उपलक्ष्य में *'वेंगीअधिपति'* की उपाधि

---

[1] दृष्टव्य याजदानी, जी., पूर्वोक्त, पृ0 – 330.

[2] साउथ इण्डि0 इन्स्क्रिप्शन्स.

धारण की।[1] सोमेश्वर प्रथम का सम्पूर्ण राजत्व संघर्ष और युद्धों में ही बीता था। वह महान् कला प्रेमी था। विल्हण का कथन[2] है कि सोमेश्वर ने कल्याणी में नये भवनों का निर्माण किया और नगर को हर प्रकार से सजाया और सुख – सुविधाओं से सुशोभित किया।

➢ सोमेश्वर द्वितीय :-

1068 ई0 में सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर द्वितीय चालुक्य राजसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने अपने अनुज विक्रमादित्य षष्ठ को गृहयुद्ध की विभीषिका से राज्य को संरक्षित रखने के लिए गंगवाड़ी प्रदेश का शासक बना दिया। इसकी राजधानी गोविन्दवाड़ी थी। विक्रमादित्य अपने पिता सोमेश्वर प्रथम की राजनीति से सक्रिय सहयोगी होने के कारण महत्वाकांक्षी हो गया था। वह मन ही मन में पिता के राज्य का उत्तराधिकारी बनना चाहता था। परन्तु उसकी इस महत्वाकांक्षा की सम्पूर्ति न हो पाई और सोमेश्वर द्वितीय को ही उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

---

[1] दृष्टव्य वेंकटकृष्णराव भवराजु, इस्टर्न चालुक्याज ऑफ् वेंगी, पृ0–232.

[2] विक्रमांकदेवचरित, अध्याय – 2, 1 – 25.

परन्तु सोमेश्वर तथा विक्रमादित्य के संबंध अधिक समय तक सोहार्दपूर्ण नहीं रह सके। विक्रमादित्य ने कल्याणी का अधिपति बनने की लालसा में उसने शक्तिशाली चोल नरेश वीर राजेन्द्र की पुत्री से विवाह किया, जिसका उल्लेख *विक्रमांकदेवचरितम्*[1] से प्राप्त होता है।

सोमेश्वर द्वितीय ने अपने भाई विक्रमादित्य के विरूद्ध अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए कुलोत्तुंग के साथ मैत्री संबंध स्थापित कर लिया। दोनों ने सम्मिलित रूप से विक्रमादित्य के ऊपर आक्रमण कर दिया। चोलों ने गंगवाड़ी का प्रदेश छीन लिया किन्तु इस युद्ध में विक्रमादित्य ने सोमेश्वर को बंदी बना कर कारागार में डाल दिया।[2] सोमेश्वर के अन्तिम दिन के विषय में ज्ञात नहीं होता है। सम्भवतः सोमेश्वर प्रथम के अन्तिम दिन व्यक्तिगत दुख में बीते जिसकी चर्चा *विक्रमांकदेवचरितम्* में की गयी है। उसके बाद चालुक्य सिंहासन पर विक्रमादित्य षष्ठ आरूढ़ हुआ।

---

[1] विकमांकदेवचरितम् षष्ठम्, 7.24.

[2] बाम्बे गजेटीयर, पृ0 - 442.

> ***विक्रमादित्य षष्ठ*** :-

महत्वाकांक्षी विक्रमादित्य षष्ठ 1976 ई0 में सिहासनारूढ़ होते ही उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य में 'चालुक्य – विक्रम – संवत्' का प्रचलन किया तथा 'त्रिभुवनमल्ल' की उपाधि धारण की। विक्रमादित्य षष्ठ अदम्य महत्वाकांक्षी तथा महान् योद्धा था। विक्रमादित्य ने अपने पिता सोमेश्वर प्रथम के समय से ही सभी युद्धों में स्वयं भाग लिया था। अनेक प्रान्तों के गवर्नर के रूप में उसे प्रशासन का प्रभूत अनुभव प्राप्त था और जो साम्राज्य उसे विरासत में मिला था, उसकी सीमाओं में उसने किसी प्रकार की कमीं नहीं आने दी। उसके समय के सैकड़ों से अधिक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। जिन्हें या तो उसने या उसके राजपरिवारी लोगों या उसके राज्याधिकारियों ने अथवा उसके सामन्तों और अधीन राजाओं ने सम्राट् के रूप में उसका उल्लेख करते हुए, प्रकाशित कराया था। ये अधिकांश उन भूमिदानों से संबंधित है जो उसके साम्राज्य क्षेत्रों का निर्धारण करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

विक्रमादित्य षष्ठ का विद्या तथा विद्वानों के प्रति बड़ा दृढ़ अनुराग था। संस्कृत के महाकवि विल्हण, विज्ञानेश्वर तथा मल्लय जैसे महान् कवि एवं आचार्य उससे पोषित थे। विल्हण कृत 'विक्रमांकदवेचरित' जिसमें उसने भ्रातृहंता और राज्यहर्ता विक्रमादित्य के सभी गलत

सही कार्यों को सही ठहराने से कोई गुरेज नहीं किया। इसके कुल 18 सर्गों में विक्रमादित्य का चरित्र आख्यात है। इसी समय में विज्ञानेश्वर ने 'याज्ञवल्क्यस्मृति' पर 'मिताक्षरा' नामक सुविख्यात टीका निबद्ध किया। इसी प्रकार विक्रमादित्य ने अपने शासन काल में नगर, मन्दिर, प्रसाद तथा स्थापत्यादि विन्यासों की अभिवृद्धि की थी।[1] इस प्रकार विक्रमादित्य षष्ठ हमारे सम्मुख एक महान् विजेता, चतुर राजनीतिज्ञ, उद्‌भट विद्वान् तथा महान् निर्माता के रूप में आता है। विक्रमादित्य षष्ठ ने 50 वर्षों तक शासन किया। उसकी मृत्यु 1126 ई0 में हुई। उसे कल्याणी चालुक्य वंश का महानतम् शासक कहा जा सकता है।

➢ सोमेश्वर तृतीय :-

विक्रमादित्य षष्ठ के पश्चात् कल्याणी के चालुक्य वंश की अवनति प्रारम्भ हुई उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र सोमेश्वर तृतीय गद्दी पर बैठा। सोमेश्वर तृतीय ने 1126 ई0 से 1138 ई0 तक शासन किया। विजयों की अपेक्षा उसकी रूचि शान्ति के कार्यों में अधिक थी। सोमेश्वर तृतीय को प्राचीन भारतीय नरेशों में उत्कृष्ट कोटि का विद्वान् एवं शिल्पशास्त्र माना जाता है। उसने

---

[1] दृष्टव्य दुबे, एच.एन., पूर्वोक्त, पृ0 – 185.

'*मानसोल्लास*' नामक नितान्त प्रमाणित शिल्पशास्त्र ग्रन्थ की रचना की।

सोमेश्वर तृतीय को सोलह महादानों का कर्ता और मंदिरों को दान देने वाला बताया गया है।[1] स्पष्ट है कि धार्मिक कार्यों में भी उसकी गहरी रूचि थी। अपनी विद्वता के कारण तत्कालीन समाज में सोमेश्वर तृतीय 'सर्वज्ञभूप' के रूप में विख्यात था। सोमेश्वर की एक अन्य रचना '*विक्रमांकभ्युदकाव्य*' थी जिसे उसे अपने पिता विक्रमादित्य षष्ठ के जीवनवृत के रूप में लिखी थी।

➢ जगदेकमल्ल द्वितीय :-

सोमेश्वर तृतीय के पश्चात् उसका पुत्र जगदेकमल्ल द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। इस नरेश के शासनकाल में चालुक्यों के अधीन कतिपय सामन्त शासकों ने अपनी – अपनी स्वतंत्रता घोषित करने का प्रयास किया। परन्तु उसमें उनके विद्रोहियों को एक – एक कर के कुचल दिया।होयसल विष्णुवर्धन ने अपने राज्य विस्तार का क्रम जगदेकमल्ल द्वितीय के शासनकाल में भी बनाये रखा। वह अपने उक्त सैन्य अभियानों में प्राप्त सफलताओं के फलस्वरूप स्वयं धारवाड़ प्रदेश के मनकापुर नगरी में जाकर रहने लगा। उसने राजधानी द्वारसमुद्र की रक्षा का

---

[1] बाम्बे कर्नाटिका, भाग–8, शिकारपुर तालुका, सं0–414.

भार अपने पुत्र जयसिंह के ऊपर सौंप दिया। इसी प्रकार कदम्ब शासकों ने भी अपना विद्रोहात्मक दबाव उस पर बनाये रखा। जगदेकमल्ल द्वितीय का शासनकाल 1138 ई0 से 1151 ई0 तक रहा।

➢ तैलप तृतीय :-

1151 ई0 में जगदेकमल्ल द्वितीय का भाई तैलप तृतीय चालुक्य अधिपति हुआ। उसके शासन में आने तक होयसल, कलचुरि, काकतीय एवं यादववंशीय सामन्त - शासक गण पर्याप्त शक्तिशाली हो चुके थे। वे अपनी - अपनी स्वतंत्रा घोषित करने का प्रयास करने लगे, जिन्हें दबा पाना तैलप तृतीय के लिए बड़ा दुष्कर कार्य था। चालुक्य राज्य के अधीन होते हुए भी वे अपनी - अपनी सत्ता - स्थापना की होड़ में थे। तदैववाड़ी के कलचुरि के सामन्त शासक विज्वल ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की। उसने 1057 ई0 के लगभग चालुक्य राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया। विज्वल ने 1157 ई0 से 1178 ई0 तक कल्याणी राज्य पर शासन किया। तदोपरान्त 1181 ई0 उसके तीन पुत्रों ने क्रमशः राज्य किया।

➢ सोमेश्वर चतुर्थ :-

1181 ई0 में तैलप तृतीय के पुत्र सोमेश्वर चतुर्थ ने तत्कालीन कलचुरि शासक आहवमल्ल को परास्त करके कल्याणी पर अधिकार कर लिया। आहवमल्ल ने कल्याणी से भागकर श्रवण बेलगोला एवं वनवासी की ओर शरण ले ली। 1189 ई0 से यादवंशीय शासक भिल्लम ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करके सोमेश्वर चतुर्थ से उत्तरी चालुक्य प्रदेशों को जीत लिया। इसी प्रकार होयसल नरेश बल्लाल द्वितीय तथा काकतीय राजा रूद्र ने भी अपने एवं क्रमिक आक्रमण के फलस्वरूप 1189 ई0 तक चालुक्य प्रदेशों को अपने - अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार 1200 ई0 तक कल्याणी के चालुक्य वंश का पूर्णतया पतन हो गया।

कल्याणी के चालुक्य राजवंश का महत्व केवल सैनिक शक्ति के कारण ही नहीं था, बल्कि इस राजवंश के शासकों ने विद्वानों और विद्या के क्षेत्र में जो संरक्षण प्रदान किया और वैदिक विधाओं तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में योगदान दिया, वह इतिहास के पृष्ठों में सराहनीय कहा जायेगा। बिल्हण, विज्ञानेश्वर, मल्लय (नीलगुण्ड अभिलेख का लेखक) आदि ऐसे विद्वान् थे जिनके द्वारा चालुक्य दरबार शोभायमान रहा। इस राजवंश के शासकों को महादानों का कर्ता और मन्दिरों को दान देने वाला कहा गया है। इस वंश के शासक वास्तव में धार्मिक प्रवृत्ति के नरेश थे जिनके शासन काल

में चुतुर्दिक उन्नति हुई और शासन को भी एक सूत्र में पिरोने का सफल प्रयास हुआ।

मान्यखेट के राष्ट्रकूट

राष्ट्रकूटों की चार शाखाओं मानपुर, अचलपुर, मान्यखेट और लाट में मान्यखेट ही सर्वाधिक प्रसिद्ध थे, जिन्होंने 650 ई० से 974 ई० तक शासन किया। दन्तिदुर्ग मान्यखेट राजवंश का प्रथम शासक था। दन्तिदुर्ग के पश्चात् उसका पुत्र इन्द्र प्रथम तथा पौत्र गोविन्दराज राजा हुआ। इन दोनों ने क्रमशः 670 – 690 ई० तक शासन किया।

गोविन्दराज के बाद उसका पुत्र कर्कराज (लगभग 700 ई०) शासक हुआ। दशावतार लेख से ज्ञात होता है कि उसका नाम सुनते ही उसके शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्र अश्रुपूरित हो जाते थे तथा उनकी कलाइयों से वलय गिरने लगते थे। कर्कराज विष्णु का परमभक्त था उसने सम्भवतः 715 ई० तक शासन किया।

कर्कराज के चार पुत्रों के नाम प्राप्त होते हैं :– इन्द्र द्वितीय, ध्रुव, कृष्ण तथा नन्नराज। इनमें इन्द्र सबसे बड़ा होने के कारण कर्क के बाद राजा हुआ। इन्द्र इस वंश का प्रथम महत्वपूर्ण शासक था। यह चालुक्य राजा

विजयादित्य का सामन्त था। इन्द्र ने उत्तर की ओर अपने राज्य का विस्तार किया तथा मध्य भारत के मराठी भाषा – भाषी क्षेत्र पर अधिकार किया। अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र के अनुसार इन्द्रराज ने खेटक (गुजरात के कैरा नामक स्थान) में चालुक्य राजकुमारी भवनागा के साथ राक्षस विवाह किया था। भवनागा के पिता का नाम ज्ञात नहीं है।[1] वह सम्भवतः लाट के चालुक्य शासक मंगलराज की पुत्री या भतीजी थी। अलतेकर का मत है कि यह घटना 722 ई0 के पश्चात् किसी समय घटी होगी। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इस विवाह के विरूद्ध इन्द्र के अधिराज वातापी के चालुक्यों में से किसी की ओर से कोई विरोध नहीं हुआ। इससे प्रमाणित होता है कि इस समय तक इन्द्र काफी शक्तिशाली हो गया था। इसने अनुमानतः 715 ई0 से 735 ई0 तक शासन किया।

➢ दन्तिदुर्ग :-

मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंश एवं साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक दन्तिदुर्ग था। दन्तिदुर्ग के शासनकाल के दो लेखों 742 ई0 का दशावतार अभिलेख तथा 753

---

[1] इन्द्रराजस्ततों गृहात् यश्चालुक्य नृपात्मजां।
राक्षसेन विवाहेन रणे खेटक मण्डपे। संजनदान पत्र, श्लोक – 7.
एपि0इण्डि0, 18, पृ0 – 235 – 257.

– 754 ई0 का समनगढ़ अभिलेख[1] से तथा उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों से उसकी उपलब्धियों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। दन्तिदुर्ग ने सामन्त रूप में कुछ विजयें प्राप्त की थी, जिसके अन्तर्गत अन्तर्गत विक्रमादित्य ने उसे 'अविजित विजयी', 'चालुक्यकुलालंकार' पृथ्वीवल्लभ उपाधियों से विभूषित किया था।[2] अन्य अभिलेखों से ज्ञात होता है कि दन्तिदुर्ग ने कांची, कलिंग, कोशल श्रीशैल, मालवा, लाट तथा टंक आदि अनेक राज्यों को जीता था।

उपर्युक्त विजयों के कारण दन्तिदुर्ग काफी शक्तिशाली हो गया था। दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक ही नहीं वरन् एक योग्य सेनापति, कुशल नायक, कूटनीतिक तथा धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था। उसने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया जो उत्तर में गुजराज तथा मालवा की उत्तरी सीमा से लेकर दक्षिण में पल्लव राज्य की उत्तरी सीमा पर विस्तृत था। 756 ई0 के लगभग उसके शासन का अन्त हो गया।

➢ कृष्ण प्रथम :–

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0 – 33–37.

[2] बाम्बे गजेटियर, 1, पृ0 – 109.

दन्तिदुर्ग अपुत्रक था। उसके बाद उसका चाचा कृष्ण प्रथम 756 ई0 में राष्ट्रकूट गद्दी पर बैठा। कृष्ण प्रथम ने राज्यारोहण के समय '*शुभतुंग*' तथा '*अकालवर्ष*' की उपाधि धारण की।

757 ई0 में उसका महत्वपूर्ण संघर्ष कीर्तिवर्मन द्वितीय की सेना से भीमा के तट पर हुआ। फलस्वरूप कृष्ण प्रथम विजित हुआ और उसने सम्पूर्ण करण्ट देश (कर्नाटक) पर अधिकार कर लिया[1] और वातापी के चालुक्यों की शक्ति का अन्त हो गया। कृष्ण प्रथम ने पूरे दक्षिणापथ में अपना अधिकार और प्रभाव जमा लिया था। उसके साम्राज्य में सम्पूर्ण महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश का एक बड़ा भाग सम्मिलित था। कृष्ण प्रथम एक महान् विजेता एवं साम्राज्य निर्माता के अतिरिक्त वास्तुकला एवं साहित्य का भी संरक्षक था। उसने अनेक देवी देवालयों का निर्माण करवाया था और अट्ठारह शिव

---

[1] संजन दानपत्र, श्लोक – 10–11.

स्वयं बरीभूतरणांगनेततस्य निर्व्यपेक्षं शुभतुंग वल्लभ।

चकर्ष चालुक्य कुलश्री यं बलादिविलोल पालिध्वजमाल भारि0।।

अयार्घ्यासघासन चामरोजितास्सितांतपत्रों प्रतिपक्षराज्यभाक।

अकालवर्षो हतभूपराजको व भूवराजरिषिरशेषपुण्यकृत।।

राधनपुत्र दानपत्र, 3.

यख्यालुक्य कुलाद नूनविविधव्राताश्रयों वारिधं लक्ष्यमीन्नमण्डल।

खत्सलीलम चिरादा कृष्टवान्वलल्भः।।

मन्दिर बनवाये थे। उसकी सबसे महान् उपलब्धि ऐलोरा का कैलाश मन्दिर का निर्माण करवाना था। 773 ई0 में उसका देहावसान हुआ।

➢ *गोविन्द द्वितीय :-*

कृष्ण प्रथम के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र गोविन्द द्वितीय 773 ई0 में राजगद्दी पर बैठा। गोविन्द द्वितीय ने अभिषेक के अवसर पर '*प्रभूतवर्ष*', '*विक्रमावलोकवल्लभ*' की उपाधयां धारण की थीं।[1]

गोविन्द द्वितीय ने प्रारम्भ में प्रशासन में रूचि लिया, लेकिन बाद में राजा होने के कुछ समय बाद उसने विलासितापूर्ण जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप ध्रुव ने गोविन्द द्वितीय को पराजित कर प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में ले लिया।

➢ *ध्रुव धारावर्ष :-*

गोविन्द द्वितीय को पराजित कर ध्रुव धारावर्ष 780 ई0 के लगभग राजा हुआ। राष्ट्रकूट राजवंश के इतिहास में ध्रुव की गणना महानतम् शासकों में की जाती है। ध्रुव ने राज्याभिषेक के अवसर पर 'निरूपम' और 'धारावर्ष' की उपाधि धारण की थीं। ध्रुव ने सर्वप्रथम

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ0 - 48.

गंगवाड़ी पर आक्रमण किया, जो उसके विरोधी थे। गंग अभिलेखों के अनुसार प्रारम्भ में शिवमार को राष्ट्रकूटों के विरूद्ध कुछ सफलता प्राप्त हुई, परन्तु अन्त में ध्रुव ने गंगवाड़ी शासक शिवमार को पराजित करने के पश्चात् उसे कारागार में डाल दिया[1] और सम्पूर्ण गंगवाड़ी पर अधिकार कर अपने पुत्र स्तम्भरणावलोक को शासक नियुक्त किया। इस ऐतिहासकि घटना की पुष्टि गंग एवं राष्ट्रकूट दोनों राजवंशों के अभिलेखों से होती है।[2] संजय दानपत्र के अनुसार उसने प्रतिहार वत्सराज को परास्त करने के बाद वह गौड़ों के विरूद्ध बढ़ा और उनसे युद्ध किया।[3] फलस्वरूप वह सम्पूर्ण भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट् माना गया।

ध्रुव ने अपने राज्यकाल के अन्तिम दिनों में अपने चार पुत्रों में से गोविन्द तृतीय को अपना उत्तराधिकारी चुना क्योंकि वह उसका सबसे योग्य पुत्र था।[4] उसके बड़े पुत्र कर्क की मृत्यु उसके राज्यकाल में ही हो गयी थी। स्तम्भ गोविन्द से बड़ा था, गंगवाड़ी का

---

[1] दृष्टव्य याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 - 249.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ0 - 55.

[3] एपि0इण्डि0, 18, पृ0-244. गंगयमुनोकर्ध्य राज्ञोगोडस्य नश्यतः।
लक्ष्मीलीलार विन्दानिश्वेतच्छत्राणि याडहरेत।।

[4] एपि0इण्डि0, भाग-4, पृ0 - 242.

प्रतिनिधि था[1] और सबसे छोटा पुत्र इन्द्र गुजरात व मालवा का शासक था।

इस प्रकार गोविन्द तृतीय का युवराज्याभिषेक करके ध्रुव दिवंगत हुआ। निःसंदेह वह राष्ट्रकूट राजवंश का प्रथम प्रतापी शासक था।

➢ गोविन्द तृतीय :-

ध्रुव की मृत्यु के पश्चात् 793 ई० गोविन्द तृतीय राजा हुआ। गोविन्द तृतीय *'प्रभूतवर्ष'*, *'जंगतुंग'*, *'जलवल्लभ कीर्तिनारायण'*, *'त्रिभुवनधवल'*, *'श्रीवल्लभ'*, *'त्रिभुवन'*, *'पृथ्वीवल्लभ'* आदि उपाधियां धारण की थीं। पैठन ताम्रपत्रों में बताया गया है कि गोविन्द को एक औपचारिक राज्यभिषेक के अवसर पर अपने पिता से राज्य प्राप्त हुआ था।[2] कर्क के सूरत ताम्रपत्रों[3] से भी इसकी पुष्टि की है।

---

[1] एपि०कर्नाटिका, भाग-4, पृ० - 93.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ० - 603.

[3] सूरत दानपत्र, श्लोक - 30 : राज्याभिषेक कलंशैराभिष्त्यि दत्ताम्।
राजाधिराज परमेशवरतांस्वपित्रां।।

गोविन्द तृतीय के सम्राट् घोषित किये जाने तक तो कोई समस्या नहीं हुई, किन्तु गोविन्द का जेठा भाई स्तम्भ[1] भीतर ही भीतर अपने उत्तराधिकार के वास्तविक दावे के तिरस्कृत हो जाने के प्रतिरोध की आग में झुलस रहा था और उसने गोविन्द के विरूद्ध लड़ने के लिए 12 राजाओं का एक सैनिक संघ तैयार कर लिया। संजन ताम्रफलक से ज्ञात होता है कि राज्य के कई बड़े - बड़े अधिकारी भी इसमें शामिल हो गये थे।[2] जब गोविन्द को इन गतिविधियों के विषय में पता चला तो उसने बड़ी चतुराई के साथ साम - दाम का सहारा लेते हुए इस अभियान में सफल हुआ।

गोविन्द तृतीय ने दक्षिण भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लेने के पश्चात् उत्तर भारत की राजनीति की ओर ध्यान दिया और पालों और प्रतिहारों को परास्त किया। उत्तर भारत से लौटने के बाद 'गोविन्द' ने मालवा, कोशल, वेंगी, दहाल तथा ओड्र (उड़ीसा) के शासकों को

---

[1] बम्बई गजेटियर, भाग-2, पृ0-395: एपि0इण्डि0, भाग - 6, पृ0 -195.

[2] एपि0इण्डि0, भाग-18, पृ0-244:
दुष्टपांस्तावतस्वभृत्यांझटिति विघटिता स्थापितोन्यशपाशाम्।

पराजित किया।[1] उसने कांची तक धावा किया था और पांड्य, चोल, केरल नृपों को भी पराजित किया।[2]

निःसन्देह गोविन्द राष्ट्रकूट वंश का ही नहीं वरन् अपने समय का सबसे प्रतापी राजा था। उसका प्रभुत्व हिमालय से लेकर श्रीलंका तक और सौराष्ट्र से बंगाल तक स्थापित था। संजन दानपत्र में उसकी तुलना वीर अर्जुन से की गयी है। गोविन्द तृतीय की मृत्यु लगभग 814 ई0 में हो गयी।[3]

➢ **शर्व अमोघवर्ष प्रथम :-**

गोविन्द तृतीय की मृत्यु के पश्चात् 814 ई0 के पूर्वार्द्ध में शर्व अमोघवर्ष प्रथम गद्दी पर बैठा। अल्पायु होने के कारण अमोघवर्ष ने कई वर्षों तक कर्क के संरक्षण में राज्य किया। उसका नाम शर्व व उपाधि अमोघवर्ष थी। उसने *'नृततुंग'*, *'रट्टमांर्तड'*, *'वीरनारायण'* और *'अतिशतधवल'* आदि अन्य उपाधियां भी धारण कीं।

---

[1] दृष्टव्य दिवाकर, आर.आर., कर्नाटक थ्रू द एजेस, पृ0-237.

[2] संजनदानपत्र, श्लोक - 32 :

नस्येत्रकलपाझाचौलिकृन्पंस्सपल्लवं पल्लव।

एपि0इण्डि0, 18, पृ0 - 246.

[3] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ0-71.

अमोघवर्ष के शासनकाल के प्रारम्भ के कुछ वर्ष तो शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए, परन्तु 817 ई० के लगभग उसके विरूद्ध विद्रोह उठ खड़ा हुआ। कुल मिलाकर उसका लम्बा शासन काल 64 वर्षों का था। सैनिक दृष्टि से उसके शासनकाल को बहुत सफल अथवा चमत्कारी नहीं कहा जा सकता है। किन्तु युद्धकला में निपुण न होने के बावजूद वह एक महान् प्रजापालक के रूप में सफल व विख्यात रहा। अमोघवर्ष स्वयं विद्वान् व कन्नड़ एवं संस्कृत भाषाओं का ज्ञाता था। उसने '*कविराजमार्ग*' नामक ग्रन्थ की रचना की। वह विद्वानों और कवियों का संरक्षक भी था। विद्या, साहित्य के संरक्षण में उसकी तुलना चन्द्रगुप्त द्वितीय से की गयी थी और ये भी कहा गया है कि विद्या संबंधी दान और पुरस्कार में अमोघवर्ष उससे भी श्रेष्ठ था।[1] भट्टकलंक के कर्नाटकशब्दानुशासन के अनुसार प्रजा के कल्याण के लिए अमोघवर्ष ने अपनी अंगुली काटकर महालक्ष्मी को अर्पित की थी।[2] अमोघवर्ष ने 60 वर्ष की

---

[1] संजन दानपत्र, श्लोक-48, एपि०इण्डि०, 18, पृ० - 248.

हत्वाभ्रतरमेश्व राज्यमहरडेवींचदीनस्ततो।

लक्षं कोटिमलखयन्किल कुलौदाता स गुप्तानवयः।।

येनात्याजि तनु स्वराज्यमस कद्दह्यर्थकैः ककया।

दीप्तस्योन्नति राष्ट्रकूटतिलकोदातेति कीत्याविजि।।

[2] वही, श्लोक-47: तत्येकैकमतप्पयान्किल महालक्ष्म्यै।

स्वावामाइलिं लोकपद्रव शान्तयेस्म दिशतिश्री वीरनारायणः।।

अवस्था के बाद संन्यास ले लिया था। 880 ई0 के लगभग उसकी मृत्यु हो गयी।

➢ कृष्ण द्वितीय :-

अमोघवर्ष की मृत्यु के पश्चात् लगभग 880 ई0 में कृष्ण द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। कृष्ण द्वितीय की दो उपाधियां थीं *'शुभतुंग'*, और *'अकालवर्ष'*।[1] इसके अतिरिक्त *'श्रीपृथ्वीवल्लभ'*, *'बल्लभराज'*, *'महाराजधिराज'*, एवं *'परमेश्वर'* आदि उपाधियां भी धारण कीं। कृष्ण द्वितीय के शासनकाल में भी राष्ट्रकूट शासित आन्तिरिक राज्यों के विद्रोहों एवं संघर्षों का क्रम बना रहा तथा गडग्, नोलम्बाड़ी, वेंगी एवं गुर्जर प्रतिहार राज्यों के साथ उसे अनेक बार युद्ध करना पड़ा।

कृष्ण द्वितीय का संघर्ष चोलों के साथ भी हुआ। उसने अपनी पुत्री का विवाह चोल राजा आदित्य प्रथम से कराया था। आदित्य प्रथम के बाद परान्तक प्रथम चोल राजगद्दी पर आसीन हुआ तथा उसने अपने पौत्र को राजगद्दी दिलाने के लिए परान्तक से युद्ध किया। वह पराजित हो गया। उसने लगभग 914 ई0 तक शासन किया।

---

[1] दृष्टव्य याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0-260
इंस्क्रिप्शन्स फ्राम बाम्बे एंड कर्नाटक, सं0-7.

➢ इन्द्र तृतीय :-

कृष्ण द्वितीय ने कुछ ही वर्षों तक शासन किया था। उसके करहड[1] एवं देवली[2] ताम्रपत्रों से प्रमाणित होता है कि कृष्ण द्वितीय के पुत्र जगतुंग की मृत्यु उसके जीवनकाल में हो जाने के कारण 914 ई0 में उसका पौत्र इन्द्र तृतीय राजा हुआ। उसकी चार उपाधियां प्रसिद्ध हुई जो *'नित्यवर्ष'*, *'रट्टकंदर्प'*, *'कीर्तिनारायण'* और *'राजमार्तण्ड'* थीं। उसने 30 वर्ष की अवस्था में राजत्व संभाला। इन्द्र तृतीय रणज्ञ तथा युद्धप्रिय था।

इन्द्र तृतीय ने सबसे पहले प्रतिहार नरेश महिपाल को आक्रान्त किया। उसने कन्नौज पर अधिकार करके एक बार फिर राष्ट्रकूट गौरव को विवर्धित किया[3] तथा कन्नौज विजय से उत्तरापक्ष की राजनीति में उसने अपनी धाक जमा ली।

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग–4, पृ0–278.

[2] वही, भाग–5, पृ0–190.

[3] एपि0इण्डि0, भाग–7, पृ0–38, 43, श्लोक –19, खम्भात दानपत्र में इन्द्र तृतीय के कन्नौज (महोदय) विजय तथा उज्जैनी (जहां महाकाल का मन्दिर है) के विजयों का अच्छा लेख है :-
यन्माद्यादद्धिपदन्तधातविषमं कालाप्रिय प्राङ्गणमफ।
तीर्णा युत्तुरगैरगाथयमुना सिन्धु प्रतिस्पदद्वर्नी।।
यनेदं हि महोदया रिनगरं निर्मूलमुन्यालितम।
नाम्नाधापि जनैः कुशलस्थलभितिख्यातिपंरां नीयते।।

उत्तरापथ विजय के पश्चात् इन्द्र तृतीय ने वेंगी के चालुक्यों से युद्ध किया, फलतः राष्ट्रकूटों ने वेंगी के कुछ क्षेत्रों पर कब्जा जमा लिया। अन्ततः इन्द्र तृतीय ने अपने समर्थक युद्धमल्ल को वेंगी का शासक बना दिया। इन्द्र तृतीय ने लगभग 14 वर्षों तक सफलतापूर्वक राज्य किया। 928 ई0 के मध्य उसकी मृत्यु हो गयी।

➢ ***अमोघवर्ष द्वितीय*** :–

इन्द्र तृतीय के पश्चात् उसका बड़ा पुत्र अमोघपवर्ष द्वितीय राजगद्दी पर आसीन हुआ। एक शिलाहार सामंत अपराजित के अनुसार उसने एक साल तक राज्य किया था।[1] इसके एक वर्ष के राज्यकाल में किसी महत्वपूर्ण घटना की जानकारी नहीं मिलती है।

➢ ***गोविन्द चतुर्थ*** :–

अमोघवर्ष द्वितीय की मृत्यु के बाद गोविन्द चतुर्थ राजगद्दी पर बैठा। उसने *'प्रभूतवर्ष'*, *'नृपतुंग'*, *'सुवर्णवर्ष'*, *'वल्लभनरेन्द्र'*, *'परमेश्वर'* तथा *'पृथ्वीवल्लभ'* आदि उपाधियां धारण कीं। गोविन्द चतुर्थ का राजकाल बड़ा और अप्रिय रहा। वेंगी पर अपने प्रभुत्व स्थापना की दिशा में उसने कोई सराहनीय कार्य नहीं किया। गोविन्द चतुर्थ अतिसुंदर और कामुक प्रवृत्ति का शासक था। उसकी

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ0 – 105.

अन्तिम ज्ञात स्थिति 934 ई० है। उसके राज्यकाल का अन्त 935 ई० – 936 ई० के मध्य हुआ।

➢ अमोघवर्ष तृतीय :-

अमोघवर्ष तृतीय लगभग 936 ई० में पच्चीस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। वह बड़ा महत्वाकांक्षी, युद्धप्रिय और नीतिज्ञ था। इसका सबसे बड़ा ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण इसका परम सहयोगी था। अमोघवर्ष ने चेदि राजवंश से वैवाहिक संबंध स्थापित करके अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली थी।

अमोघवर्ष एक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। वह शिव का अनन्य भक्त था। उसने शिव के कई मन्दिरों का निर्माण कराया और ब्राह्मणों को काफी दान दिया। वह सम्भवतः अपने पिता द्वारा शासन ग्रहण के 4 – 5 वर्षों के भीतर वास्तविक शासक हो चुका था, जो इस बात से स्पष्ट है कि 940 ई० में उसने अपना प्रथम ताम्रपत्राभिलेख देवली से प्रकाशित कराया।[1]

➢ कृष्ण तृतीय :-

अमोघवर्ष तृतीय के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण तृतीय 939 ई० में राजगद्दी पर आसीन हुआ। उसने भी

[1] एपि०कर्नाटका, भाग–5, पृ० – 190.

अभिषेक के अवसर पर '*अकालवर्ष*' की उपाधि धारण की। इसके अतिरिक्त उसने '*पृथ्वीवल्लभ*', '*कंधारपरवराधीश्वर*', '*परममाहेश्वर*' आदि उपाधियां धारण कीं। सिंहलिंगमादव्य एवं उक्कल विष्णु मंदिर के लेखों से पता चलता है कि कृष्ण तृतीय ने 943 ई० के लगभग चोलों से कांची और तंजौर क्षेत्रों को अपहृत कर लिया। मैहर अभिलेख जो कन्नड़ भाषा में है, से भी इन विजयों की सूचना मिलती है।[1] कांची और तंजौर विजय के पश्चात् कृष्ण तृतीय ने कन्नड़ में 'कांचीयुक्त तंजेयम कोडं' की उपाधि ग्रहण किया।[2] इस विजयों के उपलक्ष्य में उसने कांची में कालप्रिय मन्दिर का रामेश्वरम् में कृष्णेश्वर तथा गंडमार्तण्डदिव्य मंदिरों का निर्माण कराया।[3]

कृष्ण तृतीय की महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धियों ने राष्ट्रकूटों के गौरव एवं प्रतिष्ठा को एक बार पुनः शिखर पर पहुंचा दिया था। किन्तु वह इस राष्ट्रकूट राजवंश का अन्तिम महान् शासक था। कृष्ण तृतीय के राजत्व के अन्त तक (967 ई०) उसके सभी पुत्र मर चुके थे। अतएव उसका उत्तराधिकार उसके भ्राता खोट्टिग को मिला।

---

[1] एपि०इण्डि०, भाग–5, पृ० – 176.

[2] दृष्टव्य याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० – 270.

[3] दृष्टव्य श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ० – 338.

➢ खोट्टिग :–

खोट्टिग कृष्ण तृतीय का छोटा भाई था। वह 976 ई0 के लगभग राजगद्दी पर आसीन हुआ।[1] उसने '*श्रीपृथ्वीवल्लभ*', '*नित्यवर्ष*', '*महाराजाधिराज*', '*परमेश्वर*' एवं '*भट्टारक*' आदि उपाधियां धारण कीं। राष्ट्रकूट राजगद्दी पर आसीन होने पर वह काफी वृद्ध हो गया था तथा उसमें सैन्य संचालन का भी अभाव था। 672 ई0 में परमार नरेश सीयक हर्ष ने मान्यखेट पर हमला कर राष्ट्रकूट राजनगरी के गौरव को धूमिल कर दिया। परमार नरेश ने न केवल कोष अपितु दानपत्र तथा अन्य राजकीय अभिलेख भी उठवा लिए।[2] इस पराजय के कुछ समय पश्चात् ही खोट्टिग की मृत्यु हो गयी।

➢ कर्क द्वितीय :–

कर्क द्वितीय राष्ट्रकूट वंश का अन्तिम शासक था ज़िसे चालुक्य सम्राट् तैलप ने युद्ध में परास्त कर राष्ट्रकूट वंश को समाप्त कर दिया था। राष्ट्रकूट राज्य पर

---

[1] दृष्टव्य मिश्र, एस.एम., दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ0 – 220 :
स्वर्गनिधिरूदे च ज्येष्ठे भ्रातरि श्रीकृष्णराजदेवयुवराजदेव दुहितारि कुन्द कदेव्यममोघवर्ष नृपाज्जातः खोट्टिगदेवानृपतिभूद भुवनविख्यातः।

[2] एपि0इण्डि0, भाग–1, पृ0 – 233–237, श्लोक – 12.
श्री हर्षदेव इति खोट्टिगदेव लक्ष्मी जग्राह योयुधिनागादसमप्रतापः।

975 ई0 तक तैलप द्वितीय का आधिपत्य स्थापित हो गया।

इस तरह बादामी के चालुक्यों के अवसान काल से लेकर कर्क द्वितीय के काल तक लगभग दौ सौ वर्षों में राष्ट्रकूटों ने दक्षिण भारत के राजनीतिक इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। यद्यपि उनका प्रभुत्व मूलतः दक्षिण में 'रट्टपाडि' तक ही सीमित रहा, परन्तु अपनी राजनीतिक गतिविधियों के अन्तर्गत उन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पूरे भारतवर्ष को प्रभावित किया। उत्तर में शक्तिशाली प्रतिहारों और पालों को पराजित करने में उन्होंने सफलता प्राप्त की और परमारों को अपना परावर्ती बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। दक्षिण में गंगो, पूर्वी चालुक्यों, चोलों आदि को अपनी शक्ति द्वारा प्रभावित किया। परन्तु अन्त में दसवीं शताब्दी ई0 के चतुर्थ पाद में उनकी शक्ति का पतन होने लगा और धीरे - धीरे वे राजनीतिक क्षितिज से विलुप्त हो गये।

अध्याय : २

केन्द्रीय प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन

प्राचीन भारत में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था सबसे लोकप्रिय शासन व्यवस्था थी। इस शासन व्यवस्था में राजा शासन का केन्द्र बिन्दु होता था और अपने पदाधिकारियों की सहायता से शासन का संचालन करता था। वह व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का प्रमुख स्रोत था और शासन के समस्त अंगों पर अपनी निगरानी रखता था। वह केन्द्रीय शासन का प्रधान था। प्रजा का रंजन, लोककल्याणकारी कार्य, वर्णाश्रम धर्म का संचालन आदि उसके प्रमुख कर्त्तव्य होते थे। आदर्श शासन व्यवस्था के द्वारा वह एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता था। मौर्य युग से लेकर आगे के युगों में इसी प्रकार की व्यवस्था का चित्रण मिलता है।

भारतीय इतिहास में चालुक्य तथा राष्ट्रकूट साम्राज्य के महान् शासकों ने भी अपनी – अपनी शासन व्यवस्था को सुदृढ़ एवं जनहितकारी बनाने के लिए प्राचीन भारतीय राज व्यवस्था की परम्पराओं का अनुपालन करते हुए उसमें कतिपय उपयोगी परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किये। इन्होंने सशक्त केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को स्थापित करने का पूरा प्रयत्न किया, जिसका विस्तृत विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

515041

भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार राजा की उत्पत्ति समाज को धर्मानुसार संचालित करने के लिए हुई है। प्राचीन राजनीतिक ग्रन्थों में राजा की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है। राजा राज्य रूपी वृक्ष की जड़ है। राज्य में राजा ही सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान अधिकारी होता है। उसकी महत्वपूर्ण स्थिति को ध्यान रखते हुए सभी आचार्यों ने उसके आवश्यक गुणों पर प्रकाश डाला है। उनके मतानुसार राजा में विवेक, विनय, शास्त्र ज्ञान, प्रजा के पालन – पोषण की क्षमता समयानुकूल व्यवहार करने की योग्यता, शत्रु और मित्र के पहचान की योग्यता आदि गुणों का होना आवश्यक है। राजा को राज्य के धर्म के नियमों के अनुसार कार्य करने की सलाह दी गयी है, राज्य की प्रगति उसी पर निर्भर करती है और वह समस्त राजनीतिक संगठन का शासक होता था। भारतीय राज्य दर्शन को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्राचीन राजा स्वेच्छाचारी नहीं थे, वे धर्म के अधीन थे और धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा करते थे और उसे भी धर्म पर चलने की प्रेरणा देते थे। **महाभारत** के अनुसार "राजा विहीन देश में धर्म, जीवन एवं सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। अतः देवी ने प्राणियों की रक्षा हेतु राजा की नियुक्ति की।[1]" मनुस्मृति के अनुसार ईश्वर ने राजा का निर्माण इन्द्र, अग्नि, यम, वायु, वरूण, चन्द्र और कुबेर का अंश लेकर किया। अतः यदि कोई बालक भी राजा

[1] महा० शान्ति, 10–13/68.

515041
LUCKNOW UNIVERSITY TAGORE LIBRARY LUCKNOW
520041

हो तो उसका अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह नर रूप में देवता ही है।[1] **कौटिल्य के अर्थशास्त्र** में राजा को इन्द्र और यम का स्थानीय बताया गया है। दया एवं क्रोध उसमें प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हैं, जो उसका अपमान करता है वह दैवी दण्ड का भागी होता है।[2]

प्रजा की रक्षा करना राजा का प्राचीन कर्त्तव्य कहा गया है। भीष्म के अनुसार राज्य पर दीर्घकाल तक शासन करने की अभिलाषा रखने वाले राजा को प्रजा की रक्षा में लीन रहना चाहिए क्योंकि प्रजा की रक्षा ही प्रजा को प्रसन्न करने का मूल कारण है।[3] कौटिल्य का मत है कि राजा का अपना व्यक्तिगत प्रिय एवं कल्याणकारी कोई कार्य प्रथम नहीं है। प्रजा – प्रिय एवं प्रजा कल्याणकारी कार्य ही राजा का प्रिय एवं कल्याणकारी कार्य होता है।[4] आचार्य सोमदेव सूरि ने कहा है कि राजा को प्रजा कार्यों, प्रजा पालन व दुष्ट निग्रह आदि का स्वयं ही निरीक्षण करना चाहिए। इन कार्यों को राजकर्मचारियों पर नहीं छोड़ना चाहिए।[5] राजा को प्रजा रक्षण की चिन्ता हर क्षण करनी चाहिए। प्रजा पीड़ा एवं

---

[1] मनुस्मृति 7/4–6.

[2] कौटि०, अर्थ०, 1. 9.

[3] महा० शान्ति, 57.42.

[4] कौटि० अर्थ०, 1.19.

[5] नीति० 17.32.

अन्याय की वृद्धि में राज्य एवं कोष दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।[1] प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा को निन्दनीय कहा गया है। जो राजा दुष्टों का निग्रह करके प्रजा की रक्षा करता है, वह प्रशंसनीय होता था और उसे उत्कृष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है। सोमेश्वर के अनुसार भी राजा का प्रथम कर्त्तव्य अपने बच्चों की तरह राज्य एवं प्रजा की रक्षा करना है।[2] एक अन्य स्थल पर सोमेश्वर ने पुनः कहा है कि राज्य के दुष्टों का निग्रह करके लोगों की रक्षा करना और सज्जनों के साथ सद्व्यवहार राजा का परम् कर्त्तव्य है।[3] इस तरह प्रायः सभी आचार्यों ने राजा को सलाह दी है कि वह प्रजा - रंजन का कार्य करते हुए दुष्टों का निग्रह करके एक आदर्श राज्य की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजा की स्थिति समाज में सर्वोच्च होती थी। वह पूर्ण धार्मिक, सदाचारी, पराक्रमी, स्वरूप और तेजस्वी व्यक्ति होता था। इस प्रकार से राजा के संबंध में यह शास्त्रीय मान्यताएँ किसी न किसी रूप में सदैव मान्य रही हैं।

---

[1] नीति0, 19.17.

[2] मानसोल्लास 2.3.155. स्वराष्ट्रे पालयेद राजा प्रज्ञाः पज्ञानित्रौरसान्।
चौरेभ्योऽमात्यकेभ्यश्च तथेववातार्थाहीकारितः।।

[3] वही, 2.20.1295 दण्डहीने यतो राष्ट्रेमात्सयो न्यायः प्रवर्तते।
तस्पाद दण्डप्रयुजीत दुष्टानां धर्मिको नृपः।।

चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। अभिलेखों में चालुक्य राजाओं को साक्षात् देवता कहा गया है। पुलकेशिन द्वितीय की पौराणिक राजा नहुष, नृग, ययाति से तुलना, चालुक्यों के दवेत्य - पद का प्रतीक है। चालुक्यों एवं उनके समकालीन राज्यों में राजा शासन संबंधी गाड़ी की धुरी के समान था। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, दान लेखों ओर साहित्यिक सामग्रियों से विदित है कि इस समय सुदृढ़ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन - व्यवस्था विकसित थी तथा शासन का प्रमुख राजा था। वही सेना, शासन एवं न्याय तीनों का प्रमुख था। चालुक्य अभिलेखों में वर्णित प्रशस्तियों में राजाओं के अनेक गुणों का पूर्ण विवरण मिलता है। ऐहोल अभिलेख में जयसिंह के लिए उल्लेख आया है कि विविध प्रकार के सैकड़ों अस्त्रों के प्रहार से चक्कर खाकर गिरने वाले घोड़े, पैदल सेना और हाथियों से युक्त नाचते हुए भयंकर धड़ तथा चमचमाती तलवार के तेज से व्याप्त समरभूमि में जिसने स्वभावतः चंचल लक्ष्मी को अपनी वीरता से जीत लिया था।[1] जयसिंह के पुत्र रणराग के लिए इसी अभिलेख में आया है कि वह अलौकिक प्रतिभावान् संसार का एकमात्र स्वामी था।[2] पुलकेशिन प्रथम की तुलना पौराणिक नरेशों ययाति और दिलीप से की गयी है। मंगलेश

---

[1] ऐहोल अभिलेख, श्लोक-5., एपि0इण्डि0, भाग-6, पृ0 1-12.

[2] ऐहोल अभिलेख,श्लोक-6,

दिव्यानुभावों जगदेकनाथः अमानुष्त्वं किलयस्क लोक

के नेरूर दानपत्र में उसकी विद्वता की बड़ी प्रशंसा की गयी है। वह मानव धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण – महाभारत तथा अन्य इतिहासों का अध्ययन कर चुका था।[1]

ऐहोल अभिलेख में पुलकेशिन द्वितीय को भगवान शंकर के समान कान्ति वाला कहा गया है।[2] प्राचीन ग्रन्थों में राजा के आठ प्रकार के कर्त्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख आया है, जिसमें प्रजा का पालन, दुष्टों का निग्रह, दान, यज्ञ, कर लेना, शत्रुओं का मर्दन करना, राजवंशों को वश में रखना और भूमि का संग्रह करना आदि था।[3] चालुक्य वंशीय नरेश इन सबका पालन करने में तल्लीन रहते थे। चालुक्यवंशीय राजा साम, दाम, दण्ड और भेदनीति द्वारा शत्रुओं को पराजित करने में सक्षम थे। पुलकेशिन द्वितीय ने आप्यायिक एवं गोविन्द जैसे राजाओं को भेदनीति का सहारा लेकर ही विजित किया था।[4] शत्रुओं का दमन करके अपनी राज – रक्षा नीति में वे पूर्णरूपेण अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे।

---

[1] इण्डि०ऐण्टी०, 19, पृ० – 7.

[2] ऐहोल अभिलेख, श्लोक 21.

[3] शुक०श्लोक–1 दुष्टनिग्रहणं दान प्रजाया परिपालनम्----1
यजनं राजभूयादेः कोशनां न्यायतार्जनम।।
करदीकरणं राजा रिपूणां परिमर्दनम।
भूमेरूपार्जनं भूयो राजवृत्तं तु चाष्टाथा।।

[4] ऐहोल अभिलेख, श्लोक 17.

चालुक्य राजवंशों के अन्तर्गत राजकीय विरूद् और पदवियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था, जिसमें राजाओं के अस्तित्व अधिकारों, सीमा तथा प्रभुत्व का अत्यंत संगत रूप से बोध होता था। चालुक्य वंश के प्रारम्भिक नरेशों में बहुत समय तक *'पृथ्वीबल्लभ'* उपाधि का प्रयोग होता रहा।[1] उसके बाद सर्वप्रथम पुलकेशिन प्रथम ने *'महाराज'* की उपाधि धारण की।[2] उसने *'सत्याश्रय', 'रणविक्रम'* तथा *'पृथ्वीवल्लभ'* की उपाधियां भी धारण कीं।[3] कीर्तिवर्मन प्रथम ने पुरू - रणपराक्रम की उपाधि, विक्रमादित्य प्रथम ने महाराजाधिराज और भट्टारक जोड़ा।[4] हर्षवर्धन की प्रभुता को रोकने के लिए पुलकेशिन द्वितीय ने *'परमेश्वर'* की उपाधि धारण की थी। विक्रमादित्य प्रथम के समय *'महराजाधिराज'* और *'भट्टारक'* जैसी उपाधियों का प्रयोग हुआ। आवश्यकता पड़ने पर राजा के विष्णु या शिव के उपासक होने पर *'परम्भागवत्'* या *'परम्माहेश्वर'* की उपाधि भी जुड़ जाती थी। इस तरह प्राचीन भारत के अन्य राजवंशों के शासकों की भांति चालुक्य वंशीय नरेश भी अनेक उपाधियां धारण करते थे जो उनकी प्रभुता का प्रतीक समझी जाती थीं। चालुक्य नरेशों की पूरी उपाधि *'सत्याश्रय श्री पृथ्वी - वल्लभ - महराजाधिराज*

---

[1] ऐहोल अभिलेख, श्लोक 4. 'पृथ्वीवल्लभशब्दों येषामन्वर्धतां चिर यातः'

[2] इण्डि०ऐन्टी०, 6, पृ० - 73.

[3] महाकूट स्तम्भ लेख सत्याश्रय श्री पृथ्वीवल्लभ रणविक्रमांक नृपः।

[4] इण्डि०ऐन्टी०, भाग-6, पृ० - 86.

परमेश्वर भट्टारक' थी। वेंगी के चालुक्य नरेश विजयादित्य तृतीय ने भी अनेक उपाधियां धारण की थीं जिनमें से *गुणके – नल्लाट* (विशिष्टता और सदाचार का प्रेमी), *पराचक्र राम* (अपने शत्रु के वृत्त में राम), *त्रिपुर – मर्त्य महेश्वर* (तीन नगरों के लिए *मरणशील महेश्वर* तथा वल्लभ (स्वामी) महत्वपूर्ण थीं।

चालुक्यों के अधीनस्थ बनवासी के कदम्ब शासकों का राजकीय चिन्ह शेर था। सम्भवतः सिंह को उसकी उत्साह शक्ति के कारण उपर्युक्त राजवंशों ने अपना राजकीय एवं कुल चिन्ह चुना था।[1] वातापी के चालुक्यों का कुलचिन्ह वराह था[2] जो उन्हें स्वयं ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था। इसी कुलचिन्ह को कल्याणी एवं वेंगी की चालुक्य शाखाओं ने अपने कुलचिन्ह के रूप में अपनाया था।

➢ **युवराज : –**

प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार राजा को अपने जीवनकाल में ही वंश की गृह कलह से रक्षा के लिए युवराज की नियुक्ति कर देनी चाहिए।

---

[1] इण्डि०, ऐण्टी, 14. पृ० – 104.

[2] साउथ इण्डि० पॉलिटी, पृ० – 104.

उत्तराधिकारी के रूप में प्रायः राजा के पुत्र को ही चुनने का विधान प्राप्त होता है। साधारणतः ज्येष्ठ पुत्र को ही पिता के बाद राज्याधिकार प्राप्त होता था। किन्तु कभी – कभी जब राजा पुत्रहीन होता था अथवा वह पुत्रों की अल्पावस्था में ही मर जाता था, तब उसका छोटा भाई उसके सिंहासन का अधिकारी होता था। मनु के अनुसार पिता के पश्चात् उसके योग्य पुत्र को ही राज्य का भार ग्रहण करना चाहिए।[1] कौटिल्य का मत है कि आपातकाल को छोड़कर जयेष्ठ पुत्र को ही राजा बनना चाहिए।[2] राजा के ज्येष्ठ पुत्र (युवराज) के अतिरिक्त छोटे पुत्र को युवराज का सहायक समझा जाता था और प्रान्तीय शासकों के रूप में नियुक्त किया जाता था।[3] राजा के भावी शासक के रूप में ज्येष्ठ पुत्र ही राजगद्दी का अधिकारी होता था, जिसे युवराज कहा जाता था। इस परम्परा का प्रायः सभी प्राचीन भारतीय राजवंशों में प्राप्त होता है। प्राचीन कालीन परम्परा के अनुसार चालुक्य शासकों ने भी अपने राजवंश में 'युवराज' नियुक्त करने की परम्परा का निर्वाह किया। सामान्यतया चालुक्य शासक ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी मनोनीत करते थे, परन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में इसका उल्लंघन भी मिलता

---

[1] मनु0,9, 20.

[2] कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1.17.

[3] शुक्र 1.341. "तेषु ज्येष्ठो भवेद्राजा शेषास्तत्कार्यसाधकाः।
गरीयांयों रां सर्वे सहायेःयोभिवृहते।"

है। जब उत्तराधिकारी अल्पवयस्क होता था, तो राजा अपने भाई को या अन्य किसी संबंधी को शासन सत्ता सौंप दिया करता था। कीर्तिवर्मन प्रथम की मृत्योपरान्त उसके पुत्रों की अल्पावस्था में उसका छोटा भाई मंगलेश राज सिंहासन पर बैठा था[1], किन्तु यह भी नियम था कि पुत्रों के बालिग हो जाने पर पूर्व राजा के ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक किया जाता था। ऐसा न होने पर प्रजा विद्रोह कर वास्तविक उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक कराती थी। जैसा कि मंगलेश को अपने पुत्र को राज्य दिलाने के प्रयास में जन सहयोग ने पुलकेशिन द्वितीय का साथ दिया जिसके फलस्वरूप पुलकेशिन द्वितीय मंगलेश को पदच्युत कर स्वयं सिंहासनासीन हुआ।[2]

यदि ज्येष्ठ पुत्र अयोग्य या अक्षम होता था तो छोटा पुत्र भी राजपद प्राप्त कर सकता था। पुलकेशिन द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रादित्य था[3], किन्तु सम्भवतः वह अयोग्य था, जिससे उसका छोटा भाई विक्रमादित्य प्रथम चालुक्य सिंहासन पर बैठा। राजा के ज्येष्ठ पुत्र (युवराज) के अतिरिक्त छोटे पुत्रों को युवराज का सहायक समझा जाता था और

---

[1] ऐहोल अभिलेख लेख, श्लोक–11 "राजा भवतदनुजः किलमंगलेशः।"

[2] वही, श्लोक–15.

[3] दृष्टव्य पाठक, विशुद्धानन्द, दक्षिण भारत का इतिहास पृ0–7, पृ0–163. कोंचरे अभिलेख, वही, 8, पृ0 – 44.

उन्हें प्रान्तीय शासकों के रूप में नियुक्त किया जाता था।[1] पुलकेशिन द्वितीय ने अपने पुत्रों को प्रान्तीय शासक के रूप में नियुक्त कर रखा था। चालुक्य वंश में इस प्रथा का पूर्णरूपेण पालन होता था, जिसके उदाहरण अभिलेखों में मिलते हैं। विक्रमादित्य प्रथम, विनयादित्य, विजयादित्य एवं बाद के अन्य नरेशों को अपने पिता के जीवन काल में ही "युवराज" के रूप में नियुक्त कर दिया गया था। इस तरह साधारणतः राजा का जयेष्ठ पुत्र ही राजगद्दी का अधिकारी होता था, जिसे युवराज कहा जाता था। वह राज्य - कार्य में राजा की सहायता करता था। सम्भवतः विक्रमादित्य प्रथम को युवराज के रूप में अनेक युद्धों का संचालन करते हुए पाया जाता है। इसके बाद में प्रायः युवराजों को पिता के प्रशासनिक कार्यों एवं सैन्य संचालन में व्यस्त पाते हैं।[2] युवराज ही राजा की मृत्योपरान्त राज्य का स्वामी होता था। अल्पावस्था में राजा का छोटा भाई भी युवराज पद को प्राप्त कर सकता था। पुलकेशिन द्वितीय ने दक्षिण के युद्धों में व्यस्त होने के कारण अपने छोटे भाई विष्णुवर्धन को केन्द्रीय शासन देखने के लिए युवराज नियुक्त किया था। इस काल में युवराज का चयन एवं उसका अभिषेक किस प्रकार होता था, इसका चालुक्य अभिलेखों में उल्लेख नहीं मिलता है। युवराजों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस

[1] शुक्र० 1.341 वही,, 8, पृ० - 44

[2] एपि०इण्डि०, 1, पृ० - 200.

काल में युवराजों को विस्तृत अधिकार प्राप्त होते थे। इस विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य काल में युवराज की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

प्राचीन भारतीय इतिहास में *मंत्रिपरिषद्* को राज्य का अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए धर्मशास्त्रों में मंत्रिपरिषद् की आवश्यकता पर विशेष प्रकाश डाला गया है। कौटिल्य के मतानुसार राजस्व पद सहायकों की मदद से ही संभव है, जिस प्रकार रथ एक पहिये के अभाव में आगे नहीं बढ़ सकता, उसी प्रकार राज्य में राजा अथवा मंत्री के अभाव में सुव्यवस्था नहीं रह सकती। अतः राजा के साथ मंत्री का होना अत्यन्त आवश्यक है।[1] मनु का कथन है कि एक व्यक्ति के लिए सरल कार्य भी अकेले करना कठिन है, तो शासन कार्य जैसे महान् कार्य को राजा मंत्रियों की सहायता के अभाव में कैसे संचालित कर सकता है।[2] कामन्दक ने भी

---

[1] कौटिल्य, अर्थ0, 1.7 :- 'सहायसाध्यमं राजत्वं चक्रमेंक नवर्तते।
कुर्वीत साचितास्तस्मत्षिां च श्रुणुयान्मत्।।'

[2] मनु0, 7.53 :- 'अपि यत्सुकंर कर्म तदप्येकेन दुष्कम।
विशेषतोअसहासेन किं नु राज्यं महोदयम्।।'

अपने नीतिसार में मंत्रियों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्हें राजा का हाथ और नेत्र बताया है।[1]

महाभारत में कहा गया है कि राजा अपने मंत्रियों पर उतना ही निर्भर है, जितना प्राणी पर्जन्य पर, ब्राह्मण वेदों पर और स्त्रियां अपने पतियों पर।[2] महाभारत में स्पष्ट उल्लिखित है कि राजा मंत्रिपरिषद् की सहायता के अभाव में एक दिन भी शासन नहीं कर सकता है।[3] वस्तुतः स्पष्ट है कि राज्य में मन्त्रियों का विशेष महत्व था।

भारत में मंत्रियों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन काल से प्राप्त होता है। विवेच्य युग के अभिलेखों से भी मंत्री के महत्व का आभास होता हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल में रत्नियों का जो महत्व था वह समाप्त नहीं हुआ बल्कि उसका रूप आगे आने वाले मंत्रिपरिषद् ने ले लिया ओर शासकगण अपने मंत्रियों के परामर्श से शासन का संचालन करने लगे। जिसकी पुष्टि उनके साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों से होती है।

---

[1] काम0 नीति0, 18.28. :- 'आमात्यों युवराजश्च भुजोवेतों महीयतेः।
मंत्री नेत्र
हि------------------।।'

[2] महा0, 5.37.-38.

[3] महा0 12.160.11 - न राज्यमनमात्येन शक्यं शास्तमवित्रयहम।।

महाकाव्य, सूत्रग्रन्थ, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र संबंधी ग्रन्थों में मंत्री और उनकी योग्यता तथा कार्यों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

राज्य को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए मंत्रियों का प्रमुख हाथ होता था, इसलिए मंत्रि पद पर ऐसे ही व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे, जो आवश्यक गुणों से सम्पन्न होते थे। राजनीति के विचारकों के अनुसार राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करने में बहुत ही सावधानी और सतर्कता से काम लेना चाहिये। रामायण[1] और महाभारत[2] के अतिरिक्त मनु[3], याज्ञवल्क्य[4], विष्णु[5] और बृहस्पति[6] स्मृतियों में भी मंत्रियों के आवश्यक गुणों की विवेचना की गई है। साधारणतया सभी ग्रन्थों में मंत्रियों के गुणों के विषय में यही कहा गया है कि मंत्री को राज्य का ही नागरिक, कला और विज्ञान का पूर्ण ज्ञाता, बुद्धिमान, दूरदर्शी, वाक्पटु, पराक्रमी और उत्साही होना चाहिये। चालुक्य वंश में भी

---

[1] रामा0, 1.7, 7-14

[2] महा0 12.80.83 और 188.

[3] मनु0, 7.54 -"मौलात्रछास्त्रविदः सूरांल्लत्थलश्रात्कुलादेवान....."

[4] याज्ञ0, 1.312, "स मंत्रिणः प्रकुर्वीत प्राज्ञन्मौलान्स्थिराःन्शुचीन।"

[5] विष्णु, 3.71 - "शचीन लब्धानहितान्छक्ति सम्पन्नान्सर्वाधेषुः च सहायान्।"

[6] बृहस्पति, 1, 1.71 "सर्वशास्त्र वेतारम लुब्धन्यायभाषिणाम्।
विप्रं प्राज्ञं क्रमायातममात्यं स्थ्ज्ञापमेदिणम्।।"

योग्य मंत्रियों की सहायता से ही शासन संचालित होता होगा। इतना विशाल साम्राज्य उनके विवेक द्वारा ही चल सकता था। ऐसा प्रायः सभी विद्वानों का मानना है।

मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों की संख्या कितनी होनी चाहिये, इसके संबंध में विचारकों में परस्पर मतभेद है, मनु का मत है कि मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों की संख्या 7 या 8 होनी चाहिये।[1] महाभारत में इनकी संख्या 8 निश्चित की गयी है।[2] बृहस्पति को उद्धत् करते हुए कौटिल्य ने कहा है कि मंत्रि – परिषद् के सदस्यों की संख्या 16 होनी चाहिये।[3] यद्यपि इनका मत है कि राजा को समय, परिस्थिति तथा आवश्यकतानुसार मंत्रिपरिषद् में सदस्य रखने चाहिये तथा 3 या 4 मंत्रियों से मंत्रणा लेनी चाहिये।[4] नीतिवाक्यामृत के अनुसार मंत्रियों की संख्या 3, 5 या 7 से ज्यादा नहीं होनी चाहिये।[5] ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्रियों की नियुक्ति राज्य के आकार के अनुसार होती थी। बड़े राज्य के लिए बड़ी

---

[1] मनु0, 7.54 :–"मौलान्दास्त्रविदं सूरांल्लब्ध लक्षान्कलोद्भवान्।
सचिवान्यप्त चाष्ठों वा प्रफुर्वीत परीक्षितान्।।"

[2] महा0, 12.85 :– "आष्ठानां मंत्रिण मध्ये मंत्र रार्जोपधारयेत।"

[3] अर्थ0, वार्ता 54 अ. 15, अधि0 1 :– "षोड्शेति बृहिस्पत्याः।"

[4] वही, 1.15.56 :– "यथासामर्थ्यम् कौटिल्यः।"

[5] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0–115.

मंत्रिपरिषद् और छोटे राज्य के लिए छोटी मंत्रिपरिषद् उपयुक्त समझी जाती थी।

चालुक्य राजवंश के अन्तर्गत हमें किसी मंत्रिपरिषद् के अस्तित्व के संबंध में कोई विशेष साक्ष्य तो नहीं प्राप्त होते परन्तु इतना निश्चित है कि राजा की अपनी मंत्रिपरिषद् होती थी। इस युग के लेखों के संकलन से ज्ञात होता है कि मंत्रियों को *महाप्रचण्डदण्डनायक* की उपाधि प्रदान की जाती थी।[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि मंत्रियों के लिए सैनिक योग्यता का होना अनिवार्य माना जाता था। सम्भवतः उस समय के राजनीतिक परिवेश को देखते हुए मंत्रियों के लिए सैनिक योग्यता अनिवार्य कर दी गयी थी। अभिलेखों से हमें चालुक्य प्रशासन में नियुक्त अनेक अधिकारियों और कर्मचारियों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं, जिनकी सहायता से राजा शासन संचालन करता था। चालुक्य अभिलेखों में मंत्रियों एवं राजा के परस्पर संबंधों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता किन्तु ऐहोल आदि में आये उल्लेख से अनुमान होता है कि पुलकेशिन को मंत्रिपरिषद् का पूर्ण सहयोग प्राप्त था जिसके परिणामस्वरूप वह विषम् परिस्थितियों में भी एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना में सफल हुआ। ऐहोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि मंगलेश एवं पुलकेशिन द्वितीय के बीच उत्तराधिकार युद्ध छिड़ने पर पुलकेशिन ने अपनी

---

[1] इण्डि०ऐण्टी०, 14, पृ० - 26.

मंत्रणा एवं उत्साह शक्ति से मंगलेश को हरा दिया।[1] इस प्रमाण से यह ज्ञात होता है कि मंत्रि योग्य तथा राजनीति विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। मंत्रिपरिषद् का मुख्य कार्य राजा को किसी भी प्रकार के मामले में नीति निर्धारण करने में सलाह देना था। राजाज्ञा मंत्रियों की मंत्रणा से ही प्रचारित होती थी। सभी मंत्री अपना – अपना विभाग देखते थे। शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में रहती थी। राजा के युद्ध में संलग्न व बाहर जाने की स्थिति में केन्द्र का शासन इन्हीं मंत्रियों के संरक्षण में रहता था। इनका कार्य योग्य व उचित राजा का चुनाव कर सिंहासन पर बैठाना था। चालुक्यकालीन अभिलेखों में आए पदों में से कितने मंत्रिपरिषद् में थे, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता परन्तु कुछ तो निश्चित ही इस श्रेणी में आते रहे होंगे जिनसे राजा मंत्रणा करता रहा होगा। पुलकेशिन द्वितीय द्वारा मंत्रणा करने का उल्लेख इस बात को प्रमाणित करता है।[2]

चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत विभिन्न स्तर के राजकीय अधिकारियों तथा कर्मचारियों के नामोल्लेख अभिलेख में प्राप्त होते है। इस काल का सबसे महत्वपूर्ण तथा बड़ा

---

[1] ऐहोल अभिलेख, श्लोक 2·5,

"सयदुपयितन्त्रोत्साहशक्तिप्रयोगक्षयित्वलविशेषो मंगलेशः समन्तात्। स्वतनयगतराज्यारम्भयलेन साईनिनमतुन राज्यं जीवितं चोजयक्षतिस्म।।"

[2] वही, श्लोक 25.

अधिकारी *महासान्धिविग्रहिक* था। युद्ध और संधि के विषय में इस अधिकारी की चार पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है यथा श्री रामपुन्य वल्लभ, निरवैध, निरवैध श्रीमद्‌भनिवारित पुन्यवल्लभ और श्री मद्‌अनिर्धारित धनंजयपुन्यवल्लभ। सम्भवतः यह ज्ञात होता है कि ये एक ही परिवार 'पुन्यवल्लभ' की चार पीढ़ियों के सदस्य एवं अधिकारी थे। सम्भवतः पुन्यवल्लभ इनका कुलनाम था। इनके कुल का नाम ध्यान देने योग्य है, जो चालुक्यों के प्रति उनकी भक्ति का सूचक है, क्योंकि नरेश स्वतः 'वल्लभेश्वर' के नाम से विख्यात थे। यही नहीं 'निरवैध' मूल रूप में विजयादित्य और 'अनिवारित' विक्रमादित्य द्वितीय की उपाधियां भी थीं। सम्भवतः इन राजाओं के लेखक के रूप में होने से इन्हें ये उपाधियां प्राप्त हुई होंगी।[1]

चालुक्य अभिलेखों में वर्णित मंत्रिमण्डल में *दूत* का कार्य राजाज्ञाओं को महासन्धिविग्रहितः के कार्यालय तक पहुँचाना था। इस काल के कुछ दूतकों के नाम इस प्रकार थे – अम्मगोप[2], मान, श्री वल्लभव्य[3] आदि। अभिलेखों से विदित होता है कि इस काल में सैन्य मंत्री को शामिल किया गया था, जिनका एक प्रमुख स्थान था।

---

[1] एपि० इण्डि०, पृ० – 15.

[2] का०इं०इं०, 4-1, पृ० – 137.

[3] वही, पृ० – 122.

'*महाबलाधिकृत*' और '*सेनापति*' ये दोनों सैन्य विभाग के बड़े अधिकारी थे। महाबलाधिकृत सम्भवतः मुख्य सेनापति था और उसके अधीन सेनापति का दर्जा होता था। उदाहरणस्वरूप पुलकेशिन द्वितीय के दो सेनापतियों, चण्ड एवं दण्ड का नाम उल्लेखनीय है।[1] चालुक्य अभिलेखों में *लेखक* नामक अधिकारी का भी उल्लेख होता है, जो राजा द्वारा प्रेषित आज्ञाओं को लिपिबद्ध करता था। भोगिक भागभट्ट का पुत्र मान[2], कल्लिवन निवासी भरतस्वामिन[3] तथा क्षत्रिय मारसिंह[4] इसी प्रकार के अधिकारी थे। इस काल के अभिलेखों में अनेक राजगुरूओं का उल्लेख मिलता है, जिनसे राजा समय – समय पर मंत्रणा करता था। सम्भवतः यह धार्मिक कार्यों में राजा को सहयोग प्रदान करता था। विक्रमादित्य प्रथम के समय में उनका धार्मिक गुरू 'श्री मेघाचार्य' था।

अभिलेखों में *विज्ञप्तिकर्मा मंत्री* का उल्लेख मिलता है, जो राजा के मौखिक या लिखित आदेशों को दूसरे अधिकारियों तक पहुँचाने का कार्य करता था। इस काल की

---

[1] ऐहोल अभिलेख, श्लोक 20.

[2] का0इं0इं0, 4–1, पृ0 – 131

[3] वही, पृ0 – 154.

वही, पृ0 – 173.

[4] वही, पृ0 – 173.

एपि0इण्डि0, 23, पृ0 – 96–97.

अनेक विज्ञप्तियों के नाम ज्ञात होते हैं, जिनमें बलम्म ठाकुर तथा पिष्ठापुर के शासक पृथ्वीमहाराज के तांडिवाड[1] तथा गोलवल्ली[2] पत्रों में रामलेनरूराज, विक्रमादित्य प्रथम के गडवल पत्रों में खुदस्वाभिन[3] नामक विज्ञप्तियों के उल्लेख आये हैं।[4] 612 ई0 के लगभग माधववर्मन चतुर्थ के पोलमोरूपत्रों में 'हस्तिकोष' एवं 'वीरकोष' नाम के दो अधिकारियों का उल्लेख आया है। ये मंत्रिपरिषद् के प्रमुख अधिकारियों में से एक थे, जिनका कार्य राज्य के कोष का प्रबन्ध करना था। चालुक्य अभिलेखों में *राष्ट्रकूट* नामक अधिकारी का भी उल्लेख मिला है, जो सम्भवतः *'राष्ट्र'* नामक प्रान्तीय इकाई का प्रमुख प्रशासक था।

चालुक्य शासन में *विषयपति* नामक अधिकारी का उल्लेख भी अभिलेखों में मिलता है। यह विषय नामक क्षेत्रीय इकाई का प्रमुख था। मंत्रिपरिषद् में *ग्रामाधिकारी* भी आते थे, जो ग्राम के प्रमुख अधिकारी के रूप में कार्यरत थे, जिनमें महत्तर, महाजन, चाट – भट, वासावक, गामिक, राजपुरूष आदि होते थे। इस युग में सामन्तवाद का भी अस्तित्व था। चालुक्य प्रशासन में रानियों एवं राजकुमारियों

---

[1] एपि0इण्डि0, 23, पृ0 – 96-97.

[2] वही, 35, पृ0 – 22-23.

[3] वही, 10, पृ0 – 104.

[4] एनु0रि0इण्डि0एपि0, 1914, पृ0 – 235.

का लोक प्रशासन में महत्वपूर्ण योगदान था। सम्राट् के अधीन वे व्यवहारतः प्रभावशाली भूमिका निभाती थीं। विक्रमादित्य के अग्रज चन्द्रादित्य की महादेवी 'विजयभट्टारिका' ने दो अनुदान पत्र जारी किये थे।[1] कुरूतकुन्त प्रान्त में विजयादित्य की पुत्रवधू 'लोतिनिम्मदी' (त्रलोक्यमहादेवी) शासिका थी।[2] इससे स्पष्ट है कि चालुक्य रानियां व राजकुमारियां धार्मिक, प्रशासनिक एवं सैन्य - संचालन जैसे कार्यों में राजा को सहयोग देती थीं। कल्याणी के चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ की एक रानी केतलदेवी वेल्लारी जिले के कई गांवों का प्रशासन देखती थी। इसी तरह उसकी दूसरी रानी लक्ष्मीदेवी द्रोणपुर (धारवाड़) जिले में शासनस्थ थी।

चूँकि चालुक्य प्रशासन व्यवस्था काफी सुदृढ़ एवं विशाल थी, इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चालुक्य काल के भिन्न - भिन्न प्रशासनिक विभाग होते थे और इन विभागों के अन्तर्गत अलग - अलग अधिकारी होते थे।

---

[1] इण्डि०ऐण्टी०, 8, पृ० - 45-46.

[2] दृष्टव्य नीलकण्ठ शास्त्री, हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ० - 235.

➢ विदेश विभाग : –

इस विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी 'सान्धिविग्रहिक' कहलाता था।[1] यह आमात्य होता था। इसका पद इस काल में बड़ा महत्वपूर्ण था। युद्ध और सन्धि के विषय में अन्तिम निर्णय उसी की राय से होता था। सन्धि की शर्तें भी तैयार करना उसी का काम होता था। इस काल में अनुदान – पत्र – लेखन का कार्य प्रायः इसी विभाग द्वारा होता था। सम्भवतः राजा के मौलिक आदेशों के अनुसार अनुदान – पत्रों को लिपिबद्ध किया जाता था।[2] चालुक्यों के अधिकांश अनुदान – पत्र इसी विभाग द्वारा लिपिबद्ध किये गए थे। कल्याणी का चालुक्य साम्राज्य काफी विशाल था और वह प्रशासन की दृष्टि से दो भागों – लाट (उत्तरी भाग) और कर्वाट (कर्नाटक, दक्षिणी भाग) में विभाजित था। इनके लिए *लाटसांधिविग्रहिक* और *कर्णाटसांधिविग्रहिक* नामक दो केन्द्रीय शासनाधिकारी नियुक्त किए गए थे।

➢ धर्म विभाग : –

चालुक्यों के सम्पूर्ण यज्ञादि कार्यों का संचालन सम्भवतः इसी विभाग के अन्तर्गत होता था। अग्रहार गाँवों

---

[1] एपि०इण्डि०, 19, पृ० – 65.

[2] एपि०इण्डि०, 21, पृ० –139., मिताक्षरा–याज्ञ० स्मृति, अध्याय–1 (खण्ड–5) पृ० – 320.

की व्यवस्था तथा राजपरिवार के सदस्यों द्वारा मन्दिरों के निर्माण का प्रबन्ध इसी विभाग के अन्तर्गत होता रहा होगा। सम्भवतः तत्कालीन अन्य राजवंशों की भाँति इस काल में भी महाधर्माधिकरण नामक अधिकारी रहा होगा। अभिलेखों में *राजगुरु* नामक एक पुरोहित के पद का कई बार उल्लेख हुआ है। इस पद पर प्रायः शैव ब्राह्मण ही नियुक्त किए जाते थे।

➢ न्याय विभाग : –

न्याय विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी राजा होता था। विक्रमादित्य प्रथम के एक सामन्त भोगशक्ति के अजनेरी के अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजा द्वारा स्थानीय व्यापारिक श्रेणियों को विशेषाधिकार दिये गये थे कि वे राज्य के निर्णयानुसार विभिन्न प्रकार के अपराधों पर निश्चित जुर्माना वसूल करें।[1] राजा के अधीन अन्य न्यायिक अधिकारी अवश्य कार्यरत होते होंगे और न्यायिक कार्य में राजा को सहायता देते होंगे। सोमेश्वर भट्टोपाध्याय विक्रमादित्य षष्ठ का *धर्माधिकारी* (न्यायाधीश) था जो बहुत विद्वान् था और उसने महाप्रधान दण्डनायकम श्रीमद् अय्यमगड् सोमेश्वर महोपाध्याय जैसी पदवियां धारण की थीं।

[1] का०इं०इं०, 4-1, पृ० – 114.

➢ पुलिस विभाग : –

शासन ने प्रजा के रक्षार्थ *चाट – भाट* जैसे पुलिस अधिकारियों को नियुक्त कर रखा था।[1] इनका कार्य देश में शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित करना था। सम्भवतः ये अपराधी तथा चोरों को पकड़कर उन्हें शासन के समक्ष प्रस्तुत करते थे। यद्यपि अग्रहरि गाँवों में इनका प्रवेश पूर्णतः निषिद्ध था। ऐसी स्थिति में वे गाँव के बाहर रहकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे।

➢ व्यापार एवं वाणिज्य विभाग : –

इस काल का व्यापार एवं वाणिज्य अपनी उन्नति की चरम् सीमा पर था। अतः राज्य की ओर से उसकी व्यवस्था हेतु एक अलग विभाग रहा होगा। जो समय – समय पर व्यापारियों को करादि से मुक्ति का निर्णय लेता रहता था।

चालुक्य वंश की ही भाँति राष्ट्रकूट वंश के केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न बिन्दुओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है : –

राष्ट्रकूटवंशीय राजाओं ने लगभग 753 – 975 ई० तक दक्षिण भारत में राज्य किया। राष्ट्रकूट साम्राज्य में

---

[1] वही, 4–1, पृ० – 114.

राजा को केन्द्रीय शासन में महत्व प्राप्त था। राष्ट्रकूट साम्राज्य में राजत्व अनुवांशिक था। सम्पूर्ण शासन सत्ता का केन्द्र राजा था। राजाधिराज परम्भट्टारक इत्यादि पदवियों से इस वंश के सभी राजा विभूषित थे।[1] राष्ट्रकूटों की राजधानी मानखेट थी। राजा यदि किसी अभियान आदि पर राजधानी से बाहर नहीं होता था तो वह नियमित रूप से राजदरबार में आता था। साम्राज्य की शक्ति व ऐश्वर्य राज दरबार की शोभा बढ़ाते थे। बड़े - बड़े अभियानों में वही सैन्य - संचालन करता था। वही दरबार में बैठकर प्रजा की बात सुनता था और न्याय करता था। वही प्रशासनिक व्यवस्था का सर्वोच्च कर्ता था।

राष्ट्रकूट दरबार में प्रवेश शाही राजभवन के प्रधान अधिकारी तथा इसके कार्यालय द्वारा संचालित होता था। अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि सामंतों तथा विदेशी शासकों को भी द्वार पर ही प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, जब तक उन्हें बुलाया न जाए।[2] दरबार पैदल, घुड़सवार तथा हस्ति टुकड़ियों द्वारा घिरा रहता था। सम्राट् की शक्ति प्रदर्शन के लिए विजित राजाओं के छीने गये घोड़ों और हाथियों का भी प्रदर्शन होता था।[3]

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0-155.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0-155.

[3] एपि0इण्डि0, 18, पृ0 - 235 और आगे (संजन दानपत्र)

राष्ट्रकूटों के समकालीन अबूजैद ने यह विश्लेषण किया कि भारत के राजाओं में कानों में स्वर्ण जड़ित कीमती पत्थर गले में मोतियों तथा बहुमूल्य रत्नों को पहनने का रिवाज था। राष्ट्रकूट दरबार में भी राजा कीमती वस्त्र तथा आभूषण धारण करके उत्सव आदि में शामिल होते थे। उसके पास शरीर रक्षक शस्त्रों से सुसज्जित रक्षक पहरा देते थे। समकालीन राजाओं की भांति वह भी दरबार में नृत्य तथा नाटक आदि का आनन्द लेते थे। इस काल में यह प्रथा इतनी प्रचलित थी कि जैन लेखक सोमदेव ने भी इसका उल्लेख किया है।[1] अलइदरीसी के विवरण से भी आन्हिलपाटन के चालुक्य दरबार के विषय में उसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।[2] निलगुण्ड शिलालेख में भी अमोघवर्ष प्रथम के काल में उसी प्रकार की प्रथा का उल्लेख हुआ है।

भारतीय इतिहास में राजाओं द्वारा विरूद् धारण करने की परम्परा अति प्राचीन है। राजाओं द्वारा धारण किये गये विरूद् से राजाओं की विजयों, चरित्र, गुणों आदि का ज्ञान होता है। पूर्व प्राचीन परम्परा के अनुसार ही प्रायः राष्ट्रकूट राजाओं ने भी विरूद् सूचक नाम धारण किये थे। प्रायः सभी राष्ट्रकूट राजाओं की उपाधियां 'महाराजाधिराज

---

[1] नीति० 29.51.

[2] इलियट, पृ० – 88.

परम्भट्टारक'[1] थी, किन्तु प्रत्येक राजा अपने अभिषेक के अवसर पर एक विशिष्ट पदवी को धारण करता था। उदाहरणतः 'ध्रुव' की उपाधि 'धारावर्ष' और 'निरूपम'[2], कृष्ण प्रथम एवं कृष्ण तृतीय की 'अकालवर्ष'[3] गोविन्द द्वितीय की 'प्रभूतवर्ष' और 'विक्रमावलोक'[4] गोविन्द चतुर्थ की 'सुवर्णवर्ष'[5] थी। इन विशिष्ट उपाधियों के अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रकूट सम्राटों ने 'कलिवल्लभ', 'कीर्तिनारायण', 'नृपतुंग', 'वीर नारायण', 'रट्टकंदर्प' (अत्याधिक सुंदर) शुभतुंग आदि विरूद् भी धारण किये थे। राष्ट्रकूट राजवंश के शासकों ने राजचिन्ह् के रूप में विष्णु वाहन गरूण को स्वीकार किया था।

संबंधित युग में राज्याभिषेक के जो भी उल्लेख मिलते हैं, वे वैदिक कालीन राज्याभिषेक से भिन्न थे। इस युग में नवीन पद्धति विकसित हुई, जिसके अनुसार राज्याभिषेक का अधिकारी क्षत्रिय के अतिरिक्त ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र कोई भी हो सकता था। इस युग में राज्याभिषेक के समय वैदिक मंत्रों का उच्चारण नहीं होता था। केवल राजतिलक की परम्परा को मानते हुए राज्य देने की परम्परा

---

[1] अलतेकर, ए०एस०, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० - 259.

[2] दृष्टव्य याजदानी, जी०, दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० - 296.

[3] वही, पृ० - 243-270.

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ०-48.

[5] दृष्टव्य याजदानी, जी०, दकन का प्राचीन इतिहास, पृ० - 267.

कानूनी तरीके से वैध मानी गयी। अमोघवर्ष प्रथम के संजन लेख से ज्ञात होता है कि गोविन्द तृतीय जब सिंहासन पर बैठा तो उसने अपना राज्याभिषेक काफी धूमधाम के साथ सम्पन्न किया था। इसी तरह किसी न किसी रूप में इस काल में राजवंशों के शासकों द्वारा राज्याभिषेक की परम्परा का निर्वाह किया गया, भले ही इसके स्वरूप में परिवर्तन आ गया था। राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय के बारे में भी सूचना मिलती है कि उसने अपना राज्याभिषेक काफी धूमधाम के साथ सम्पन्न किया था।

इस प्रकार राष्ट्रकूट राज्य में राजा शासन संबंधी गाड़ी की धुरी के समान था अर्थात् राजा राज्य का सर्वप्रमुख और सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र होता था। राष्ट्रकूट काल में भी राज्याधिकार आनुवांशिक होता था और प्रायः दिवंगत राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राजगद्दी का उत्तराधिकारी माना जाता था। तथापि महत्वाकांक्षाओं के कारण उत्तराधिकार के युद्ध होते रहते थे और इन परिस्थितियों से बचने हेतु शासकगण अपने जीवित रहते ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देते थे तथा उन्हें युवराज का पद देकर अपने साथ शासन में सहयुक्त कर लेते थे। ऐसा नहीं है कि युवराज के रूप में नियुक्ति सबसे ज्येष्ठ पुत्र की ही होती हो। उसमें योग्यता और विशिष्टता का ध्यान भी रखा जाता था। जैसे ध्रुव के चार पुत्रों में स्तम्भ सबसे बड़ा था, किन्तु गोविन्द तृतीय योग्यतम

था। अतः ध्रुव ने गोविन्द तृतीय को युवराज घोषित किया।[1] कभी – कभी ज्येष्ठ पुत्र राज्य प्राप्ति के पश्चात् अपने छोटे भाईयों द्वारा पदच्युत भी किये जाते थे जैसे ध्रुव व गोविन्द चतुर्थ के बारे में हुआ।[2] ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि राजा अपने पुत्र के नाबालिग होने की स्थिति में उसकी संरक्षता हेतु अपने ही परिवार के किसी सदस्य को उसका संरक्षक नियुक्त कर देते थे जो उसके बालिग होने तक संरक्षक के रूप में कार्य करते थे। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय की मृत्यु के समय अमोघवर्ष प्रथम नाबालिग था, इसलिए गोविन्द तृतीय ने उसके लिए विश्वासपात्र छोटे भाई के पुत्र कर्क सुवर्णवर्ष को उसका संरक्षक नियुक्त कर दिया था। ऐसी भी सम्भावना है कि उसकी सहायता के लिए कोई संरक्षक समिति भी बनायी गयी हो।[3]

कभी – कभी सामन्त और मंत्री यह निर्धारित करते थे कि किसे शासन सौंपा जाए, जैसा कि 780 ई0 में गोविन्द द्वितीय तथा 936 ई0 में अमोघवर्ष तृतीय के समय हुआ था।[4] इस काल में संतानविहीन होने पर राजपरिवार में अन्य व्यक्ति को राजपद दिये जाने का उल्लेख है। दन्तिदुर्ग

---

[1] दृष्टव्य कपूर, एस.एन., प्राचीन भारतीय राजतंत्र, पृ0 – 98.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0–260.

[3] दृष्टव्य विशुद्धानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ0 – 99–100.

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0–151.

निःसन्तान मरा था, अतः उसके बाद उसके चाचा कृष्ण प्रथम ने राज्यभार संभाला था। यदि राजा के पुत्र न हो या उस समय वह अल्पायुवस्था में हो तथा आपातकाल स्थिति में हो तो कभी – कभी छोटे भाई को युवराज बनाया जाता था। उदाहरणतः पलसे कदम्ब दानपत्र[1] में शासक राजा के छोटे भाई मानूवर्मन को युवराज के रूप में वर्णित किया गया है।

राष्ट्रकूट काल में युवराजों को *'पंचमहाशब्दसामंत'* की उपाधि प्राप्त थी और युवराज पद के सम्मान स्वरूप एक कण्ठिका (माला) पहनायी जाती थी। जैसा कि गोविन्द तृतीय के पिता के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जब वह उत्तराधिकारी बनाया गया तो वह कण्ठिका के साथ था।[2]

इस काल के अन्तर्गत युवराज लोग प्रायः सर्वदा ही राजधानी में रहा करते थे, ताकि उनके उत्तराधिकार को कोई प्रतिस्पर्धी चुनौती न दे सके तथा वे राज्यकार्यों का पूरी तरह अनुभव स्वयं राजगद्दी पर बैठने के पूर्व ही प्राप्त कर लें। वे राज्य की लड़ाईयों में सेना का नेतृत्व कर अपनी सैनिक क्षमता को बढ़ाते थे और अन्तरराज्यीय राजनीति का अनुभव प्रांप्त करते थे। 770 ई0 में वेंगी के चालुक्यों के विरूद्ध किये गये अभियान का संचालन युवराज गोविन्द

---

[1] इण्डि0ऐण्टी0, 6, पृ0 – 28.

[2] एपि0इण्डि0, 4, पृ0 – 242.

द्वितीय ने किया था।[1] वस्तुतः राष्ट्रकूटों में अनुज राजकुमारों तथा चचेरे भाइयों को प्रान्तीय गवर्नर बनाया जाता था। ध्रुव अपने बड़े भाई गोविन्द द्वितीय के विरूद्ध विद्रोह से पूर्व 779 ई0 में धूलिया का गर्वनर था।[2] ध्रुव का चचेरा भाई शंकरगण 793 ई0 में बरार का गर्वनर था। गुजरात शाखा के इन्दराज ने अपने छोटे पुत्र गोविन्द को प्रान्तीय गर्वनर नियुक्त किया था।[3] ज्येष्ठ पुत्र को प्रान्तीय गर्वनर बनाने का एक मात्र प्रमाण 'स्तम्भ' का मिलता है, परन्तु उनका क्षेत्र गंगवाड़ी का नया अधिग्रहण किया हुआ भाग था।[4] उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट राजवंश में युवराज की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि साधारणतया चालुक्य और राष्ट्रकूट वंशों में राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राजगद्दी का उत्तराधिकारी होता था। कभी - कभी इस सिद्धान्त का उल्लंघन भी हो जाया करता था।

राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था के अन्तर्गत इस काल के राजाओं का शासन प्रबन्ध पूर्ववर्ती भारतीय राजवंशों की

---

[1] अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 - 260.

[2] अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0 - 153.

[3] एपि0इण्डि0, 3, पृ0 - 53 (तोरखेड अभिलेख)

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0-153.

परम्परा पर आधारित था अतः राष्ट्रकूट राजाओं ने भी शासन संचालन हेतु अनेक मंत्रियों और अधिकारियों की नियुक्ति की थी। मंत्रियों को बहुत ही प्रभावशाली और महत्वपूर्ण माना जाता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शासकगण सम्भवतः मंत्रियों के परामर्श से शासन करते थे। प्राचीन इतिहास में उल्लेख मिलते हैं कि कुछ शासकों ने तो मंत्रियों के साथ बुद्धि और योग्यता से शासन किया तो दूसरी तरफ ऐसे भी राजाओं का उल्लेख मिलता है कि जो अपने योग्य मंत्रियों के हाथों की कठपुतली थे। शासन में तीन प्रकार की व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है – राजायत तंत्र, सचिवायत तंत्र और उभायत तंत्र। राजायत तंत्र में राजा शक्तिशाली होता था और शासन की समस्त शक्तियां उसी में केन्द्रित थी। सचिवायत तंत्र में मंत्रि ज्यादा शक्तिशाली होते थे और उभायत तंत्र में शासन की शक्तियां राजा और मंत्रियों में बराबर से विभाजित रहती थी। वैसे तो राष्ट्रकूट शासन प्रणाली मंत्रिपरिषद् महत्वपूर्ण संस्था थी, मंत्री को राजा का दक्षिण बाहु कहा जाता था।[1] परन्तु कभी – कभी ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि शासक मंत्रियों के हाथों के खिलौना मात्र थे। गोविन्द द्वितीय और गोविन्द चतुर्थ ऐसे ही नाममात्र के शासक थे।[2] मंत्रियों के गुणों तथा विशेषताओं एवं उनके चुनाव के विषय में अभिलेखों से आमतौर पर प्रकाश नहीं

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग–4, पृ0 – 60.

[2] अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ0 – 162.

पड़ता। कृष्ण तृतीय का सलोवगी अभिलेख बताता है कि मंत्रियों से यह आशा की जाती है कि वो योग्य तथा राजनीति के अच्छे ज्ञाता हों।[1] शासन का संचालन योग्य मंत्रियों पर ही निर्भर रहता था। सेनापति केन्द्रीय प्रशासन का उच्च अधिकारी था। एक अभिलेख में उसे *महाप्रचण्डदण्डनायक* कहा गया है। राष्ट्रकूट साम्राज्य की विशालता और उनके द्वारा सतत् युद्धों में लगे होने के कारण यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सेनापतियों की संख्यायें कई होती होंगी। उन्हें उनकी भूमिकाओं के आधार पर *दण्डनायक* अथवा *महादण्डनायक* की उपाधियां प्राप्त थीं और वे मुख्य – मुख्य सामान्तों की तरह समधिगतपंचमहाशब्द से सम्पन्न होते थे। राष्ट्रकूट अभिलेखों में मंत्रियों की संख्या तथा उसके संबंद्ध कार्यों के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है।

राष्ट्रकूट शासन में *सर्वदर्शी* को प्रधानमंत्री के रूप में बताया गया है, जो मंत्रिमण्डल के सभी मंत्रियों में प्रमुख था। उत्कीर्ण लेखों में भी अनेक प्रधानमंत्रियों के नाम मिलते हैं। छठी सदी के एक कंदम्बवंश के लेख में 'सर्वस्य अनुष्ठाता' उपाधि से सम्बोधित 'जियंत' को सम्पूर्ण प्रशासन का प्रमुख कहा गया है।[2] अपने उच्च पद के लिए प्रधानमंत्री

---

[1] एपि0इण्डि0, 4, पृ0 – 60. 'परगो राजविधानां कविमुख्यः प्रियंवद।'

[2] इण्डि0ऐण्टी0, 4, पृ0 – 24.

अक्सर महासामन्त तथा पंचमाशब्द की उपाधि लेते थे।[1] कभी – कभी जब राजा अस्थायी रूप से राजधानी में अनुपस्थित होता था या किसी कारणवश कार्य करने में असमर्थ होता था, तो प्रधानमंत्री ही सम्पूर्ण प्रशासन चलाता था।

महासंधिविग्रहिक जिसे राष्ट्रकूट अभिलेखों में विदेशमंत्री के रूप में पाते हैं, इसका उल्लेख बार – बार तथा कई स्थानों पर हुआ है। राष्ट्रकूट साम्राज्य की विशालता के कारण उसमें कई सांविधविग्रहिकों की नियुक्तियां हुई थीं। जिन सबके ऊपर एक महासांधिविग्रहिक की नियुक्ति होती थी। ये महासांधिविग्रहिक अलग – अलग विजित प्रांतों अथवा सामन्ती प्रदेशों की अन्तरराज्यीय नीतियों और निर्णयों के लिए उत्तरदायी होते थे। शिलाहार अभिलेखों में दो महासांधिविग्रहिकों के उल्लेख हैं। अलतेकर महोदय का मत है कि राष्ट्रकूट साम्राज्य में कम से कम आधा दर्जन विदेश मंत्री होंगे, जिनकी अलग – अलग उपाधियां होती थीं। ये गौड महासांधिविग्रहिक, पल्लवमहासंधिविग्रहिक जैसे पदों पर विद्यमान रहे होंगे।[2] विदेशी मंत्री का पद बहुत ही महत्वपूर्ण था। सर्वविदित है कि राज्य की सम्पन्नता उसकी योग्यता और बुद्धिमत्ता पर निर्भर थी। अतः उन्हें 'पंचमहाशब्द' की उपाधि प्राप्त थी। ध्रुव का डल्ल नामक महासांधिविग्रहिक पिता

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ० – 165.

[2] अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ० – 167.

– पुत्र क्रम से उस पद विद्यमान था।[1] राजा और महासांधिविग्रहिक के बीच अत्याधिक पारस्परिक विश्वास होता था, इसी कारण महासांधिविग्रहिक को राजा का दाहिना हाथ कहा गया है।[2]

राष्ट्रकूट अभिलेखों के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल में महत्वपूर्ण पद प्रधान न्यायाधीश का था, जिसे *धर्माधिकारिन* कहा गया है। अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र से यह ज्ञात होता है कि वही ताम्रपत्रों के लेखों को तैयार करता था।[3] सम्भवतः राष्ट्रकूट मंत्रिमण्डल में कई विदेश मंत्री की भांति कई सैन्य मंत्री भी होते थे, क्योंकि राज्य बड़ा था और अक्सर पड़ोसी राज्यों के साथ युद्ध होता रहता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सेनापतियों का महत्व बहुत ऊँचा था। गोविन्द चतुर्थ के कलस अभिलेख से पता चलता[4] है कि ये महलों में निवास करते थे, हाथियों पर चलते थे, चमकीले वस्त्र धारण करते थे, नौकर चाकरों से सुसज्जित होते थे और विशेष प्रकार के छत्र धारण करते थे। उन्हें वेतन के रूप में बड़े – बड़े भूखण्ड या गाँव प्राप्त होते थे, जिनसे राज्य

---

[1] इण्डि0ऐण्टी0, 12, पृ0–95., एपि0 इण्डि0, 9, पृ0 – 195.

[2] एपि0इण्डि0, 18, पंक्ति 76–77, पृ0–251–

"लिखित चैत धःर्माधिकरणसेनभोगिकेन वालभकायस्थवंशजातेन।"

[3] श्रीमद्मोघ नर्षवकमलानुजीविना गुणधवलेन वत्सराजसूजुना।

[4] एपि0इण्डि0, 13, पृ0 – 334

को प्राप्त होने वाली सेना, आय, राजस्व या बेगार उनकी हो जाती थी।

पुरोहित जो प्रारम्भ से ही मंत्रिमण्डल का एक महत्वपूर्ण सदस्य होता था, जिसके अधीन राज्य के तथा राज परिवार के सभी धार्मिक कृत्य संपादित होते थे। राष्ट्रकूट अभिलेखों में भी पुरोहित को *धर्मांकुश* कहा गया है।[1] इस काल में पुरोहित नैतिकता तथा धर्म का उच्चाधिकारी होता था।

राष्ट्रकूट अभिलेखों के अन्तर्गत राजस्व मंत्री तथा अमात्य का वर्णन मिलता था। उसके ही अधीन राजस्व, भूस्वामित्व और कृषि से संबंधित सभी कागज पत्र रखे जाते थे। समसामयिक राजवंशों के अभिलेखों में उसे '*महाक्षपटलिक*' अथवा '*शासनाधिकारिन*' कहा गया है। जगवेकमल्ल के मिराज दानपत्र[2] से पता चलता है कि इस अधिकारी के नीचे बड़ी संख्या में क्लर्क होते थे।

कौटिल्य जिस कर संग्राहक को समाहर्ता कहता है, शुक्र ने उसे सुमंत्र कहा, मंत्रिमण्डल का एक अन्य प्रमुख

---

[1] इण्डि0ऐण्टी0, 18, पृ0 – 230.

[2] वही, 8, पृ0 – 11.

सदस्य माना जाता था।[1] राष्ट्रकूट अभिलेख में हम इस मंत्री का उल्लेख नहीं पाते हैं, परन्तु शिलाहार अभिलेख में इसका उल्लेख '*भण्डागारिक*' के नाम से मिलता है। शायद इस काल में मंत्रियों तथा उनके कार्यों का वर्णन करने की परम्परा कम थी। इस समय तक सामन्तवादी व्यवस्था के फलस्वरूप सम्पूर्ण प्रशासन में सामन्तों का दखल बढ़ गया था लेकिन इतना होते हुए भी एक सलाहकारी संस्था के रूप में मंत्रियों का अस्तित्व विद्यमान रहा। विशेष परिस्थितियों में यह मंत्री शक्तिशाली सामन्तों के साथ मिलकर राजा के चुनाव में हस्तक्षेप भी करते थे। करहद अभिलेख[2] से सूचना मिलती है कि राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ (923 - 934 ई0) ने अयोग्यता एवं दुर्व्यसनों आदि के कारण अपनी प्रजा, सामन्तों एवं मंत्रियों की स्वामिभक्ति खो दी थी जिसके फलस्वरूप मंत्रियों एवं सामन्तों ने उसे अपदस्थ करके उसके चाचा अमोघवर्ष तृतीय को राजा बनाया था। इससे यह स्पष्ट

---

[1] अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 - 121.

[2] एपि0इण्डि0, 4, पृ0-278.

राजयंदधेमदनसोख्य विलासकन्दोगोविन्दराजइति विश्रतनामधेयः।
सोप्यंगनानयनपाश निरूद्ध-बुद्धिसन्मार्ग संग विमुखीकृत-सर्व सत्वाः।।

....

सामन्तथ्थ रट्ट राज्य महिलालम्बार्थ भभ्यर्थितो।।

होता है कि मंत्रिपरिषद् जहां शासन सम्बन्धी कार्यों में राजा का सहयोग प्रदान करती थी, वहीं वह इस बात का भी परीक्षण करती थी कि राजा शासकीय कार्यों का संचालन किस तरह से कर रहा है। वह यदि शासक में अयोग्यता के चिन्ह् पाती थी तो उसे हटा कर किसी अन्य योग्य व्यक्ति को सिंहासनासीन करा सकती थी।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्यों और राष्ट्रकूटों का केन्द्रीय शासन अत्याधिक सुव्यवस्थित था। राज्य में राजा का स्थान सर्वोच्च होता था, जिसमें राज्य की सभी शक्तियां निहित थीं। राज्य के शासन प्रबन्ध में विभिन्न अधिकारी व कर्मचारी राजा को सहयोग प्रदान करते थे। राजा केन्द्रीय शासन का प्रधान होने के कारण व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का सर्वोच्च अधिकारी होता था। शासन को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु वह योग्य मंत्रियों और अधिकारियों की नियुक्ति करता था। अधिकारियों व कर्मचारियों के अतिरिक्त शासन प्रबन्ध में राजपरिवार के सदस्य भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, जिन्हें राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जाता था। सामान्यतः राजा का जयेष्ठ पुत्र ही (युवराज) उत्तराधिकारी होता था व अन्य राजकुमार प्रान्तीय शासक नियुक्त किये जाते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों की केन्द्रीय शासन व्यवस्था एकतंत्रात्मक थी। कभी – कभी ज्येष्ठता के सिद्धांत का उल्लंघन भी हो जाया करता

था। ज्येष्ठता का स्थान योग्यता ले लेती थी। हालांकि इसको लेकर कभी – कभी संघर्ष भी हो जाया करते थे। राष्ट्रकूट शासन के अन्तर्गत इस प्रकार के अनेक संघर्ष हुए थे यथा गोविन्द और स्तम्भ, अमोघवर्ष प्रथम और शंकरगण इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं। विभागों का जितना उल्लेख चालुक्यों के समय मिलता है, इतना राष्ट्रकूटों के समय नहीं। मंत्रिपरिषद् अवश्य ही दोनों राज्यों में अनिवार्य संस्था समझी जाती थी। इस युग के ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है। सोमदेव सूरि ने अपने ग्रन्थ *नीतिवाक्यामृत* में कहा है कि 'राजाओं को अपने समस्त कार्यों का प्रारम्भ सुयोग्य मंत्रियों की मंत्रणा से करना चाहिए।[1] उसने पुनः कहा है कि विजिगीषु राजा को प्राप्त राज्य की प्राप्ति और सुरक्षा आदि के लिए अत्यन्त बुद्धिमान् और राजनीति के प्रकांड विद्वान तथा अनुभवी मंत्रियों के साथ बैठकर मंत्र का विचार करना चाहिए।[2] इससे यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि राजा प्रशासन और विदेशनीति जैसे महत्वपूर्ण मामलों में अपनी मंत्रिपरिषद् से अनिवार्य रूप से परामर्श करता था। मंत्रिपरिषद् के परामर्श से कार्य न करने वाले राजाओं को चेतावनी देते हुए वह कहता है कि 'जो राजा मंत्रियों के परामर्श की अवहेलना करता है, उनकी बात नहीं सुनता और न ही उनकी बात पर आचरण ही करता है, वह राजा नहीं

---

[1] नीति०, 10.22.

[2] वही, 10.23.

रह सकता, अर्थात् उसका राज्य नष्ट हो जाता है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि उस समय मंत्रियों के परामर्श को काफी महत्व दिया जाता था और प्रत्येक कार्य और नीति निर्धारण में मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेना अत्यन्त आवश्यक था। *मानसोल्लास* में भी यह व्यवस्था दी गई है कि राजा अपने राज्य में 6 से 7 मंत्रियों की नियुक्ति करे। अकेले मंत्री को नियंत्रित करना कठिन कार्य है, दो मत्रियों से भी राज्य को खतरा रहेगा और उनमें आपस में संघर्ष की स्थिति रहेगी। दोनों अपने - अपने बर्चस्व को स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। इसीलिए सोमेश्वर का मानना थ कि राजा स्वयं कोई निर्णय न ले और न ही राज्य सम्बधी मामलों में अधिक मंत्रियों से परामर्श करे।[2] स्पष्ट है कि राजनीतिक मामलों में भले ही अधिक मंत्रियों से परामर्श पर प्रतिबन्ध लगाया गया हो, परन्तु मंत्रियों की उपयोगिता को अवश्य स्वीकार किया गया है। रानियां भी कभी - कभी प्रशासनिक व्यवस्था में भाग लेती थीं। अमोघवर्ष की पुत्री चन्द्रबेलभा इसका उदाहरण बतायी जा सकती है जो रायपुर द्वाब का शासन संभाल रही थी। इसी तरह के उदाहरण चालुक्य वंश में भी मिलते हैं। दोनों ही राजवंश बड़े थे और दोनों ही वंशों के शासकों ने शासन को एक सूत्र में बांधते हुए अपने कर्त्तव्यों द्वारा उसका संचालन करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

[1] नीति0, 10.58.

[2] मानसोल्लास, 2.9.700.

कीर्तिवर्मन द्वितीय के केंदूर के ताम्र पत्र से ज्ञात होता है कि रक्तपुर के स्कंधावार में वह राजा के साथ थी। इससे भी स्पष्ट है कि रानियां किसी न किसी रूप में राजा को शासन कार्य में सहायता प्रदान करती थीं। दोनों ही राजवंश काफी विशाल थे, अतः रानियों की प्रशासनिक भूमिका अपना विशेष महत्व रखती थी।

अध्याय - ३

प्रशासनिक इकाइयां

प्रशासनिक इकाईयाँ

प्राचीन इतिहास के अन्तर्गत हमारे युग के अधिकांश राज्य छोटे – छोटे थे, परन्तु कुछविस्तृत साम्राज्य भी थे, इसके अन्तर्गत गुर्जर, प्रतिहार, राष्ट्रकूट, चोल, पाल, पल्लव के साम्राज्य थे। इस युग में यातायात के दूतगामी साधनों अभाव में राजधानी से ही सम्पूर्ण राज्य का शासन सम्भव न था, अतएव शासन की सुविधा के लिए राज्य को वर्तमान व्यवस्था की भाँति, छोटे – छोटे प्रशासकीय भागों में विभाजित किया जाता था। यद्यपि प्रादेशिक विभागों के वही नाम हमको प्रायः सभी अभिलेखों में मिलते हैं, परन्तु देश के विभिन्न भागों में वे शब्द यदा – कदा भिन्न अर्थो में भी प्रयुक्त हुए हैं।

चालुक्य काल में विभिन्न प्रशासकीय इकाईयां राष्ट्र, विषय, नाडु आदि कही जाती थी। तत्कालीन अभिलेखों से प्रशासनिक इकाईयों में राष्ट्र, विषय, नाडु शब्द मिलते हैं।[1] कभी – कभी देश, मण्डल जैसे शब्दों का भी उल्लेख आया है किन्तु इन इकाइयों के आकार की सीमा निश्चित नहीं थी। वातापी के चालुक्यों के दान जिस सीधे – सादे ढंग से अभिलेखों में घोषित हुए हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि साम्राज्य के प्रशासन में केन्द्राभिमुखता का सर्वथा अभाव था।

---

[1] बाम्बे कर्ना0, 1932–3 का 43.

इस विषय में विष्णुवर्धन का सतारा दानपत्र उल्लेखनीय है, जिसमें सभी विषपतियों, सामान्तों, ग्राम - भोगिकों, महत्तरों और पड़ोस के व्यक्तियों को दान के विषय में सूचित किया गया है जिससे प्रशासनिक इकाई का ज्ञान होता है। प्राप्त इकाइयों का विवरण इस प्रकार है :-

➢ **मण्डल (प्रान्त) :-**

चालुक्य काल में साम्राज्य का विभाजन 'मण्डलों' में था। मण्डल का अर्थ (क्षेत्र का) घेरा होता है। इसका उल्लेख अभिलेखों में यदा - कदा मिलता है। विनयादित्य के ताम्रपत्रों के समकालीन किग्ग (कडूर जिला) के एक अभिलेख में 'कदम्ब मण्डल' का उल्लेख मिलता है।[1] जिसका क्षेत्र वही था जो 'वनवासी मण्डल' का था।[2] इस समय वनवासी मण्डल पर राजादित्यरस राज्य कर रहा था।[3] 610 - 11 ई0 के गोवा के दानलेख में रेवतीद्वीप के चार मण्डलों और विषयों का उल्लेख अया है। पूर्वी चालुक्य राजा विनयादित्य (694 ई0) के समय के हरिहर दान - लेख में एक मण्डल का विशेष रूप से उल्लेख है। इस लेख में बनवासी मण्डल के एडवोलल भाग का जिक

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग-6, पृ0 - 43.

[2] वही, भाग-9, पृ0 - 16.

[3] इण्डि0ऐण्टी0, भाग-6, पृ0 - 93.

है। दूसरे शब्दों में इस काल तथा क्षेत्र में 'विषय' 'मण्डल' का एक भाग है।

चालुक्य काल के अभिलेखों में कतिपय राष्ट्रों का उल्लेख आया है जो कि प्रान्त के रूप में विद्यमान था। प्रधान शासक राष्ट्रपति अथवा राष्ट्रकूट कहलाता था।[1] इसके अधीन नागरिक एवं सैनिक दोनों प्रबन्ध थे। उसका कर्तव्य अपने राष्ट्र में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना होता था। दुर्भाग्य से इस काल के किसी भी राष्ट्रपति का नामोल्लेख नहीं मिलता। अपरान्त, कोंकण, लाट, तीन महाराष्ट्र आदि राष्ट्र के नाम से ज्ञात थे। पुलकेशिन द्वितीय ने तीन महाराष्ट्रों को विजित किया था जिसमें 99000 गाँव थे।[2] इसी राजा के कोपरम पत्रों में कर्मराष्ट्र नामक प्रदेश का भी उल्लेख आया है।[3]

➢ मण्डल का शासन :-

चालुक्य साम्राज्य में कुछ प्रान्तों का प्रबन्ध सामन्त शासक तथा कुछ का राजा सीधे केन्द्र द्वारा करता था। प्रायः इन प्रान्तों में राजपरिवार के सदस्यगण नियुक्त किए जाते थे। पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भतीजे

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग-24, पृ0 - 40.

[2] ऐहोल अभिलेख, श्लोक 25.

[3] एपि0इण्डि0, भाग-28, पृ0 -259.

विष्णुवर्धन को वेंगी प्रान्त का शासक नियुक्त किया था[1] तथा अपने पुत्रों को राज्य के विभिन्न प्रान्तों पर नियुक्त कर रखा था। विक्रमादित्य ने अपने छोटे भाई जयसिंह को लाट का शासक नियुक्त किया था।[2]

➢ विषय :-

चालुक्य युग में प्रायः विषय ही सबसे महत्वपूर्ण प्रशासनिक इकाई थी। प्रत्येक राष्ट्र या प्रान्त को विषयों में विभक्त किया गया था जिसके मुख्याधिकारी को 'विषयपति' कहा जाता था। डॉ० अलतेकर ने इसे आधुनिक जिले के बराबर माना है।[3] कभी - कभी छोटे विषय या आहार को बड़े विषयों में परिवर्तित कर दिया जाता था। युवराज श्रयाश्रय शीलादित्य (7वीं शती का उत्तरार्ध) के नौसारी ताम्रपत्रों में हमें 'वाहिरिका' विषयान्तर्गत 'कन्हवलाहार' विषय का उल्लेख मिलता है।[4] इसमें कन्हवलाहार विषय 'वाहिरिका' विषय के अन्तर्गत था। यद्यपि चालुक्य साम्राज्य में स्थित विषयों की संख्या निश्चित नहीं हो पाती तथापि विषयों का उल्लेख इस प्रकार है :-

---

[1] वही, भाग-9, पृ० - 317.

[2] कां०इं०इं०, 4, पृ० - 137.

[3] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., राष्ट्रकूटाज ऐण्ड देयर टाइम्स, पृ०-137.

[4] का०इं०इं०, 4-1, पृ० - 124.

इस काल के दकन और आसपास के विषयों में कर्मनीय[1], कासाकुल[2], नासिक[3], पलयत्थान[4], तालितट[5], चोलिक[6] करहाटक[7] कोंकण[8] एडबोलल[9], पगलति, कण्व[10] कन्हवाहार[11], वाहिरिका[12], वेलवोल[13], पेडेकुल[14], पूणक[15], पलकी[16], रेरुव[17], पागुनार[18],

---

[1] वही, पृ0 - 133.

[2] वही, पृ0 - 172.

[3] वही, पृ0 - 131.

[4] एपि0इण्डि0, 19, पृ 0- 64.

[5] वही, 10, पृ0 - 17

[6] वही, पृ0 - 105

[7] वही, 26, पृ0 - 325

[8] दृष्टव्य याजदानी, जी0, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 - 49.

[9] वही, पृ0 - 50.

[10] इण्डि ऐण्टी0, भाग-6, पृ0 - 77.

[11] कां0इं0इं0, 4-1, पृ0 - 125.

[12] वही

[13] एपि0 इण्डि0, भाग-9, पृ0 - 206.

[14] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, राष्ट्रकूटाज ऐण्ड देयर टाइम्स,पृ0-136.

[15] इण्डि0ऐण्टी0, 8, पृ0 - 86.

[16] एपि0इण्डि0, भाग-9, पृ0 - 318.

[17] वही, भाग-29, पृ0 - 160.

[18] वही, 23, पृ0 - 17.

चिप्ररुलन[1], वगनूंर[2], त्रिकूटक[3], पल्लूदम्ब[4], अवरेतिका[5] के अतिरिक्त मृगथणिकाहार, वटनगर, नलवाडि अन्तर्मण्डल गोपराष्ट्र आदि अनेक विषयों का उल्लेख मिलता है। इन विषयों की प्रायः पहचान विद्वानों द्वारा वर्तमान में की जा चुकी है। इन विषयों के उल्लेख से यह निष्कर्ष स्वतः निकलता है कि तत्कालीन युग में यह एक महत्वपूर्ण इकाई थी और इसका शासक आधुनिक जिलाधीश की भांति कार्य करते हुए केन्द्रीय प्रशासन का सहायक होता था।

➢ भुक्ति (तहसील) :-

भुक्ति नामक इकाई का प्रयोग दक्कन में उत्तर भारत की अपेक्षा बहुत कम मिलता है। जहां इसका प्रयोग हुआ है वहां भी यह किसी बड़े प्रान्त के अर्थ में न होकर एक छोटी इकाई के रूप में है। सम्भवतः यह इकाई आज के तालुक या तहसील के बराबर रही होगी अर्थात् विषय अनेक भुक्तियों में बटां था।[6] भुक्ति का प्रयोग मुख्य रूप

---

[1] वही, 27, पृ० - 130.

[2] वही, 30, पृ० - 69.

[3] का०इं०इं०, 4-1, पृ० - 151.

[4] वही

[5] एपि०इण्डि०, भाग-3, पृ० - 59.

[6] दृष्टव्य अलतेकर ए०एस०, राष्ट्रकूटाज, पृ० - 138.

से राष्ट्रकूट अभिलेखों में मिलता है। जिनका सम्पर्क गंगा की घाटी से था। चालुक्य अभिलेखों में 'नाडु' शब्द का अभाव है किन्तु तत्कालीन अन्य राजवंशों के अभिलेखों में इसका उल्लेख मिलता है। 'वंगीनाडु' विषय सम्भवतः वेंगीमण्डल का अंग था।

➢ **नगर :-**

चालुक्य साम्राज्य के प्रमुख नगरों में वातापी, ऐहोल, पट्टदकल, बनवासी तथा लक्ष्मेश्वर थे। नगर के प्रशासन में व्यावसायिक श्रेणियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। विक्रमादित्य द्वितीय के लक्ष्मेश्वर अभिलेख में इस नगर के महाजनों, 18 प्रकृतियों तथा नागरिकों द्वारा प्रदत्त वार्षिक करों का विवरण मिलता है। पट्टन नगरों के भी उल्लेख मिलते हैं। यह वे नगर होते थे जो समुद्री बन्दरगाह होते थे। नगरों की संस्था के प्रधान को *नगरसेट्टि* तथा पट्टन के प्रधान को *पट्टनस्वामी* कहा जाता था। दान देते समय नगरों के सभी अधिकारियों (*दण्डनायक, सेट्टि, गाडण्ड* आदि) का उपस्थित होना आवश्यक होता था। यह सब दान के साक्षी माने जाते थे। इनसे नगरों की सभाओं के भी प्रमाण मिलते हैं। इन सभाओं की संख्यायें आवश्यकता के अनुरूप अलग - अलग होती थी। उनको जमींन खरीदने, उसे बेचने,

मुकदमें सुनने तथा दूसरों पर मुकदमा करने का पूरा अधिकार था।

➢ ग्राम :–

ग्राम राज्य की सबसे छोटी परन्तु एक महत्वपूर्ण इकाई होती थी। अभिलेखों एवं ऐतिहासिक साहित्य में अनेक ग्रामों का उल्लेख है। पूर्ववर्ती कालों में भी ग्राम सबसे छोटी इकाई के रूप में विद्यमान थी। प्राचीन काल की भांति चालुक्य काल में भी ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में था। चालुक्य अभिलेखों से हमें अनेक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है। ग्राम शासन इन्हीं अधिकारियों द्वारा सम्पन्न होता था। ग्रामुण्ड (गामुण्ड) ग्राम का प्रमुख अधिकारी होता था जो गाँव की जनता तथा राजा की सरकार के बीच कड़ी का काम करता था। सम्भवतः इसे 'ग्राम भोगिक' भी कहा जाता था, यद्यपि अभिलेखों में इनके विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। कीर्तिवर्मन द्वितीय के शासन काल में दो ग्रामुण्ड अधिकारियों द्वारा एक जिनालय बनवाया गया था।[1] आडूर के प्रस्तरलेख में एक ग्रामुण्ड का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार जेबुलगेरि के एक ग्रामुण्ड कलियम्मा का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है।[2]

---

[1] सा०इ०इ०, भाग–11, सं० – 5.

[2] कर्ना०इंसि, सं० – 8.

चालुक्य काल में ग्राम अधिकारी के अन्तर्गत चाट-भट नाम अधिकारियों का उल्लेख आया है, लेकिन इनके विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती है। इनके लिए अग्रहार ग्रामों में प्रवेश की निषधाज्ञाओं को पता चलता है। सम्भवतः ये समय - समय पर राज्य में स्थित समस्त ग्रामों का दौरान करने वाले अधिकारी थे एवं साम्राज्य की आर्थिक - सामाजिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करते थे। इनके फलस्वरूप वे प्रजा के साथ अपनी सुख सुविधाओं के लिए मनमाना व्यवहार करते थे, जिससे इनका अग्रहार ग्रामों में निषिद्ध था। आडूर अभिलेख[1] से गाँव के एक दूसरे अधिकारी 'करणों' (गाँव के लेखपालों) का उल्लेख मिलता है। इन्होंने लेखक को माधवति अरसि के ग्रामुण्ड के साथ - साथ प्रार्थना की थी। सम्भवतः इस काल के लेखक को 'करणो' कहा जाता था। 'करण' सम्भवतः कायस्थ का पर्यायमात्र है।[2] क्योंकि धर्मशास्त्रों में 'करण' को भी संकर जातियों में रखा गया है। अन्य नामों में करणों को कीलहर्न के अनुसार प्रलेखों (करण) का लेखक माना गया है। यह सम्भवतः सरकारी पदवी थी, कोई जाति नहीं थी।

---

[1] कर्ना०इंसि०,सं० - 8.

[2] इण्डि०ऐण्टी०, 17, पृ० - 13.

विक्रमादित्य के लक्ष्मेश्वर अभिलेख[1] में राजपुरूष नामक राजकीय अधिकारी का उल्लेख आया है। अभिलेख से ये प्रमाणित होता है कि वह ग्राम की विभिन्न श्रेणियों तथा संस्थानों को उनके कार्यों की तरफ ले जाता था और उनके निश्चित अधिकारों की रक्षा करता था। गुजराज के सामन्त शासक श्रयाश्रय शीलादित्य के एक अभिलेख में वासवक (वासपक) नाम के अधिकारी का उल्लेख आया है।[2] मिराशी के मतानुसार सम्भवतः यह एक ऐसा अधिकारी था जिसका कर्तव्य ग्राम दौरा करने वाले राजकीय अधिकारियों की आवास व्यवस्था करना था।[3] तत्कालीन अभिलेखों में आयुक्त - विनियुक्त का उल्लेख ग्राम अधिकारियों के साथ आया है लेकिन इन के विषय में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। मिराशी ने इन्हें गौड़ अधिकारियों की कोटि में रखा है।[4] सम्भवतः यह कल्चुरि - कालीन 'गामागमिक' नामक अधिकारी था, जिसे पारपत्र अधिकारी माना गया है।[5] स्पष्ट है कि चालुक्य काल में ग्राम के अनेक अधिकारी होते थे जो ग्राम शासन को सुचारू रूप से संचालित करते थे।

---

[1] एपि0इण्डि0, भाग-14, पृ0 - 189.

[2] एपि0इण्डि0, भाग - 12, पृ0 - 202.

[3] का0इं0इं0, 4-1, पृ0 - 173.

[4] वही, पृ0 - 141.

[5] का0इं0इं0, 4-1, पृ0 - 116.

चालुक्य साम्राजय एक विस्तृत भू-भाग पर फैला हुआ था। अतः स्थानीय प्रभाव के कारण ग्राम सभाओं में कुछ परिवर्तन मिलता है, इस काल में तीन प्रकार की ग्राम सभायें थीं। इन ग्राम सभाओं का विस्तृत उल्लेख ए. एस. अलतेकर[1] ने किया हैं इनमें पहली तमिल, दूसरी कर्नाटक, तीसरी महाराष्ट्र, एवं दक्षिण गुजरात थी। तमिल ग्राम सभाओं के सदस्यों को 'पेक्मक्कल' कहा जाता था और दूसरों को 'महाजन' तथा तीसरे को 'महत्तर' के नाम से जाना जाता था। अन्तिम दो प्रकारों में कोई विशेष अन्तर नहीं था।

तमिल देश की ग्राम सभाओं में चुनाव पद्धति का विधान मिलता है।[2] कर्नाटक में ग्राम सभा का संविधान तमिल देश से भिन्न था। तत्कालीन अभिलेखों में कर्नाटक में चुनाव पद्धति का कोई उल्लेख हमें नहीं मिलता है, यद्यपि इन संस्थाओं के कार्यों एवं शक्तियों का अनेक बार उल्लेख मिलता है।[3] चालुक्य कालीन अभिलेखों

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., *पूर्वोक्त,* पृ0 - 197.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., *पूर्वोक्त,* पृ0 - 197.

[3] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., *पूर्वोक्त,* पृ0 - 201.

से ज्ञात होता है कि कर्नाटक में तमिल देश से अधिक प्रजातंत्र विद्यमान था।[1]

महाराष्ट्र तथा दक्षिण गुजरात में ग्राम सभाओं को संचालित करने वाले सदस्यों को 'महत्तर' नाम से पुकारा जाता था। महत्तर नामक अधिकारी तमिल के पेरूमक्कल एवं कर्नाटक के 'महाजन' के समान था।[2] महाराष्ट्र तथा दक्षिण गुजरात से प्राप्त कतिपय अभिलेखों में इन महत्तरों के कार्य एवं शक्तियों के विषय में उल्लेख मिलते हैं। 'महत्तर' नामक अधिकारी महाजनों की ही भाँति ग्राम – परिवारों के मुखिया हुआ करते थे, जिसकी प्रमाणिकता सलुकिक बुद्धवर्ष (670 ई0) के संजन पत्रों से सिद्ध हो जाती है। जिसमें 'कुलमहत्तराधिकारिन' अर्थात् ग्रामकूट के बाद ग्राम परिवार के मुखियों के अधिकारी थे, का उल्लेख आया है।[3] इसके आधार पर अल्तेकर ने इसे ऐसी ग्राम परिषद् बतलाया है, जो गांव के मुखिया (ग्रामकूट) की सहायता करती थी।[4] मिराशी महोदय ने महत्तर शब्द का अर्थ 'ग्रामवृद्धगणों' से लगाया है।[5] इस

---

[1] वही.

[2] वही, पृ0 – 204.

[3] एपि0इण्डि0, 14, पृ0 – 150

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., *पूर्वोक्त*, पृ0 – 205.

[5] का.इं.इं., 5, पृ0 – 37.

प्रकार यह स्पष्ट होता है कि महाराष्ट्र तथा गुजरात के महत्तरों की स्थिति कर्नाटक के महाजनों के समान ही थी। गुजरात और महाराष्ट्र के महत्तरों की संख्या के विषय में अभिलेखों से कोई जानकारी नहीं मिलती, जबकि तमिल एवं कर्नाटक में इनकी संख्याओं का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

तमिल देशों की अपेक्षा महाराष्ट्र, गुजरात तथा कर्नाटक की ग्राम सभाओं की शक्ति तथा कार्य प्रायः समान थे।[1] यहां ग्राम परिषद् की शक्ति तथा कार्यों का अभिप्राय महाजनों एवं महत्तरों की शक्ति तथा कार्यों से है। यद्यपि तत्कालीन अभिलेखों में ग्राम परिषद् के कार्यों एवं शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, तथापि यह ग्राम परिषद् सरकार के प्रायः सभी कार्य करती थी, जैसा कि अन्य कालों में इसका उल्लेख आया है। गांव का प्रशासन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का संचालन इन्हीं ग्राम महत्तरों (महाजनों) द्वारा ही सम्पन्न होता है। विजयादित्य के एक अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि वेन्नयूर का शासन यह महाजनगण ही करते थे।[2] एक दूसरे स्थान पर एक मन्दिर को एक श्वेत दान देने के

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., *पूर्वोक्त*, पृ० - 207.

[2] बाम्बे०कर्ना० (1933-4), पृ० - 16.

पहले इनकी अनुमति लेने का उल्लेख आया है।[1] जिले एवं प्रान्तों के मुख्यालय में भी इस प्रकार की जन प्रतिनिधि संस्थायें होती थी, जिनके कार्य प्रायः वे ही थे जो आधुनिक ग्राम महत्तरों के होते हैं, किन्तु इस संबंध में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। तत्कालीन ये ग्राम व नगर सभायें अक्षय निधियों को भी ग्रहण करती थी। ये उपसमितियां गांव के मुखिया (महत्तर) से निकट सम्पर्क रखती और उसके अधीन कार्य करती थी।[2]

युवराज विक्रमादित्य के लक्ष्मेश्वर स्तम्भ लेख[3] में राजा की सरकार एवं ग्राम संस्थाओं के विषय में विस्तृत उल्लेख आया है, किन्तु दुर्भाग्य से यह अभिलेख काफी क्षतिग्रस्त हो चुका है, जिससे सभी बातें स्पष्ट नहीं हो पाती है। इस अभिलेख में युवराज द्वारा महाजनों, नगर और पोरिगेरे की 18 प्रकृतियों के नाम 'आचार्य – व्यवस्था' (अधिकारों एवं कर्तव्यों) के विषय में उल्लेख किया गया है। किन्तु इन प्रकृतियों का तात्पर्य क्या था, स्पष्ट नहीं हो पाता। इन संस्थाओं को जनता के कल्याण के विभिन्न कार्यों के लिए इन्हें राजस्व का एक हिस्सा भी मिलता था। दीवानी के मुकदमों का फैसला भी इन ग्राम

---

[1] सा0इं0इं0, 1, सं0 – 48. "महाजनःप्रजासम्मतः कोदृदुः।"

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., *पूर्वोक्त*, पृ0 – 200-1.

[3] एपि0इण्डि0, भाग-14, पृ0 – 188-89.

सभाओं द्वारा सम्पन्न होता था, जिन्हें सरकार मान्यता देती थी।[1]

स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत नगर सभाओं को भी विशेषाधिकार प्राप्त थे। चालुक्य नरेश विक्रमादित्य प्रथम के एक सामन्त ने जो नासिक प्रदेश में शासन करता था, कुछ त्यक्त भू – भाग को पुनः बसाया और फिर उसे अपना एक आदेश जारी कर समगिरि की 'नगर सभा' को सौंप दिया, उस आदेश के अन्तर्गत विशेषाधिकार[2] दिये गये कि 'समगिरि' में रहने वाले व्यापारी सदेव के लिए राज्य भर में चुंगी कर देने से मुक्त रहेंगे। पुरूष उत्तराधिकारी के न होने पर भी उनकी सम्पत्ति राज्य द्वारा नहीं ली जायेगी। उन्हें राजकीय अधिकारियों के लिए निवास अथवा सुविधाओं की व्यवस्था नहीं करनी पड़ेगी। नगर सभा को जुर्माना वसूल करने का भी अधिकार दिया गया। यथा – किसी कुमारी का शील भंग करने पर 108 रूपये, व्याभिचार करने पर 32 रूपये, कान काटने पर 16 रूपये, सिर को घायल करने पर 4 रूपये आदि। किसी व्यापारी का लड़का, किसी मजदूरनी से अनैतिक संबंध रखते हुए पाया जाय तो उस पर 108 रूपये, यदि कोई वस्तुतः व्याभिचार करते हुए

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 – 200-11.

[2] एपि0इण्डि0, भाग-25, पृ0 – 2367-8.

पकड़ा जाय तो उसके लिए नगर सभा के आठ अथवा सोलह वरिष्ठजन जो निर्णय दे वहीं अन्तिम माना जायेगा।

चालुक्यों की ही भांति राष्ट्रकूटों के समय भी प्रशासनिक इकाइयों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :-

➢ **राष्ट्र (प्रान्त)** :-

राष्ट्रकूट साम्राज्य अनेक प्रान्तों अर्थात् राष्ट्रों में बंटा था। ये राष्ट्र आजकल के सूबों के बराबर न होकर आधुनिक कमिश्नरियों के बराबर होते थे, जिनमें आजकल के पांच - छह जिलों के बराबर वाले क्षेत्र हुआ करते थे। राष्ट्रकूट साम्राज्य में कुल कितने राष्ट्र थे, यह तो ज्ञात नहीं है, किन्तु अनुमानतः उनकी संख्या बड़ी ही (18 - 20) से कम नहीं रही होगी।[1] इनके प्रधानों को राष्ट्रपति कहा जाता था, जिनकी पृष्ठभूमि सैनिक होने के कारण दण्डनायक और महादण्डनायक की उपाधियां भी उन्हें प्राप्त थी। चूंकि उनमें कई राष्ट्रपति ऐसे भी होते थे, जो या तो हारे हुए या आदिसत्ता स्वीकार करनेवाले राजे - रजवाड़े होते थे। अतः पूर्वतः शासक रहे राजाओं के वंशज होते थे। अतः उन्हें महासामन्त अथवा महामण्डलेश्वर भी कहा जाता था। राष्ट्रपति पद पर या तो

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए०एस०, *पूर्वोक्त*, पृ० - 173.

राजकुमार या नजदीकी राजपरिवारी व्यक्ति अथवा हारे हुए राजागण और सामन्त तथा सैनिकता में अगुआ लोग ही नियुक्त किये जाते थे। अमोघवर्ष प्रथम ने अपने विद्रोहियों को दबाने में युद्ध कौशल दिखाने वाले अपने सेनापित बंकेय को बनवासी का राष्ट्रपति नियुक्त किया था। ध्रुव के अधीन बनवासी पर शासन करने वाला गर्वनर था मारक्करस। मारक्करस शब्द कन्नड़ भाषा का है और रस शब्द राजा का ही कन्नड़ रूप है। इससे प्रतीत होता है कि इन गर्वनरों को कभी - कभी राजा भी कहा जाता था। गोविन्द तृतीय का एक गर्वनर राजादित्य राजपरमेश्वर कहलाता था।[1] ऐसा निष्कर्ष निकाला गया है कि यह कोई आनुवंशिक महासामन्त था।

इन प्रान्तीय गर्वनरों के अपने दरबार ओर ताम - झाम होते थे और उनके पास खूब अधिकार भी होते थे, जो कि आवश्यकता होने पर वे केन्द्रीय सत्ता के युद्धों में भाग भी लेते थे, उनके पास भी अपनी सेनायें होती थीं। ये सेनायें भीतरी शान्ति बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी संभालती थी। अमोघवर्ष प्रथम के कोन्नूर अभिलेख[2] से ज्ञात होता है कि बनवासी के गर्वनर को एक ओर गंग शासक से युद्ध करना पड़ा तो दूसरी ओर राजधानी की

---

[1] एपि०कर्ना०, भाग-8, सोरान तालुका, सं० 40 और 22.

[2] एपि०इण्डि०, भाग-6, पृ० - 29.

ओर दौड़कर अमोघवर्ष के विरूद्ध होने वाले विद्रोह को भी दबाना पड़ा। उसने पल्लवों के विरूद्ध युद्ध में भी भाग लिया। गर्वनरों के अधीन वाली यह सेनायें भी राजकीय सेवा – भूमि की आय प्राप्त कर मौल (पितापुत्र के कम से) रखी जाती थी। इस प्रकार प्रान्तीय गर्वनरों को काफी अधिकार थे और वे राजा के हित में भी कार्य करते थे।

प्रान्तीय गर्वनर सम्भवतः प्रान्तीय प्रशासन के राजस्व विभाग के प्रधान भी होते थे। यह इस व्यवस्था से प्रमाणित होता है कि दानपत्रों के प्रकाशन के समय उन्हें भी यह सूचना दी जाती थी कि वे दानग्रहीता को दी गयी भूमि से संबद्ध उसके अधिकारों में हस्तक्षेप न करें। किन्तु वे अपने क्षेत्र के किसी भू – खण्ड का स्वयं अपनी इच्छा से दान नहीं कर सकते थे। वैसा करने हेतु उन्हें केन्द्रीय सत्ता राजा या सम्राट की आज्ञा लेनी होती थी। उस समय के दक्षिणापथवासी तथा याज्ञवल्लक्यस्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर भी अपनी मिताक्षरा नामक टीका में कहते हैं कि भूमिदान केवल राजा द्वारा ही किया जा सकता है, उसके किसी अधिकारी द्वारा नहीं।[1] राष्ट्रपति को सलाह और सहायता देने हेतु राष्ट्रमहत्तर लोगों की एक समिति

[1] इण्डि०ऐण्टी०, भाग–12, पृ० – 125.

भी होती थी।[1] इस प्रकार प्रान्तीय गर्वनर राजस्व सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन भी करते थे।

➤ विषय (जिला) :-

राष्ट्रकूट काल में एक राष्ट्र कई विषयों में विभाजित था। राष्ट्रकूट लेखों में पुणक 1000 तथा करहाटक 4000 का उल्लेख विषय के रूप में हुआ है। नासिक, कर्णपुरी (बीजापुर जिले के अन्तर्गत) तथा महिषा को भी इसी शब्द द्वारा वर्णित किया गया है। इसलिये यह स्पष्ट है कि विषय वर्तमान समय के जिले के समान थे। जिसमें आमतौर पर 2000 गाँव तथा पुरवे थे।[2] विषय का प्रधान विषयपति कहा जाता था। विषयपति छोटे पैमाने पर राष्ट्रपति के एक प्रतिरूप थे। छोटे तहसील या तालुक अधिकारियों को भी असंतोष बढ़ने पर सैन्य बल द्वारा उसका दमन करना पड़ता था। इससे स्पष्ट है कि सभी अधिकारियों जैसे जिला, उपसम्भाग तथा तालुल्लक अधिकारियों को अपने नीचे कुछ सैन्य बल रखना पड़ता था। कुछ विषयपति प्रान्तीय गर्वनरों की भांति सामन्तीय उपाधियां रखते थे। जैसा कि 1019 ई0 में कुन्तल विषय

---

[1] द्रष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 – 176.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 – 136–137.

का गर्वनर 'कुन्दरभराज' पंचमहाशब्द में वर्णित एक महामण्डलेश्वर था।[1]

विषयपति के अधीन महत्वपूर्ण राजस्व शक्तियां थीं। इसीलिए इनका ताम्रपत्रों में अक्सर उल्लेख हुआ है। इन्हें जिले के राजस्व के लिए गर्वनर या केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होना आवश्यक था। इन्हें लगान वसूली संबंधी महत्वपूर्ण अधिकार मिले थे। गुप्त प्रशासन में विषयपति के अधिकार क्षेत्र में स्थित बेकार भूमि को केन्द्रीय सरकार की ओर से बेचने का अधिकार था। राष्ट्रकूटों ने इस प्रकार की शक्ति प्रदान की थी इसकी जानकारी नहीं मिलती। विषयपति की सहायता के लिए विषयमहत्तर होते थे। इनके पारिश्रमिक के रूप में इन्हें कर से मुक्त भूमि दे दी जाती थी। राष्ट्रकूट लेखों में विषयपतियों को दान में दी गई भूमि में हस्तक्षेप न करने के लिए चेतावनी दी गयी है।

➢ भुक्ति: (तहसील) :–

जिला तथा विषय उपसम्भागों में विभक्त थे, जिन्हें भुक्ति (तहसील) नाम से जाना जाता था। इसके

---

[1] इण्डि०ऐण्टी०, 5, पृ० – 17.

अन्तर्गत 100 से 500 तक गांव तथा पुरवे शामिल थे।[1] दन्तिदुर्ग के समनगद लेख में कोप्पारक पंचशत भुक्ति (तहसील) तथा अमोघवर्ष प्रथम के कोन्नूर अभिलेख में मजन्तियशप्तति ग्राम भुक्ति (तहसील) का उल्लेख है।[2] गोविन्द तृतीय का पैठन दानपत्र दर्शाता है कि प्रतिष्ठान भुक्ति में 12 - 12 गांवों के अनेक समूह थे। यह आधुनिक काल के तालुका या तहसील के समान थे।

इसके अधिकारी को भोगिक अथवा भोगपति कहा जाता था। साधारणतयः ये अधिकारी सामंतीय दर्जा प्राप्त नहीं थे। उदाहरण के लिए 'देवण्य्य' जो कि बेलवोल 300 का प्रशासक था और अमोघवर्ष प्रथम का पंसदीदा था, सिर्फ एक साधारण मनुष्य था। हम कभी - कभी इन अधिकारियों के सामंतीय उपाधियाँ भी पाते हैं।[3] लेकिन यह एक अपवादरूप में तथा कम दिखता है। ये अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा सीधे नियुक्त किये जाते थे। उन्हें राष्ट्रपतियों एवं विषयपतियों के समान अपने सीमित क्षेत्र में अधिकार प्राप्त थे। भुक्ति (तहसील) पुनः छोटे - छोटे वृहत्तर खण्डों में विभाजित थे जिसके अन्तर्गत 10 से 30

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 - 137. कुछ विद्वानों के अन्तर्गत 50 से लेकर 70 गांव होते थे। दृष्टव्य मिश्र, श्याम मनोहर, *पूर्वोक्त*, पृ0 - 223.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, एस0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 - 137.

[3] इण्डि0ऐण्टी0, भाग - 12, पृ0 - 225.

गांव होते थे। इसके अधिकारियों की नियुक्ति प्रान्तीय अथवा जिलाधिकारियों द्वारा की जाती थी।

➢ नगर :-

राष्ट्रकूट शासन के अन्तर्गत नगर का प्रशासक *नगरपति* अथवा *पुरपति* कहलाता था। कुछ महत्वपूर्ण नगरपतियों की स्थिति सामन्त शासकों के समान होती थी। अमोघवर्ष प्रथम के शासनकाल में सोरट्र नगर के शासक को *महासामन्त* कहा गया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि नगर का प्रशासन कमेटियों द्वारा चलाया जाता था, परन्तु कमेटियों की संख्या ज्ञात नहीं है। प्रशासन की अन्य इकाइयों की तरह नगर – शासन में भी नगर – महत्तरों की व्यवस्था रही होगी।[1]

➢ ग्राम: –

राष्ट्रकूट काल में भी ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। राष्ट्रकूट काल में ग्राम के मुखिया को महाराष्ट्र में 'ग्रामकूट' तथा कर्नाटक में 'गाउण्ड' कहा जाता था।[2] कहीं – कहीं ग्रामकूट को ग्रामपति भी कहा

---

[1] मिश्र, श्याम मनोहर, *पूर्वोक्त*, पृ० – 223.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए०एस०, दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ० – 189.

गया है।[1] शिलाहार अभिलेखों[2] में इसे ग्रामभोजक कहा गया है। 974 ई0 में कर्नाटक में कड्केरी गांव में ग्राम प्रमुख के अतिरिक्त ग्राम के एक गवर्नर का उल्लेख है, जिसे युद्ध भूमि के नायक के रूप में वर्णित किया गया है।[3] ग्रामकूट के कार्यों में सर्वप्रथम था पूरे गांव की रक्षा करना तथा शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखना। इन कार्यों के लिए सम्भवतः ग्रामीणों के अपने बल (लड़ाके) हुआ करते थे जो बाहरी विपदाओं – चोर, डाकू, पशुचोर, कृषि को लूटने वाले तथा पास – पड़ोस के प्रतिस्पर्धी गांवों से समवेतरूप में मुकाबला करते थे। इन मुकाबलों में मर जाने वाले लड़ाकों की स्मृति में गांवों के बाहर चौरे, ब्रह्म, वीर जैसे अन्य स्मृतिस्थल सतम्भ लगाये जाते थे तथा वीरगाथाओं (वीरगल) के निर्माण होते[4] थे।

प्राचीन काल से ही ग्राम प्रशासन मुखिया (ग्राम प्रमुख) द्वारा चलाया जाता था। राष्ट्रकूट काल में भी मुखिया अत्यधिक महत्वपूर्ण था। मुखिया के अधीन एक सेना की टुकड़ी होती थी। वह सेना का प्रमुख होता था तथा स्वयं एक अच्छा योद्धा होता था।[5] सेना की सहायता

---

[1] वही, पृ0 – 189.

[2] एपि0इण्डि0, 3, पृ0 – 273.

[3] इण्डि0ऐण्टी0, 12, पृ0 – 271.

[4] एपि0कर्नाटका, भाग–8, सं0–445 (सोराब तालुका)

[5] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 – 192.

से वह ग्राम में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करता था तथा चोर डाकुओं का दमन करता था। 975 ई0 में सोरब नं0 - 445 से सूचना मिलती है कि जब कोल्लन पर डाकुओं ने आक्रमण किया तो गाकुण्डक के बसेकूल के पुत्र ने युद्ध करते हुए अपनी ख्याति स्थापित की तथा स्वर्ग को प्राप्त हुआ।[1] इसी स्थान से प्राप्त हुए एक दूसरे अभिलेख नं0 - 359 से जानकारी मिलती है कि नालगाकुण्ड के आपसी संघर्ष में मुखिया (ग्राम प्रमुख) की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी।

राष्ट्रकूट काल में भूमि तथा ग्राम अनुदानों में ग्राम प्रमुख के विभिन्न उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि वह राजस्व प्रशासन से संबंधित था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्व का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से प्रमुख के कंधों पर होता था तथा गांव के व्यक्तिगत झगड़ों को निपटाने के उद्देश्य से बुलाई गई ग्राम सभा की बैठक में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। ग्राम प्रमुख गांव का न्यायाधीश भी था। इसके पास छोटे अपराधिक मामलों का निर्णय करने की शक्ति थी।[2]

---

[1] एपि0 कर्नाटका, भाग-8, सं0 - 445 (सोरान तालुका).

[2] एपि0इण्डि0, 11, पृ0 - 224.

ग्राम प्रमुख का मुख्य कार्य भूमिकर एकत्रित करके राजकोष में जमा करना था। प्रमुख का पद अनुवांशिक था अपनी सेवाओं के बदले उसे 'करमुक्त' भूमिखण्ड दिए जाते थे। उनकी करमुक्त भूमि का प्रचलन आज भी महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में प्रचलित है।[1] मराठा काल में भी करमुक्त भूमि तथा विशेषाधिकार के हस्तान्तरण की शक्ति प्रमुखों को प्राप्त थी।[2] प्रमुख उन करों का लाभ भी उठाते थे जो ग्रामवासी अनाज पर राजा को अदा करते थे। कलचुरी अभिलेख[3] में प्रमुख की इस आय को मौलिक अर्हण उत्तराधिकारियों की अतिरिक्त प्राप्ति के रूप में वर्णित किया गया है।

ग्राम प्रशासन को चलाने हेतु ग्राम प्रमुख की सहायता में जैसे रक्षकदल और ग्रामबल होते थे, वैसे ही राजस्व सम्बन्धी हिसाब - किताब रखने वाला सम्भवतः एक लिपिक अथवा करणिक भी होता था। शुक्रनीति[4] में उसे लेखक कहा गया है। किन्तु राष्ट्रकूट अभिलेखों में इसका कोई उल्लेख नहीं होता। तथापि वहां ग्राम प्रमुख की सहायता में लगे युक्त, आयुक्त, नियुक्त ग्राम महत्तर

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए०एस०, विलेज कम्युनिटिस इन वेस्टर्न इण्डिया, पृ० - 7-8.

[2] सेन, एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ् द मराठा, पृ० - 185.

[3] इण्डि०ऐण्टी०, 4, पृ० - 276

[4] शुक्रनीति, 11, पृ० - 348.

के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[1] यह सम्भवतः लेखक के समान ही रहे होंगे और लिखने – पढ़ने तथा कागज पत्रों के रख – रखाव सम्बन्धी सभी कार्य इन्हीं लोगों के रहे होंगे।

राष्ट्रकूट काल में तीन प्रकार की ग्राम परिषदों के प्रमाण मिलते हैं तमिल प्रकार, कर्नाटक प्रकार तथा महाराष्ट्र और गुजरात प्रकार[2] जो कि क्षेत्रीय विभाजन पर आधारित थी। कृष्ण तृतीय के काल में केवल लगभग 20–25 वर्षों में तमिल देश के सभी जिलों को राष्ट्रकूट राज्य में मिला लिया गया जहां पर तमिल प्रकार की ग्राम परिषद होती थीं।[3] सम्भवतः यह राष्ट्रकूट प्रशासन के साथ मजबूती से कार्य करती थी।

ग्रामकूट की सहायता के लिये ग्राममहत्तरों की एक समिति होती थी, जिसकी समता तमिल क्षेत्रों की ग्राम सभाओं अथवा उपसभाओं से की जा सकती है। किन्तु जहां तमिल ग्रामसभाओं के निर्माण उनके संविधान तथा निर्वाचन, उनकी कार्य समितियों और विशेष कार्यों में लगी हुई उपसमितियों की निर्वाचन प्रतियां, उनके

[1] इण्डि० ऐण्टी०, भाग–11, पृ०–112, राधनपुर अभिलेख, भाग–4, पृ०–242.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए०एस०, *पूर्वोक्त*, पृ० – 197.

[3] वही, पृ० – 197.

कार्यविशेष तथा उनकी बैठकों आदि के बारे में परांतक चोड, राजराज चोड अथवा कुलोत्तुंग के समय के अभिलेखों से बहुत ही अधिक जानकारियां प्राप्त होती हैं, वैसी कोई भी जानकारी कर्नाटक अथवा महाराष्ट्र के अभिलेख से राष्ट्रकूट महत्तरों और उनकी समितियों के बारे में नहीं प्राप्त होती हैं किन्तु कृष्ण तृतीय ने उत्तरी और दक्षिणी आर्काट जिलों को जीतकर उन चोड क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिला लिया और तोण्डमण्डलम के अनेक क्षेत्रों में अपने अभिलेख खुदवाये तो वहां से उसके समय के प्राप्त कुछ अभिलेख इन ग्रामसभाओं का उल्लेख[1] करते हैं। इन अभिलेखों से इन ग्रामसभाओं के वार्षिक चुनाव और उनकी विभिन्न उपसमितियों के उनके कार्यों सहित जानकारी प्राप्त होती है। इन उपसमितियों में मन्दिर, उपसमिति, न्यास उपसमिति, कृषि उपसमिति, रजस्व उपसमिति और लोक कल्याण कार्य उपसमिति के उल्लेख आये हैं।[2] चित्तूर जिले से प्राप्त गुडिमल्ल बाण शिलालेख *ए* तथा *बी* उस गांव में एक ग्रामीण निगम के अस्तित्व को प्रमाणित करता हैं।[3]

---

[1] शिवचूलमंगलम् अभिलेख, साउथ इण्डियन इन्सकृप्शन्स, भाग–3, पृ0–12, शोलपुरम अभिलेख, एपि0इण्डि0, भाग–7, पृ0 – 197.

[2] एपि0इण्डि0, भाग–9, पृ0 – 224 और आगे.

[3] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0 – 199.

कर्नाटक के क्षेत्रों में प्राप्त अभिलेख ग्राम महत्तरों के विभिन्न प्रकार के कार्यों का उल्लेख करते हुए भी कहीं भी यह नहीं बताते कि उनकी नियुक्ति किसके द्वारा होती थी। कर्नाटक में ग्राम परिषद् के सदस्यों को 'महाजन' कहा जाता था[1] और वे एक – एक परिवार के मुखिया के रूप में ग्राम सभा में अपने – अपने परिवारों का प्रतिनिधित्व करते थे। गोविन्द चतुर्थ का कलश अभिलेख[2] इस उद्देश्य से बहुत महत्वपूर्ण है। अभिलेख सर्वप्रथम कडियार के अग्रहार गांव के 200 गृहस्वामियों की उपलब्धि तथा योग्यता का उल्लेख करता है। अभिलेख में बाद में इन 200 ब्राह्मण गृहस्वामियों को महाजन के रूप में वर्णित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि गांव के सभी परिवारों का प्रतिनिधित्व इन महाजनों (परिवारों के मुखिया लोगों) के माध्यम से ही ग्राम महत्तरों की सभा (ग्रामसभा) में होता था।[3]

इन अग्रहार तथा ब्रह्मदेय ग्रामों में ग्राम सभा के सदस्य केवल ब्राह्मण होते थे किन्तु उनके अतिरिक्त अन्य वर्णों के लोगों द्वारा अवस्थित ग्रामों की सभाओं में ब्राह्मणों सहित सभी जातियों के लोग सदस्य के रूप में

---

[1] वही, पृ0 – 199.

[2] एपि0इण्डि0, पृ0 – 327 और आगे.

[3] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 – 199.

होते थे। इनमें भी महाजन लोग या तो मुखिया के रूप में सदस्य होते थे, जैसा कि कई अभिलेखों से ज्ञात होता है। परिवारों के सभी बालिग लोग सदस्य होते थे।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट काल में 'महाजन' के अन्तर्गत सभी परिवारों के मुखिया तथा शायद सभी व्यस्क व्यक्ति आते थे, जो अपने - अपने कर्तव्यों का बंटवारा कर लेते रहे होंगे, जिनके इक्का - दुक्का प्रमाण अभिलेखों से प्राप्त होते हैं।[2] कर्नाटक और महाराष्ट्र की ग्राम सभाओं की सभी लोक कल्याणकारी कार्यों की देखरेख करती थी, वे पाठशालाओं और सत्रों का संगठन और प्रबन्ध करती थी और मंदिरों की सम्पत्तियों का प्रबन्ध देखती थीं। 961 ई० सोरटूर अभिलेख[3] एक स्थानीय मंदिर के लिए निश्चित कर देने का उल्लेख करता है। लेकिन यह वर्णन नहीं है कि करारोपण है या मंदिर समिति। गांव में स्थित तालाबों की मरम्मत और उनके रख - रखाव भी उनके कार्यक्षेत्रों में सम्मिलित थे। व्यक्तिगत लोगों से प्राप्त धन संबंधी न्यास और जमा तथा धरोहर से वे दाताओं द्वारा इच्छित ढंग से ग्राम संबंधी सुविधाओं हेतु उनका विनियोग करती थीं। इससे

[1] वही, पृ० - 201-202.

[2] वही, पृ० - 206.

[3] इण्डि०ऐण्ट०, भाग-12, पृ० - 257.

यह निष्कर्ष निकलता है कि महाजनों के ग्रामीण बैंक होते रहे होंगे, जहां न्यास वाले ये धन जमा किये जाते थे और उनके सूद का ही दाता की इच्छानुसार उपयोग किया जाता था। ऐसे दान पत्थरों पर अंकित कराये जाते थे। ग्राम महाजन चन्दा और लागों द्वारा स्वयं प्रदत्त धन इकट्ठा करके ग्राम कार्यों में लगाते थे। ग्राम कार्यों के लिए केन्द्रीय राजस्व के ग्रामीण भाग में से कुछ अंश ग्राम सभाओं के पास भी छोड़ दिया जाता था। राजस्व के दो भाग किये जाते थे - पहला मेला - वारम् जो केन्द्रीय भाग था और दूसरा चूडि - वारम् था जो ग्राम कार्यों के लिए छोड़ दिया जाता था।[1] अलतेकर के अनुसार[2] ग्राम कार्यों हेतु छोड़ा गया यह भाग कुल स्थानीय राजस्व का 15 प्रतिशत होता था। कृष्ण तृतीय का सलोतगी अभिलेख[3] एक स्थानीय कालेज उसके छात्रावास, अध्यापकों का विस्तृत वर्णन करता है। इसके रख - रखाव के लिए निवासी अनुदान देने के लिए तैयार थे, लेकिन इनमें कहीं भी महाजनों की कार्यकारिणी समिति का उल्लेख नहीं है जो कालेज तथा फण्ड का प्रबन्ध देखे। इसी प्रकार धारवाड़ जिले में देवी होसुर से प्राप्त 962 ई० के

[1] एपि०इण्डि०, भाग-13, पृ० - 35.

[2] विलेज कम्यूनिटीज इन वेस्टर्न इण्डिया, पृ० - 68-71.

[3] एपि०इण्डि०, 4, पृ० - 60.

अभिलेख[1] तथा आलूर से प्राप्त 1091 ई0 तथा 1124 ई0 के दो अभिलेख तथा अमोघवर्ष प्रथम के समय में मंत्रवाड़ी से प्राप्त 865 ई0 का अभिलेख[2] इसी प्रकार के वर्णन करते हैं। इससे स्पष्ट है कि कर्नाटक ग्राम सभा उपसमिति या महाजनों की कार्यकारिणी समिति का अस्तित्व नहीं था। फिर भी हम उन्हें बैंक तथा मंदिर तालाब तथा स्कूल प्रबनधक के कार्यों को सम्पादित करते पाते हैं। इस प्रकार की असंगत स्थिति की व्याख्या इस कल्पना के आधार पर ही कर सकते हैं कि महाजनों ने इन कार्यों को करने की कोई अनौपचारिक व्यवस्था की होगी। लेकिन अभिलेखीय आधार पर बहुत सम्भव है कि गांव के सभी महाजनों का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था।

राष्ट्रकूट ग्रामसभाओं के विस्तृत न्यायिक अधिकार भी थे। इन ग्राम – न्यायालयों का उल्लेख अरब सौदागर सुलेमान[3] करता है। किन्तु जहां तक फौजदारी के मुकदमों का सवाल है, ग्राम न्यायालयों के अधिकार सीमित ही प्रतीत होते हैं। किन्तु दीवानी मामलों में उनके अधिकार बहुत ही विस्तृत थे। धन, ब्याज, जमा, न्याय आदि के संबंध में ये बड़े मुकदमों का फैसला कर सकती

---

[1] वही, 16, पृ0 – 60.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, *पूर्वोक्त*, पृ0 – 203

[3] सुलेमान, इलियट एंड डाउसन, भाग–1, पृ0 – 81.

थीं। यदि उनके फैसलों से कोई पक्ष संतुष्ट न हो तभी उनकी अपील राजा द्वारा नियत अगली अदालतों में की जाती थी।[1] इन ग्राम सभाओं की बैठके छायादार वृक्षों, मंदिरमण्डपों और सामुदायिक लाभ हेतु बने भवनों में होती थी। बहुत से गांवों जैसे कडियुर में उनका अपना हाल था।[2]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट साम्राज्यों की प्रशासनिक इकाइयों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर विभिन्न प्रकार की समानताएं एवं विषमताएं देखने को मिलती हैं।

स्पष्ट है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट सम्राट् कई भागों में विभाजित थे। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट साम्राज्य प्रान्तों, जिलों, तहसीलों तथा ग्रामों में विभक्त किया गया था। चालुक्य कालीन लेखों में मण्डल विषय, नाडु, कम्पन और थान (स्थान) शब्दों का प्रयोग हुआ है तथा ग्राम सबसे छोटी इकाई होती थी, जबकि राष्ट्रकूट अभिलेखों में

---

[1] स्मृतियों में कथित है – ग्रामे दृष्टः पुरे याति, पुरे दृष्टस्तु राजनि।
राज्ञा दृष्टो कुदृष्टो वा नास्ति पौनर्भवो विधिः।।
अर्थात् ग्राम न्यायालयों द्वारा देखा गया मुकदमा नगरीय अदालतों में अपील हेतु जाता है, और नगरीय अदालतों की अपील राजा की अदालत में होती है। उसके बाद कोई अपील नहीं होती।

[2] एपि०इण्डि०, 13, पृ० – 327.

राष्ट्र (प्रान्त), विषय (जिला) व भुक्ति (तहसील) शब्दों का उल्लेख हुआ है। इस काल में भी ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई के रूप में था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट साम्राज्यों की प्रशासनिक इकाइयों के नामों में भिन्नता दिखाई देती है परन्तु इन राजवंशों की प्रशासनिक इकाईयों के मूल स्वरूप लगभग समान ही दिखाई देते हैं।

चालुक्य काल में साम्राज्य का विभाजन 'मण्डलों' में था तथा इसका प्रधान 'मण्डलेश्वर' कहलाता था। इस काल तथा क्षेत्र में 'विषय' 'मण्डल' का एक भाग होता था। इस काल के अभिलेखों में कतिपय राष्ट्रों का उल्लेख आया है। राष्ट्र का प्रधान राष्ट्रपति अथवा राष्ट्रकूट कहलाता था। इसके अधीन नागरिक एवं सैनिक दोनों प्रबन्ध होते थे, जबकि राष्ट्रकूट साम्राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था, जिसे 'राष्ट्र' कहा जाता था, जिसका प्रधान 'राष्ट्रपति' कहलाता था। चालुक्यकालीन मण्डल तथा राष्ट्रकूटकालीन राष्ट्र का मूल स्वरूप लगभग समान ही दिखाई देता हैं ऐसा लगता है कि मण्डल आकार में राष्ट्र से बड़ा होता था।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों में अगली प्रशासनिक इकाई प्रायः 'विषय' ही थी। विषय की तुलना वर्तमान समय के जिले से की जाती है, जिसके प्रधान को 'विषयपति' कहा जाता था। चालुक्यकालीन

अभिलेखों में अनेक विषयों का उल्लेख मिलता हैं जबकि राष्ट्रकूट काल में केवल नासिक, कर्णपुरी तथा महिषा का उल्लेख मिलता है।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही कालों में विषय भुक्तियों में विभक्त था। भुक्तियों का प्रयोग जितना राष्ट्रकूटकालीन अभिलेखों में हुआ है, उतना चालुक्य काल में नहीं हुआ। यह इकाई आज के तहसील के बराबर होती थी। भुक्ति के अधिकारी को भोगिक अथवा भोगपति कहते थे, जो भुक्ति का प्रशासन चलाते थे। दोनों ही राजवंश छोटे – छोटे वृहत्तर खण्डों में विभाजित थे, जिनमें अधिकारी भी होते थे। इनकी नियुक्ति प्रान्तीय अथवा जिलाधिकारियों के द्वारा की जाती थी। कर्नाटक में यह अधिकारी 'नाडगाकुण्ड' तथा महाराष्ट्र में 'देशग्रामकूट' कहलाते थे।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही साम्राज्यों में सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। चालुक्य काल में ग्राम का प्रमुख अधिकारी ग्रामुण्ड था तथा राष्ट्रकूट काल में ग्राम प्रशासन ग्राम प्रधान द्वारा संचालित होता था। राष्ट्रकूटकालीन ग्राम प्रमुख पैतृक अधिकारी होता था। कभी – कभी इस पद पर सैन्य अधिकारियों को भी नियुक्त किया जाता था तथा कुछ गांवों को ब्राह्मणों को दान में दिए जाने के भी प्रमाण मिलते हैं जो बाद में उस गांव

के पैतृक अधिकारी बन गये, लेकिन चालुक्य काल के गांवों मे हमें इस प्रकार के पैतृक ग्राम प्रमुखों के उल्लेख नहीं मिलते हैं। चालुक्य काल में महाजन ब्राह्मण होते थे, जिसको विस्तृत अधिकार प्राप्त थे।

चालुक्य काल में ग्राम की सुरक्षा का दायित्व ग्रामसभा द्वारा होता था। जबकि राष्ट्रकूट में दक्कन के प्रत्येक गांव की अपनी सेना होती थी जो कि ग्राम प्रमुख के अधीन रहती थी। चालुक्य काल में राजस्व तथा न्याय की व्यवस्था तथा कार्यों को ग्राम सभा द्वारा संचालित किया जाता था, जबकि राष्ट्रकूट काल में ग्राम प्रमुख ही राजस्व तथा न्यायिक कार्यों का प्रधान होता था।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों के काल में हमे कई प्रकार की ग्राम सभायें मिलती हैं जो कि क्षेत्रीय विभाजन पर आधारित थीं। उदाहरण तमिल प्रकार, कर्नाटक प्रकार तथा महाराष्ट्र प्रकार एवं गुजरात प्रकार।

स्पष्ट है कि दोनों कालों की ग्राम सभाएं एक दूसरे के समान ही थी। चालुक्य काल में चुनाव पद्धति विद्यमान थी, लेकिन इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता जबकि राष्ट्रकूट काल में ग्राम सभाओं का चुनाव अनौपचारिक ढंग से किये जाने के प्रमाण मिलते हैं।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों राजवंशों में सड़क, मन्दिर, पाठशाला आदि के प्रबन्ध हेतु उपसमितियां गठित की जाती थीं। राष्ट्रकूट अभिलेखों से ज्ञात होता है कि नगरों के प्रबन्धन हेतु भी ऐसी सभायें होती थी। चालुक्य काल में भी ऐसी सभाओं के प्रमाण मिलते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट साम्राज्य दक्षिण भारत के विशाल राज्यों में से एक थे, जिनका प्रशासन एक स्थान से सम्भव नहीं था। अतः प्रशासनिक उद्देश्य से चालुक्य तथा राष्ट्रकूट साम्राज्य कई भागों में विभाजित थे। ग्राम शासन की सबसे छोटी परन्तु महत्वपूर्ण इकाई थी जिसके अन्तर्गत दोनों राजवंशों में ग्राम के अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। ग्राम शासन उन्हीं अधिकारियों द्वारा सम्पन्न होता था। चालुक्य काल में 'ग्रामुण्ड' प्रमुख अधिकारी था तथा इसके अतिरिक्त अनेक अन्य और अधिकारियों का वर्णन भी इस काल के अभिलेखों से मिलता है। राष्ट्रकूट काल में कुछ ग्रामों में संयुक्त अधिकारी भी देखने को मिलते हैं। स्पष्ट है कि दोनों राजवंशों की प्रशासनिक इकाईयों का मूल स्वरूप लगभग समान था।

अध्याय - ४

राजस्व व्यवस्था

राजस्व व्यवस्था

राज्य विशेष रूप से कोष पर अवलम्बित माना गया है। किसी भी राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी आर्थिक व्यवस्था की सुदृढ़ता पर ही निर्भर होती है। इसलिए राज्य के योगक्षेम के लिए कोष वृद्धि की ओर राजा को सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिए। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने राज्य के सात अंगों में कोष को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कौटिल्य ने राज्य संचालन हेतु कोष की आवश्यकता एवं उपयोगिता सर्वोपरि बतलायी है।[1] उन्होंने इसीलिए राज्य के समस्त क्रियाचक्र की नाभि कोष को ही माना।[2] कोष राज्यरूपी वृक्ष की जड़ माना गया है।[3] जिस देश का कोष जितना समृद्ध होगा वह देश उतना ही शक्तिशाली होगा।

महाभारत में भी कोष के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ से सूचना मिलती है कि राजा को कोष की सुरक्षा का पूरा प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि राजा स्वयं राज्य की उन्नति के लिए कोष पर निर्भर है।[4] कौटिल्य के

[1] कौ० अर्थ०, 1.8.55.

[2] वही, 2.1.8.

[3] विष्णु धर्मो०, 2.61.17.

[4] महा०शान्ति०, 119.16.

अनुसार भी राजा का कार्य कोष पर निर्भर है।[1] कामन्दक के अनुसार राजा कोष पर ही निर्भर करता है अर्थात् कोष राज्य का मूल है।[2] राज्य कोष के अधीन है।[3] शुक्रनीति के अनुसार कोष का संग्रह मुख्य तीन कार्यों के लिए होता है :- सेना, प्रजा संरक्षण तथा यज्ञार्थ। भोग विलास मात्र संग्रह किया गया कोष केवल दुःख का कारण होता है।[4] सोमेश्वर के अनुसार भी राजा को कोष संग्रह का पूरा उपाय करना चाहिए क्योंकि संचित किया गया कोष भविष्य में राज्य के उत्थान हेतु महत्वपूर्ण होता है। जिस राजा का कोष खाली रहता है भविष्य में उसका पतन निश्चित है।[5] प्राचीन अभिलेखों एवं राजनीतिक ग्रन्थों से इस बात पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है कि कोष को सदा भरा - पूरा होना चाहिए। कामन्दक ने कोष की आय के मार्गों में कृषि, वणिकपथ, दुर्ग, सेतु, खनिज, आकर और शून्यनिवेशन को बताया है।[6] कौटिल्य के अनुसार कोष स्वर्ण, रजत, मार्ग, स्पर्ण सिक्के

---

[1] कौ0अर्थ0, 1.9.13.

[2] काम0नीति 13.33: कोशमूलो हि राजेति प्रवादः सार्वलौकिकः

[3] वही, 19.18:कोशाधीना हि राजता ।।

[4] शुक्र0 4.18. बज प्रजा रक्षणार्थ यज्ञार्थ कोष संग्रहः।
परत्रह च सुखदानृेपस्यान्यश्च दुःखद।।

[5] मानसोल्लास, 2.4,540. भागेनैकेन चावश्यं कार्यःकोशत्यसंचयः।
कोशवान् सुखमाप्तोति कोशर्हिनस्तुसीदति।।

[6] काम0नीति, 5.78.

आदि से पूर्ण होना चाहिए, जिससे कि दीर्घकालीन आपत्ति में भी राज्य का कार्य चलता रहे।[1]

राज्य संचालन हेतु कोष – वृद्धि होनी चाहिए। परन्तु कोष वृद्धि प्रजा से कर के रूप में अर्थ संचय द्वारा होती है। इसलिये राजकोष की वृद्धि हेतु प्रजा से अर्थ संचय करना राजा का एक प्रधान कर्तव्य होता था। परन्तु राजा को अपने इस कर्तव्य का पालन निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर करना चाहिए। प्राचीन काल की कर व्यवस्था पर कामन्दकीय नीतिसार, सोमदेव के नीतिवाक्यामृत, शुक्रनीति, राजतरंगिणी तथा अभिलेखों से समुचित प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, महाभारत, मनु तथा अन्य स्मृतियों तथा कतिपय पुराणों में हमें कर संबंधी अनेक सिद्धान्त मिलते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।

चूंकि काफी प्राचीन काल से प्राचीन विचारकों द्वारा प्रतिपादित करारोपण के सिद्धान्त प्रचलित रहे हैं। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि विवेच्य काल में भी इन्हीं सिद्धान्तों का पालन होता रहा होगा।

करारोपण से संबंधित प्रमुख सिद्धान्त का विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :–

---

[1] कौ०अर्थ०, 2.6.1–10.

करारोपण व्यवस्था से संबंधित पहला सिद्धान्त था कि राजा को अपने अधीन प्रजा को प्रत्येक प्रकार से परिपुष्ट एवं सम्पन्न तथा समृद्ध कर देने के उपरान्त उस पर नियमानुसार कर लगाना चाहिए। मनु, भीष्म, कौटिल्य आदि राजशास्त्र प्रणेताओं ने इस सिद्धान्त को मान्यता दी है। कामन्दक ने भी इस सिद्धान्त की उपयोगिता बताते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि "गाय का पालन पोषण एवं सेवा सुश्रुषा विधिवत् कर उसे परिपुष्ट किया जाता है। समय आने पर वह परिपुष्ट गाय दूध देती है। ठीक इसी विधि से राजा को अपने अधीन प्रजा को परिपुष्ट सुसम्पन्न तथा समृद्ध बनाना चाहिए और तदोपरान्त धन - धान्य आदि की प्राप्ति हेतु कामना करनी चाहिए।[1]"

कर व्यवस्था से संबंधित दूसरा सिद्धान्त है कि कर न्यायोचित होने चाहिए। पुराणों, स्मृतियों, राजनीतिक ग्रन्थों एवं अभिलेखों में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। मनु के अनुसार राजा को निरंकुश होकर धन नहीं ग्रहण करना चाहिए।[2] पुराणों में भी करों को धर्मसम्मत होने का उल्लेख

---

[1] काम0नीति, 5.84.

[2] मनु0 7.144, क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानानमेवपालनम्।
निर्दिष्ट फलभोक्ता हि राजाधर्मेणा युज्येते।।

मिलता है।[1] कामन्दक ने भी धर्मानुसार कर ग्रहण करने का उल्लेख किया है।[2] अभिलेखों में भी धर्मानुसार कर ग्रहण करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

कर संबंधित तीसरा सिद्धान्त यह है कि कर का निर्धारण सोच – समझ कर करना चाहिए। प्राचीन ग्रन्थों से विदित होता है कि कर लगाने से पूर्व विभिन्न स्थितियों को ध्यान में रखकर कर निर्धारित करना चाहिए जैसे यदि भूमि पर कर लगाना है तो भूमि की उपज सिंचाई की सुविधाएं आदि ध्यान में रखना चाहिए।[4] शुक्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि वस्तुओं के लाभ पर कर लगाना चाहिए उसकी सम्पूर्ण आय पर नहीं लगाना चाहिए।[5]

करारोपण के चौथे सिद्धान्त के अनुसार कर समुचित रूप से ग्रहण करना चाहिए। कर न अति स्वल्प हो और न अत्यधिक होना चाहिए। मनु ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि न तो करों में अधिक छूट हो जिससे राजा की जड़ दुर्बल पड़ जाए और न कर इतना अधिक हो

---

[1] विष्णु 2.17.

[2] काम0नीति0 6.6, 'धम्मेणार्थ विर्वधयन।।'

[3] एपि0इण्डि0, 8, 66, पंक्ति 6, धर्मोपजितकर विनयोगं करण।

[4] मनु0, 7.130, गौतम, 10, शुक्र, 4.225.226.

[5] वही, 7.128, शुक्र 4.221, लाभं दृष्टवाहरेच्छुवंक........।

कि प्रजा की जड़ें शिथिल पड़ जाएं।[1] अभिलेखों से भी विदित होता है कि राजकीय करों को समुचित रूप से ग्रहण करना चाहिए।

पांचवें सिद्धान्त के अन्तर्गत मनुष्य जीवन में कुछ विशेष कृत्य भी होते हैं, जिनका विशेष महत्व होता है। ये विशेष कृत्य मनुष्य के विशेष संस्कारों, व्रतों, यज्ञ, दान, उपायन आदि से संबंधित हैं। इन कृत्यों के सम्पन्न होने के लिए जिन पदार्थों अथवा उपकरणों की आवश्यकता होती है, वे करमुक्त रहने चाहिए, ऐसा कौटिल्य का मत है।[2]

कर व्यवस्था से सम्बन्धित छठा सिद्धान्त यह है कि कर प्रजा के सब वर्गों पर विभाजित होना चाहिए ताकि कोई वर्ग कर देने से मुक्त न रह जाये। समाज के प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्थिति के अनुसार कर देना चाहिए।

प्राचीन काल में कर मुख्य तथा धन एकत्र करने के उद्देश्य से ही लगाये जाते थे। कर लगाते समय इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था कि लगाये गये करों से कितनी आय सरकारी खजाने में आती है। सरकार केवल

---

[1] मनु0 7.139, नोच्छिन्धादात्मनों मूलं परेषाचारित तृष्णाया।
अच्छिन्दन्ध्यात्मनो मूंलमात्मानंताश्चपीड्येत्।

[2] कौ0अर्थ0, 2.21-22.

उसी कर को लगाती थी जिससे अधिक आय होने की आशा होती थी। कर लगाने का दूसरा उद्देश्य नियमन और नियंत्रण करना है। कर आय की असमानता को दूर करने के लिए भी लगाये जाते हैं।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने कर ग्रहण करने की एक आदर्श व्यवस्था की थी।

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में भी आय का प्रमुख आधार भूमिकर ही होता था। भूमिकर के अतिरिक्त सामयिक कर, शुल्क, अर्थदण्ड, विष्टि कर, आकस्मिक कर, अन्य विविध कर आय के प्रमुख साधन थे। चालुक्य काल में विभिन्न करों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है :-

➢ **भूमिकर** :-

प्राचीन काल से भारत कृषि प्रधान देश रहा है। अस्तु राज्य की आय का अधिकांश भाग भूमिकर के रूप में एकत्र होता था। भूमि उपज पर जो कर साधारणतया लिया जाता था, वह *भाग कर* कहलाता था। भाग कर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। डी.सी. सरकार एवं यू.एन. घोषाल उपज पर जो कर लगाया जाता

---

[1] हजेला, तिलक नारायण, राजस्व का सिद्धान्त, पृ0 - 20-21.

था, उसी को भाग कर कहते हैं।[1] अलतेकर का मत है कि भाग कर इस बात का सूचक है कि खेत में होने वाली फसल का एक भाग राजा को प्राप्त होता था।[2]

भाग कर का उल्लेख प्रायः सभी राजवंशों के अभिलेखों से प्राप्त होता है। हर्ष के मधुवन [3] तथा बासखेड़ा[4] ताम्रपत्रों में, त्रिपुरी के कलचुरि नरेश कर्ण के बनारस अभिलेख[5] पालवंश के नारायण पाल के भागलपुर अभिलेख[6], उड़ीसा[7] और आसाम[8] के लेखों में अन्य करों के साथ – साथ भाग कर का भी उल्लेख है। स्पष्ट है कि प्रायः सभी राजवंशों में आय का प्रमुख साधन भूमिकर (भाग कर) ही था।

चालुक्य काल में भी शासन की आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था। चालुक्य अभिलेखों में भूमिकर

---

[1] दृष्टव्य घोषाल, हिन्दू रेवन्यू सिस्टम,पृ0 – 290.
सरकार, सलेक्ट, इंस्क्रिपशन्स, पृ0 – 372.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 –196.

[3] एपि0इण्डि0, 1, पृ0 – 73, पंक्ति–15.

[4] वही, 4, पृ0–2.11, पंक्ति–12.

[5] क0इं0इं0,4,भाग–1,पृ0–245,पंक्ति–43.

[6] इडि0एन0, 15, पृ0–306, पंक्ति–43.

[7] इडि0हिस्टो0क्वा0, 20 (1999), पृ0–235, 242, पंक्ति–12.24.

[8] एपि0इण्डि0,15, पृ0–74, पंक्ति–5.

में कई प्रकारों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जिसके अन्तर्गत '*उद्रंग*', '*उपरिकर*', '*क्लिपत – उपक्लिप्त*', '*निधि – उपनिधि*' कर थे।

उद्रंग कर का उल्लेख शीलादित्य के नौसारी पत्रों में हुआ है।[1] इसे प्रायः सभी इतिहासकारों में किसी न किसी रूप में भूमिकर माना है। शास्त्री महोदय ने इसे तहबाजारी कर [2] तथा एस. के मैती [3] ने इसे कोई अतिरिक्त '*कर*' माना है। मिराशी[4] तथा यू.एन. घोषाल[5] ने इसे कृषक पर लगाया जाने वाला स्थायी भूमिकर बताया है। 'उपरिकर' का उल्लेख भी इस काल के कतिपय दानपत्रों में उद्रंग के साथ ही आया था। मिराशी[6] ने इसे अतिरिक्त कर मानते हुए बताया है कि यह सम्भवतः व्यापारियों तथा कलाकारों द्वारा देय कर था। नीलकंठ शास्त्री[7] ने इसे लगान पर सरचार्ज या लगान के अलावा अन्य कर माना है। उन्होंने इसे चुंगी कर भी होने की

---

[1] का0इं0इं0, 4–1, पृ0–141.

[2] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 – 238.

[3] इकोनामिक लाइफ (1970), पृ0–85–86.

[4] का0इं0इं0, 4–1, पृ0–141.

[5] घोषाल, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ0–210.

[6] का0इं0इं0, 4–1, पृ0 – 141.

[7] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 – 238.

सम्भावना व्यक्त की है। फ्लीट् ने इसे किसानों पर लगने वाला अस्थायी भूमिकर माना है।[1] एल.डी. बार्ने[2] ने तमिल शब्दों से साम्य बतलाते हुए इसका अर्थ उपज पर राज्य का भाग लगाया है। सम्भवतः यह किस प्रकार का कर था, यह बताना कठिन है क्योंकि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। क्लिप्त – उपक्लिप्त का उल्लेख हमें पुलकेशिन द्वितीय के हैदराबाद अनुदान पत्र से मिलता है। मैती के अनुसार ये भूमिकर कुछ राज्याधिकारों के प्रतीक रूप में हो सकते हैं न कि करों के रूप में[3]। शास्त्री महोदय ने क्लिप्त का अर्थ लगान का बन्दोबस्त बताया है।[4] 'निधि – उपनिध' शब्दों का उल्लेख कतिपय चालुक्य अभिलेखों में मिलता है।[5] ये शब्द क्रमशः गुप्त तथा भूमिगत धन के प्रतीक हैं। इस काल में लोग अपने धन को गाड़ देते थे। इस प्रकार के धन की प्राप्ति यदि किसी को होती थी तो उसे राज्य को समर्पित करना पड़ता था, किन्तु ऐसा न करने पर अपराध माना जाता था। ऐसे धन के विषय में मनु का मत है कि यह धन आधा राजा को तथा आधा

---

[1] का0इं0इं0, भाग-4, पृ0 - 98.

[2] ज0रा0ए0सो0 (1831), पृ0 - 165.

[3] दृष्टव्य एस.के. मैती, इकोनोमिक, लाइफ, पृ0 - 921.

[4] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 - 238.

[5] हैदराबाद अभिलेख (पुलकेशिन द्वितीय) इण्डि0 ऐण्टी0, भाग-6, पृ0 - 73, पंक्ति - 1.

ब्राह्मण को मिलना चाहिए।[1] सम्भवतः यह करों की श्रेणी में न आकर जमा खाता में आता था।

➢ भोगकर :–

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने भाग कर के साथ – साथ भोगकर का भी उल्लेख किया है। मनु के अनुसार जब प्रजा राजा को फल, फूल, ईंधन के लिए लकड़ी आदि वस्तुएं देते हैं वही भोगकर कहलाता है।[2] इतिहासकारों ने भी भोगकर के विषय में भिन्न – भिन्न मत दिये हैं। भण्डारकर का मत है कि भोग का अर्थ राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति है।[3] यू. एन. घोषाल के अनुसार ग्रामीण फल, ईंधन की लकड़ी, पुष्प आदि राजा को कर के रूप में देते थे वही भोगकर है।[4] प्रायः सभी कालों में भोगकर का उल्लेख मिलता है।

चालुक्य काल में भी अन्य कालों की भांति 'भोगकर' तथा 'भागकर' प्रजा से लिया जाता था। भोगकर

---

[1] मनु0 8.38, "यंतु पश्योन्निधिं रजा पुराणं निहितं क्षितौ।
तस्माद् द्विजेक्यों दत्वार्थमर्ध कोर्शे प्रवेशयेत।।"

[2] वही, 7.118.

[3] एपि0इण्डि0, 11, पृ0 – 47.

[4] घोषाल, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ0 – 290.

का स्पष्ट उल्लेख हमें विनयादित्य के जेजुरी पत्रों में मिलता है।[1]

➢ सामयिक कर :–

चालुक्य काल में उपयुक्त सामान्य करों के अतिरिक्त कुछ सामयिक करों का उल्लेख भी मिलता है, जिनके अन्तर्गत महत्वपूर्ण अवसरों पर अपना कुछ संस्थाओं के खर्च हेतु वस्तुओं के रूप में भी कर लगाये जाते थे। यथा पुलकेशिन द्वितीय ने जब वाणराज विषय को जीता तो उसके तुरन्त बाद उनके प्रत्येक गांव पर 'तेरेपोन' सुवर्ण के रूप में कर लगाने का उल्लेख मिलता है।[2] विजयादित्य के बादामी लेख में राजमाता की विनयावती द्वारा निर्मित त्रिमूर्तियों के मंदिर के नाम अनेक करों और तेल, शर्करा आदि के रूप में प्रत्येक दुकान से निश्चित मात्रा में मिलने वाली आय के दान का उल्लेख है।[3] इन प्राप्त वस्तुओं का उपयोग सम्भवतः देनदाताओं के दैनिक भोग में होता रहा होगा। विजयादित्य के तेरहवें वर्ष (709 ई0) के एक दूसरे अभिलेख में किसी 'एल्लुगोलुगसणि' के कहने पर ऐहोल के 'भट्टार' को प्रति 'कोल्हू' तेल पिसक से एक 'सोणिगे' (एक कल्छीभर) तेल

[1] एपि0इण्डि0, भाग–19, पृ0 –64, "ग्रामस्योगस्यर्वापरिहारोपेतो दतः"

[2] सा0इ0इ0, भाग–1, सं0–46, पंक्ति–66–67.

[3] कर्ना0इंसि0, सं0–2.

के दान का उल्लेख मिलता है।[1] विक्रमादित्य की महारानी *लोकमहादेवी* ने पट्टदकल में सनिर्मित लोकेश्वर मंदिर के नाम नरयेंगल 50 का जिला लगाने के साथ ही उसने प्रति 'मतर' भूमि पर 2 कमुल (64 सेर) का कोलग[2] (बाजरा) देना भी तय कर लिया। किन्तु इस दान के विषय में एक महत्वपूर्ण बात भी कही गयी है कि इसकी वसूली के लिए कोई राजाज्ञा या कुर्की न की जाती थी। सम्भवतः रानी का यह विचार रहा होगा कि यदि इस कार्य के लिए किसी प्रकार दबाव या जबर्दस्ती की जायेगी तो उससे पुण्य का क्षय होगा। इससे यह विदित होता है कि राज्य में कर वसूली में कठोरता नहीं की जाती थी।

> **अन्य कर :-**

भूमि कर के अतिरिक्त अनेक ऐसे करों का उल्लेख मिलता है, किन्तु इन करों के विषय में स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता। विनयादित्य के एक अभिलेख में 'मारूंच', 'आदित्पंच', 'उपमन्न', 'मरूमन्न' नामक करों का उल्लेख मिलता है।[3] शास्त्री महोदय ने इन्हें भूमि से संबंधित स्थानीय कर निरूपित किया है।[4] करों से मुक्ति

---

[1] इण्डि0ऐन्टी0, 8, पृ0 - 285.

[2] वही, भाग-10, पृ0 - 167.

[3] इण्डि0ऐन्टी0, भाग-6, पृ0 - 85.

[4] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, पृ0 - 238.

भी दी जाती थी। ऐसी स्थिति को 'सर्वआदान विशुद्ध' कहते थे, जिसमें किसी भूमि विक्रय या दान आदि पर कोई कर नहीं लगाया जाता था। पराजित शत्रु पर भी कुछ कर लगता था।[1] तुलामान को भी नियमित करने का प्रयत्न चालुक्य नरेशों ने किया था। गदवाल और कर्नूल दानपत्रों में 'राजमान' का उल्लेख है।[2]

विक्रमादित्य द्वितीय के नरवन पत्रों में 'अरुहन' नामक किसी कर का उल्लेख मिलता है।[3] यह प्रकार का कर था, अभिलेखों से स्पष्ट नहीं होता है। यद्यपि जी.एस. खरे ने इसे 6 पणों का कर मानने का अनुमान किया है।[4] चालुक्य वंश में गृह कर का उल्लेख भी मिलता है। इसके अन्तर्गत मकानों या मकान की जमीनों के मालिकों को कर देने पड़ते थे। जिन लोगों के अपने निजी मकान नहीं होते थे उनके परिवार अपनी - अपनी सामर्थ्यानुसार राजकीय अधिकारियों को प्रति 12 , 10, 7 या 5 पण कर देते थे। गृह कर के अलावा त्योहारों और अन्य शुभ अवसरों पर भी कर देना पड़ता था।

---

[1] दृष्टव्य जी0, अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, भाग-1, पृ0- 237-239.

[2] साउथ इण्डि0 इन्शक्रिप्शन, भाग-11, खण्ड-1, सं0-48.

[3] एपि0इण्डि0, 27, पृ0 - 131, "अम्बारग्रामदेय मरूहणादि राजुरुषेक्योददाति।"

[4] वही, पृ0 - 127.

> ***कर में छूट :-***

तत्कालीन अभिलेखों से राज्य द्वारा करों में छूट का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। चालुक्य काल में दानग्राही गांवों को सर्व आदान विशुद्ध अर्थात् ये सभी उपकरों से मुक्त कर दिये जाते थे।[1] सामान्य करों में छूट के लिए कुछ लोगों द्वारा प्रार्थना किये जाने का उल्लेख आया है। इस छूट की प्रार्थना नावाल्ल की जनता, प्रेडुगिके, 'गामियो' के और नीरिल्लि के सिंदेर 'गामिग' ने की थी।[2] फिर इस संबंध में शिलार (शिलाहार) माण्डलिक रट्टराज के खारेपाटन[3] अभिलेख (1008 ई0) तथा 1024 के द्वितीय जयसिंह के मीरज[4] अभिलेख में उल्लेख मिलता है। खारेपाटन अभिलेख में मत्रमसूर (शैव) शाखा के एक ब्राह्मण (आचार्य) को सभी परिहारों से युक्त तीन गांवों के दान का उल्लेख है। उसमें सभी गांवों की चारों ओर की सीमाओं के उल्लेख हैं। इनसे प्राप्त होने वाले राजकीय करों (सर्वराजकीय - आभ्यांतर सिद्धिः) से विमुक्ति देते हुए यह आदेश दिया गया है कि उनमें चार भाटों (सैनिक और अर्द्धसैनिक) के अप्रवेश सहित सभी विमुक्तियां भविष्य में पूरी तरह लागू रहेंगी। मीरज अभिलेख (1024 ई0) में

---

[1] एपि0 इण्डि0, तलमचि पत्रा0, भाग-9, पृ0 - 100.

[2] इण्डि0ऐण्टी0, भाग-19, पृ0 - 144-45.

[3] एइ0, भाग - 3, पृ0 - 297.

[4] वही, भाग - 12, पृ0 - 303.

इससे भी आगे जाकर अन्य करों की गिनती में अन्नकर, स्वर्णकर और वहां की गड़ी हुई सम्पत्ति तथा जमाधन का उल्लेख है। वहां भी निर्देश है कि राजकीय अधिकारी वहां की इस नयी व्यवस्था का उल्लंघन नहीं करेंगे। वहां कर और बाधार (आकस्मिक कर) तथा 'शुल्क' (व्यापारिक वस्तुकर) भी नहीं वसूल किये जायेंगे। ये शर्तें प्रायः सभी के लिए मान्य थीं, किन्तु सभी प्रकार के करों से मुक्ति वाले इन उदाहरणों के अतिरिक्त एक उदाहरण ऐसा भी है जो चालुक्य विक्रम वर्ष 44 के विक्रमादित्य षष्ठ के नीलगुण्ठ अभिलेख से ज्ञात होता है कि द्रविण देश के 500 ब्राह्मणों को पूर्वतः दिये गये ग्रामदान के पुनर्नवीनीकरण के अतिरिक्त एक दान प्राप्तकर्ता ब्राह्मण वहां के भूस्वामी को 500 स्वर्णों का एकीकृत कर के रूप में (पिण्डदान) प्रतिवर्ष देते रहेंगे।[1] स्पष्ट है कि राज्य अपनी आय के सारे स्रोतों को बंद नहीं कर सकता था।

➢ अधीनस्थ राजाओं एवं सामन्तों से प्राप्त कर :-

प्राचीन परम्परानुसार अधीनस्थ राजाओं एवं सामन्तों द्वारा भी राजा को समय - समय पर उपहार एवं भेंट स्वरूप कर प्राप्त होता था। इन राज्यों से अनिवार्य रूप से वार्षिक कर के

---

[1] नीलगुण्ड अभिलेख, एपि०इण्डि०, भाग - 121, पृ०-145, पंक्ति - 67-68.

रूप में भी कुछ – कुछ आय होती थी, जिनके उल्लेख चालुक्य अभिलेखों में आए हैं। इस प्रकार चालुक्य राजाओं की आय के पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं।

राष्ट्रकूट काल के अभिलेखों तथा ताम्रपत्रों से इस समय प्रचलित विभिन्न करों एवं राजकीय आय के अन्य स्रोतों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है, जिनका विवरण इस प्रकार है :–

राष्ट्रकूट काल में भी आय का प्रमुख साधन *भूमिकर* था। राष्ट्रकूट लेखों में इसके लिए 'उद्रंग' एवं 'भागकर' शब्द आये हैं।[1] नियमित करों में 'उद्रंग' और उपरिकर के नाम बार – बार अभिलेखों में आते हैं। यद्यपि कुछ विद्वान्[2] इन्हें नियमित कर न मानकर अतिरिक्त कर मानते हैं। अलतेकर[3] के मत में ये भाग और भोग नाम भूमिकर के पर्याय ही हैं।

भाग वह भूमिकर था जो भूमि की उपज का प्रायः 1/6 के अंश में जोतदारों से वसूल किया जाता था।

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0– 264.

[2] दृष्टव्य लल्लनजी गोपाल, इकनॉमिक लाइफ् ऑफ् नार्दन इण्डिया, पृ0 – 41.

[3] अलतेकर, ए0एस0, राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 – 214.

भाग नामक कर के अंश के बारे में अलग - अलग ग्रन्थों में अलग - अलग उल्लेख प्राप्त होते हैं। राष्ट्रकूट युग में इसका अंश क्या था, इसका सही - सही निर्धारण नहीं किया जा सकता, किन्तु राष्ट्रकूट साम्राज्य लगातार युद्धों में व्यस्त था। उनके विरोधी जैसे गुर्जर, प्रतिहार, पाल तथा चोल भी शक्तिशाली राज्य थे। इसलिये सैन्य खर्च अधिक था। अतः ये कल्पना की जा सकती है कि उनके द्वारा लगाये जाने वाले कर भी अधिक ही होंगे। कुछ मुसलमान लेखकों के अनुसार[1] राष्ट्रकूट शासक बड़े धनी थे। अतः एक अनुमान यह है कि राष्ट्रकूटों द्वारा लगाया जाने वाला भूमिकर 20 प्रतिशत था[2] अर्थात् वह उपज का 1/5 भाग था।

राष्ट्रकूट समय में भूमिकर प्रायः उपज के कुछ अंश में ही वसूल किया जाता था। यह अंश प्रायः धान के रूप में ही होता था जो तमिल क्षेत्रों की ही नहीं, अपितु कर्नाटक के दक्षिण भागों की भी मुख्य उपज थी। किन्तु कुछ अभिलेखीय उदाहरण ऐसे भी हैं, जिससे प्रतीत होता है कि कहीं - कहीं नकद रूप में भी यह वसूल किया जाता था।[3] सुवर्ण और द्रम्म शब्दों के कर के रूप में

---

[1] अल - इद्रिसी, इलियट, एंड डाउसन, भाग - 1, पृ० - 85-86.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ-223.

[3] वही, पृ० - 223.

प्रयोग कुछ इस तथ्य की ओर निर्देश करते हैं कि कुछ कर नकद भी लिये जाते थे। अतः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रकूट राज्यों में ज्यादातर लोग अनाज के रूप में ही राजस्व अदा करते थे। ऐसा ही गंग तथा चोल राज्यों में भी था।[1]

राष्ट्रकूट समय के लेखों भोगकर के लिए 'उपरिकर' शब्द का प्रयोग किया गया है। भोगकर वह कर था जो राजा को प्रतिदिन दिया जाता था। यह फलों, पान के पत्रों, फूलों और सब्जियों आदि के रूप में भी दिए जाते थे। अलतेकर के अनुसार स्थानीय राज्य पदाधिकारियों को वेतन के अतिरिक्त जो भत्ता मिलता है, वही भोग है।[2] कुछ अन्य विद्वान्[3] भी इसे अतिरिक्त कर मानते हैं।

राष्ट्रकूट अभिलेखों में भी पूर्ववर्ती कालों की भांति शुल्क कर का उल्लेख मिलता है। यह भी राज्य की आय का एक साधन था। यह कर आयात तथा निर्यात दोनों ही पर लगता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में प्रायः सर्वत्र

---

[1] वही, पृ0 – 227.

[2] वही, पृ0 – 215.

[3] दृष्टव्य लल्लनजी गोपाल, इकनॉमिक लाइफ् ऑफ् नार्दन इण्डिया, पृ0–41.

ही उल्लिखित,[1] कोई ऐसा कर था, जिसकी व्याख्या आज तक सही – सही रूप में नहीं हो सकी है। इस काल में शुल्क के लिए शब्द का प्रयोग किया गया है। अलतेकर ने इसे भूत अर्थात् गांव में होने वाली उपज, उपात्र अर्थात् आयातित वस्तु और प्रति अर्थात् किसी ली हुई वस्तु पर आयकर के रूप में स्वीकार किया है।[2] इस प्रकार वे आबकारी (एक्साइज) और शुल्क (पथकर) सिद्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त घी और कोयले पर भी कर लगाये जाने के साक्ष्य अमोघवर्ष प्रथम के सिरूर लेख[3] से प्राप्त होते हैं। यादव, चोल और शिलाहर आदि लेख भी यह सूचना देते हैं कि विदिशों से आने वाले प्रत्येक जहाज पर बन्दरगाहों में एक 'गद्याण' (स्वर्ण सिक्का) और समुद्री किनारों से प्रवेश करने वाले जहाजों अथवा नौकाओं पर चांदी के 'धरण' नामक एक सिक्के का कर लगाया जाता था।[4] इस प्रकार यह सभी कर के अन्तर्गत ही आते हैं।

प्राचीन काल की भांति राष्ट्रकूट काल में भी *विष्टि* (बेगार) की प्रथा प्रचलित थी। इस शासनकाल के अधिकतर अभिलेखों में इस कर का उल्लेख मिलता है।

---

[1] दृष्टव्य घोषाल, यू.एन., हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ0 – 256.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0–229.

[3] एपि0इण्डि0, 7, पृ0 – 203.

[4] एपि0इण्डि0, 3, पृ0 – 286.

विष्टि वह कर था जो बेगार के रूप में राज्य कर्मचारियों, सैनिकों अथवा सेवकों द्वारा आवश्यक होने पर राजकीय यात्राओं, सैनिक प्रयाणों अथवा शिविरों को लगाते समय ग्रामीणों के श्रम के रूप में लिया जाता था। मनु की व्यवस्था के अनुसार[1] भी कारीगर और शिल्पी और मजदूर वर्ग को, आवश्यकतानुसार प्रत्येक माह में एक या दो दिन बिना मजदूरी प्राप्त किये राज्य के लिए अपना श्रम देना पड़ता था।

राष्ट्रकूट काल में *अर्थदण्ड* राजकीय राजस्व के एक प्रमुख स्रोत के रूप में था। दण्ड रूप में जो धन लिया जाता था वह राज्य की आय का साधन होता था। डा० घोषाल के अनुसार दशापराव दंड का निःसन्देह अर्थ एक प्रकार की राज्य की आय से है जो कि राजा को ग्रामवासियों से प्राप्त होती है।[2] दानदत्त ग्रमों में ये अर्थदण्ड दानप्राप्तकर्ता को हस्तान्तिरित हो जाते थे। दान विमुक्तियों में इनकी गिनती सदण्डदशापराधः के रूप में की गयी है। राष्ट्रकूट लेखों में इसके लिए अनेक शब्द जैसे 'दशाप्रधाय', 'सदण्ड', 'दण्डाय' अथवा 'प्रतिसिद्धाय'

---

[1] मनु०, 8.138.

[2] घोषाल, हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ० - 220.

प्रयोग हुए हैं।[1] अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट काल में अर्थदण्ड भी राज्य की आय का प्रमुख साधन था।

राष्ट्रकूट समय के लेखों में आकस्मिक करों का भी उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में इन विशेष करों को 'प्रणय' कहा गया है। प्रायः सभी लेखों में भी इन करों का उल्लेख मिलता है।

➢ अन्य कर :-

राष्ट्रकूट समय में भी अन्य करों के उल्लेख मिलते हैं। फुटकर करों में गृह कर, नदी के तरणकर, अपुत्रकरों की सम्पत्ति पर लगने वाला कर तथा चाटभाट प्रवेश दण्ड नामक अनियत करों की सूची में आते थे। चाटभाट प्रवेश दण्ड अर्थात् नियमित अथवा नियमित सैनिकों अथवा पुलिसवालों के गांवों में प्रवेश करने हेतु इनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए लगाये जाने वाले कर थे, जो अन्य करों की भांति दानग्रहीता ब्राह्मणों से नहीं वसूल किये जाते थे। यह कभी - कभी ही लगाये जाते थे।[2] सैनिक अधिकारी या पुलिसवाले किसी विशेष कार्य हेतु ही गांव में रूकते थे और ऐसे अवसर पर उनका खर्च गांव वाले ही उठाते थे। इसके अतिरिक्त

---

[1] इण्डि०ऐण्टी०, 19, पृ० - 165.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ०- 223.

'राजसेवकानाम वसति दण्ड प्रयाण दण्डौ' का भी उल्लेख भी राष्ट्रकूटों के समय मिलता है। जब गांव में कोई सरकारी अधिकारी किसी विशेष उद्देश्य से रूकता था तो उस समय यह कर लगाया जाता था।

गृहकर के प्रमाण भी हमें राष्ट्रकूट अभिलेखों में मिलते हैं, जिसके अनुसार 12 मकानों को एक मन्दिर को प्रदान किया गया था जो पूर्णतः करमुक्त थे। गोविन्द तृतीय ने 813 ई0 में 'तोरखेडे दानपत्र'[1] में गृह कर का प्रमाण हमें मिलता है। इनके अतिरिक्त राजाओं के यहां पुत्रोत्पत्ति, विवाहसंस्कार तथा ऐसे कुछ अवसरों पर प्रजाओं, विशेषतः धनी लोगों द्वारा भेंटे भी राजकीय आय में सम्मिलित थीं।

➢ कर में छूट :-

राष्ट्रकूट समय के लेखों से भी ज्ञात होता है कि विशिष्ट परिस्थितियों जैसे अकाल आदि पड़ने पर कर से मुक्ति अथवा छूट प्रदान की जाती थी। मन्दिर एवं ब्राह्मणों के निमित्त दिये गये भूमिदान या तो कर मुक्त थे या कर में छूट दी जाती थी। कृष्ण तृतीय के समय में 50 मात्तर शुल्ककर भूमि से आठ कलजु स्वर्ण राजस्व के रूप में लिया जाता था। ये तुप्पड़, कुराहट्टी, गांव के लिए

---

[1] वही, 3, पृ0 – 53.

था जो कि लगभग 200 एकड़ क्षेत्र में थी। अतः 100 एकड़ भूमि पर कर सिर्फ एक तोला सोना था।[1] यह तथ्य इस प्रकार सही प्रतीत होता है कि ये सरकार की सामान्य मांग नहीं थी, बल्कि एक प्रकार का किराया था जो भूमि मन्दिरों को अनुदान में मिलता था। इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं कि मन्दिरों की भूमि में बहुत थोड़ा सा कर लगाया जाता था। अतः स्पष्ट है कि परिस्थितियों के अनुसार नियमित कर में पूर्ण या आंशिक छूट प्रदान की जाती थी।

राष्ट्रकूट प्रशासन सरकारी सम्पत्तियों से भी आय प्राप्त करता था। गांवों की बिखरी हुई भूमि, जंगली भूमि, ऐसी भूमि जिस पर कृषि की जा सके, जंगल और उनके वृक्ष राज्य के स्वामित्व (सरकारी सम्पत्ति) में होते थे और उनके दान को 'सवृक्षमालाकुल' की संज्ञा दी गयी है। धातुओं की खाने और नमक निकालने की खाने भी राज्याधिकार में थी और प्रायः राज्य उन्हें पट्टों में देकर उनसे भारी आय प्राप्त करते थे। यदि कोई गढ़ा हुआ अथवा अस्वाभाविक धन किसी को प्राप्त हो जाय, तो उसे राज्य को निवेदित कर उसे राज्य को सौंप देना, उसका कर्त्तव्य था। उसे पाने के बदले राज्य की ओर से उसका कुछ अंश पाने वाले को दे दिया जाता था। राष्ट्रकूटों के

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0-220.

अधीन अनेक सामन्त राज्य थे, जिनसे प्राप्त भेंट आदि भी राज्य की आय के साधन थे।

> **व्यय :-**

चालुक्य और राष्ट्रकूट राज्यों में जितना आय के साधन थे उतना ही व्यय भी होता था। अभिलेखों से राजकीय व्यय व्यवस्था पर बहुत ही कम प्रकाश पड़ता है। प्राचीन विचारकों के अनुसार राजकोष में संचित किये गये धन का उचित व्यय होना चाहिए। इसलिए कौटिल्य के मतानुसार देवपूजा, पत्रिपूजन, दान, स्वामित्व वाचन, अन्तःपुर, राजकीय रसोई, दूत, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पर्णगृह, उद्योग - धंधों में कार्य करने वाले, बेगार, पैदल, सभी प्रकार की सेनाओं, पशु, पक्षी आदि जन्तुओं का संग्रह, काष्ठ, तृण बगीचों आदि की रक्षा आदि में राजकोष का व्यय होना चाहिए। व्यय के इन मार्गों को कौटिल्य ने व्ययशरीर नाम से सम्बोधित किया है।[1] शुक्र ने भी आय को निम्न प्रकार से व्यय करने का आदेश दिया है।[2] इनके अनुसार सेना, दान धर्म, जनता, राजपरिवार आदि पर व्यय होना चाहिए।

---

[1] कौ0अर्थ0, 2.6, 11.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0- 209.

सम्भतवः चालुक्य और राष्ट्रकूट प्रशासन में भी व्यय होते रहते थे। सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर भी राज्य की आय का बहुत बड़ा अंश व्यय होता था। मंदिर, धर्मशाला, सड़क, तालाब, झील और नहर निर्माण व्यय के अन्य साधन थे।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों की राजवंशीय सेना बहुत बड़ी थी। सम्भवतः इन दोनों राज्यों में दुर्ग तथा शिविर निर्माण, अस्त्र – शस्त्र में तथा विभिन्न प्रकार की सेनाओं के संरक्षण पर भी पर्याप्त व्यय होता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राज्यों में विभिन्न प्रकार के अधिकारी थे, उनके वेतन पर भी राजकोष से ही व्यय होता था। युद्धों तथा यात्राओं आदि पर भी राजाओं द्वारा व्यय किया जाता था। सोमेश्वर के *मानसोल्लास* के अनुसार राजकीय आय से दुर्गों का निर्माण देवघरों अर्थात् मन्दिरों, सड़को (मार्गों), कूप (कुओं), सभा (न्यायालय) और अन्य लोककल्याणी कार्यों पर व्यय होता था।[1] राजा राज्य की आय का उपयोग राज्य के कल्याण हेतु करता था।[2]

---

[1] मानसोल्लास, I 11.75, अतिनष्ठिकां प्रपाः सन्नमापाकं च प्रवर्तयेत।
समां सभामठं चैव जीर्णदेवकलानि च।।

[2] मानसोल्लास, 2.4.377–540.

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राज्यों में जिस प्रकार आय के अधिक स्रोत थे, उसी प्रकार व्यय भी होता था। प्राचीन विचारकों ने भी सदैव उचित आय – व्यय का आदेश दिया है। इस सिद्धान्त का पूरा पालन दक्षिण भारत के उपरोक्त दोनों राजवंशों में होता था।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य एवं राष्ट्रकूट प्रशासन एक सुदृढ़ राजस्व व्यवस्था पर ही आधारित था। चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में राज्य प्रजा पर विभिन्न प्रकार के कर लगाते थे और करों से प्राप्त आय को पुनः प्रजा के हितार्थ खर्च किया जाता था। चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की कर संख्या लगभग समान ही थी। दोनों ही राजवंशों में भूमिकर, भोगकर, विष्टि, शुल्क, अर्थदण्ड, आकस्मिक, कर तथा कुछ अन्य कर भी लिये जाते थे।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट कालीन कर व्यवस्था के अध्ययन से हमें दोनों कालों में अनेक समानताएं भी दिखाई देती हैं। प्राचीन काल की भांति चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में भी राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर ही होता था। चालुक्य लेखों में इसके लिए 'उद्रंग', 'उपरिकर', 'क्लिप्त – उपक्लिप्त', 'निधि – उपनिध' शब्द का उल्लेख मिलता है। जैसा कि इस कर

के नाम से ज्ञात होता है कि इसमें राजा को उपज का एक भाग प्राप्त होता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट कालों में भूमिकर सामान्यतः अनाज के रूप में लिया जाता था, परन्तु कभी – कभी कर नकद रूप में भी वसूल किया जाता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में भूमिकर के अतिरिक्त भोगकर का भी उल्लेख मिलता है जो कि राजा तथा राज्याधिकारियों के उपयोग के लिए जनता से लिया जाता था। राष्ट्रकूट अभिलेखों में भोग कर के लिए 'उपरिकर' शब्द आया है। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों में अर्थदण्ड भी राज्य की आय का प्रमुख साधन होता था। चालुक्य काल में सामाजिक कर भी लगाये जाते थे जो महत्वपूर्ण अवसरों पर लगाये जाते थे। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों में शुल्क नामक कर का उल्लेख मिलता है तथा विष्टि (बेगार) कर भी लगाये जाते थे। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट समय में आकस्मिक कर भी लिये जाते थे जो संकट के समय में राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाते थे।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूटों के राज्य में अन्य विविध कर भी होते थे जो राज्य की आय के प्रमुख स्रोत थे। चालुक्य अभिलेखों में इन विविध करों में 'उंचमन्न', 'मरुमन्न', 'मारुंच', 'आदित्यपूंच' नामक करों के उल्लेख भी मिलते हैं किन्तु इनके विषय में

कोई विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती है। राष्ट्रकूटों में इन विविध करों की श्रेणी में गृहकर के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है, जिसका महत्व चालुक्य समय में भी था। गृहकर के अलावा 'त्योहारों' अन्य शुभ अवसरों पर भी कर देने का प्रमाण मिलता है। राजकीय राजस्व की प्राप्ति उसके संग्रह और व्यय के चालुक्यों के समय में कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं प्राप्त होते। उनके जो भी उल्लेख हैं, वे सभी अप्रत्यक्ष हैं और वे ब्राह्मणों को दिये गये भूमिदान (ब्रह्मदेय या ब्रह्मदाय), मंदिरों को दिये गये भूमिदान (देवदेय या देवदाय), मठो, सत्रों, विहारों, राजकर्मचारियों, सेनापतियों और सैनिकों को विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु और सेवा हेतु दी गयी जमीनों से संबद्ध राजकीय करों में नियुक्तियों (परिहारों) संबंधी उल्लेख के द्वारा ज्ञात होते हैं। राजकीय करों से संबंद्ध परिहारों के जितने भी उल्लेख हैं, उनसे अनुमान लगा लेना सही नहीं होगा कि वे सभी के सभी प्रकार के कर राज्य में सर्वत्र लगाये ही जाते थे। वे कर स्थानीय, प्रयोजन व प्रायः सीमाबन्धित ही थे।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों में कर में छूट का प्राविधान था, जो कुछ विशिष्ट परिस्थितियों जैसे अकाल, बाढ़ आदि में दिया जाता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट लेखों के अनुसार मंदिरों एवं

ब्राह्मणों को जो भूमि प्रदान की जाती थी, उसे भी कर से मुक्त रखा जाता था।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट सरकारी सम्पत्तियों से भी आय प्राप्त करते थे। इन कालों के अधीनस्थ राजाओं एवं सामन्तों से प्राप्त भेंटे आदि भी राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों से हमें राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियों के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। सोमदेव के *नीतिवाक्यामृत*[1] में अवश्य राजस्व विभाग के पांच अधिकारियों का उल्लेख मिलता है :- *आदायक, निबन्धक, प्रतिबन्धक, नीवीग्राहक* तथा *राजाध्यक्ष*। इनमें आदायक का मुख्य कार्य शुल्क ग्रहण करना था। वह व्यापारियों आदि से कर ग्रहण करता था। संग्रह की गयी समस्त धनराशि को वह राजकोष में जमा भी कराता था। निबन्धक आदायक का सहायक कर्मचारी था। जो राजस्व का सम्पूर्ण विवरण लिखता था। उसकी तुलना अर्थशास्त्र के लेखक से की जा सकती है। प्रतिबन्धक का मुख्य कार्य आदायक द्वारा जमा किये गये राजस्व एवं अन्य करों के विवरण पत्रों पर राजकीय मुद्रा अंकित करना था। नीवीग्राहक राजकोष

[1] नीति0, 18.51.

का उच्चाधिकारी होता था, जिसकी तुलना आजकल के कोषाधिकारी से की जा सकती है। राजकीय आय - व्यय का लेखा - जोखा रखना उसका सबसे प्रमुख कार्य होता था। चारों ही अधिकारी राजाध्यक्ष के अधीन होते थे और उसकी अध्यक्षता में कार्य करते थे। सम्भवतः दोनों ही साम्राज्यों में राजस्व विभाग के अन्तर्गत अनेक अधिकारी राजस्व व्यवस्था से संबंधित विभिन्न कार्यों को करते थे।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट कालीन राजस्व का विस्तृत अध्ययन तथा तुलनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि दोनों ही राजवंशों में कर व्यवस्था लगभग समान ही थी, जिसका मूल आधार राज्यों को समुचित ढंग से संचालित कर आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना था। राजकीय आय का उपयोग अनेक सार्वजनिक कार्यों पर ही होता था।

अध्याय : ५

न्याय व्यवस्था

न्याय व्यवस्था

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में न्याय प्रणाली की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। शासन को सुचारू रूप से संचालित करने और राज्य में शान्ति व्यवस्था की स्थापना के लिए न्याय व्यवस्था आवश्यक मानी जाती है। अन्याय और अन्यायियों को नियंत्रण में रखने के लिए न्याय व्यवस्था का सही होना परमावश्यक माना गया है। समाज में विधि अथवा न्याय व्यवस्था का सही होना परमावश्यक माना गया है। विधि अथवा न्याय व्यवस्था की स्थापना का उद्देश्य प्रजा की सुख और समृद्धि का प्रसार करते हुए दुर्बलों को सबलों से बचाना तथा सामाजिक संघर्ष की अवस्था पर रोक लगाना था। न्यायप्रिय शासक के शासन में प्रजा सुखी और आर्थिक विकास की ओर उन्मुख होती है तथा सर्वतोमुखी विकास करती है, क्योंकि अनैतिक कार्य करने वाले न्यायकर्ता शासक से भयभीत रहते हैं। न्याय से अन्याय को दूर करने के लिए दण्ड आवश्यक माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि दण्ड से हिंसक पशु भी नियन्त्रित किये जाते हैं पुनः प्रजा क्यों नहीं नियन्त्रित की जा सकती है? अपराधों के आधार पर उचित और धर्मानुसार दण्ड देना ही राजा का परम् धर्म समझा जाता था। निष्पक्ष न्याय व्यवस्था श्रेष्ठ शासन की आधार शिला थी। राज्य संस्था के विकास के साथ - साथ न्यायिक विभाग का भी समुचित संगठन देखने को मिलता

है। प्राचीन नीतिग्रन्थ, स्मृतियों तथा ऐतिहासिक साहित्य एवं अभिलेखों के अनुशीलन से प्राचीन भारतीय न्याय प्रणाली के संगठन का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

राजतंत्रात्मक शासन के अन्तर्गत न्याय व्यवस्था का एक मात्र दायित्व राजा पर आधारित रहता था। महाभारत के अनुसार न्याय व्यवस्था का यदि उचित प्रबन्ध नहीं होता तो राजा को स्वर्ग तथा यश की प्राप्ति नहीं हो सकती।[1] महाभारत में भीष्म द्वारा प्रस्तुत स्वरूप नैसर्गिक विधि से संचालित अवस्था का आदर्श प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा विधान का संहिताबद्ध स्वरूप सामने आता है।[2] कौटिल्य राजा को न्याय का स्रोत मानते हैं।[3] उनके अनुसार चारों वर्ण एवं आश्रम के संयमन के लिए लोग राजा की सहायता चाहने लगते हैं और वह समस्त कार्य दण्ड द्वारा सम्पादित करता है।[4] मनु का मत है कि जो राजा अदण्डनीय को दण्ड और दण्डनीय को दण्ड नहीं देता, वह नरक का भागीदार होता

---

[1] महाभारत शान्ति0, 69.32.

[2] दृष्टव्य, हरिहरनाथ त्रिपाठी, प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, पृ0–8.

[3] कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 1.19.

[4] वही, 1.4.19, चतुवर्णाश्रमों लोकों राजा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिखे वर्तते स्वेषु वटर्मषु ।।

है।[1] स्मृतियों तथा महाभारत में राजा को निष्पक्ष न्याय करने का आदेश दिया गया है।[2] याज्ञवल्क्य का कथन है कि न्याय को निष्पक्ष प्रशासन से राजा को वही फल प्राप्त होता है, जो यज्ञ आदि के करने से प्राप्त होता है।[3] परवर्ती विचारक शुक्र का कथन है कि निष्पक्ष न्याय करना एवं दुर्जनों का संहार करना राजा का प्रमुख धर्म है।[4] गौतम धर्म सूत्र के अनुसार जो राजा न्यायपूर्वक दण्ड देकर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह अपराधी है।[5] आचार्य सोमदेव सूरि का मत है, जो राजा न्यायपूर्वक शासन नहीं करता वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।[6] सोमदेव ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार व्यवस्था दी है – "अपने अधीन प्रजा को गुण – दोष की गुरुता एवं लघुता के ज्ञान हेतु राजा तुलादण्ड के समान होता है[7]" अर्थात् राजा का यह कर्तव्य है कि वह प्रजा के मध्य न्याय – व्यवस्था की स्थापना कर उसका विधिवत् संचालन करे। इस कार्य के सम्पादन हेतु राजा राज्य में विविध प्रकार के न्यायालयों की स्थापना कर उनमें

---

[1] मनु0, 8.128.

[2] मनु0, 8.128 : याज्ञ0 1.359-60, म0 भा012.9.32.

[3] याज्ञ0, 1. 359-60.

[4] शुक्र0, 1.14.

[5] गौतम 12.48.

[6] नीति0, 8.20., अन्यायोपेक्षया सर्वे विनश्यन्ति।

[7] नीति0वाक्य0 1.28.

न्यायाधीशों की नियुक्ति करे। सोमदेव ने विविध प्रकार के न्यायालयों की स्थापना हेतु व्यवस्था दी है।[1] इस प्रकार राज्य में न्याय – व्यवस्था की स्थापना एवं उनके विधिवत् संचालन की सम्यक व्यवस्था करना राजा का प्रधान कर्तव्य था। वैदिक काल से ही भारत में निष्पक्ष न्याय प्रणाली के अनेक संकेत मिलते हैं। वैदिक साहित्य में इन्द्र और वरूण को सर्वोच्च न्यायाधीश की संज्ञा दी गयी थी। उत्तर वैदिक साहित्य में विभिन्न न्याय संबंधी प्रक्रियाओं में दैवी विश्वास की झलक दिखती है। छान्दोग्य उपनिषद्[2] के अनुसार चोरी करने के दण्ड में अभियोगी को न्यायाधीश के पास ले जाया जाता था। अभियोगी को एक दहलते हुए लौह परशु को हाथ में लेना पड़ता था। लोगों का यह विश्वास था कि यदि उसका हाथ जल गया तो वह दोषी होगा परन्तु यदि वह निर्दोष होगा तो 'सत्यदेव' उसकी रक्षा करेंगे। प्राचीन काल में दैवी विश्वास पर आधारित इस प्रकार की परीक्षाएं विश्व के प्रायः सभी भागों में प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। इस बात की पुष्टि चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से भी होती है।[3] तैत्तिरीय संहिता में विभिन्न अपराधों के लिए विभिन्न दण्डों का विवरण मिलता है। अपराधी को दण्डित करने के लिए

---

[1] नीतिवा0, 22.28.

[2] छान्दोग्य उपनिषद्, 6.16.

[3] दृष्टव्य, कपूर, एस.एन., प्राचीन भारतीय राजतंत्र, पृ0 – 52.

'प्राड्विवाक्' एवं अन्य न्यायाधीश होते थे।[1] न्याय के अन्तर्गत विधि, दण्ड, व्यवहार आदि शब्दों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय शास्त्रों में पाया जाता है। राजा का दरबार ही प्रमुख न्यायालय होता था। न्यायालयों के लिए 'धर्मरत्न' या धर्मस्थान[2] एवं धर्माधिकरण[3] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में दो प्रकार के न्यायालयों (धर्मस्थीय एवं कण्टकशोधन) का उल्लेख किया है। सामान्य रूप से न्यायालय दो प्रकार के होते थे।[4] राज्य न्यायालय, विभिन्न प्रकार के अन्य न्यायालय।

राज्य न्यायालय वह सभा थी जहां राजा ही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। अन्य प्रकार के न्यायालय प्रायः स्थानीय स्तर पर होते थे, जिनमें चयनित अधिकारी कार्य करते थे। स्मृतियों में राज्य – न्यायालय का विस्तृत विवरण मिलता है। ब्रहस्पति ने चार प्रकार के न्यायालयों का उल्लेख किया है – प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित, मुद्रित तथा शासित। न्यायालयों के संदर्भ में शुक्र ने न्यायालयों को दो शाखाओं में विभक्त किया है। प्रथम शाखा के अन्तर्गत स्थानीय संस्था थी और दूसरी शाखा के अन्तर्गत आने वाले न्यायालयों पर

---

[1] वही., पृ0 – 53.

[2] नारद, 1.34 : मनु0 8.23 : शुक्र 4.5.44.

[3] कात्यायन (स्मृति चन्द्रिका) 2.19. : शुक्र 4.5.44.

[4] दृष्टव्य, कपूर, एस.एन., प्राचीन भारतीय राजतंत्र, पृ0 – 53.

राज्य सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है। शुक्र का मत है कि राजा के अधीन न्यायालय को समस्त न्यायालयों में सर्वोच्च माना गया है।[1] राज्य न्यायालय में राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। न्याय व्यवस्था की रक्षा के लिए शासक रोज न्यायालय लगाता था, जिसमें वह विवादों को सुनता था और बड़ी ही सच्चाई के साथ न्याय करता था। राजधानी में राजा की सभा ही सबसे बड़ा न्यायालय था।[2] ऐसा माना जाता था कि जब भी अन्याय और अत्याचारों की वृद्धि होती है तभी प्रजा शासक से न्याय की पुकार करती है एवं राजा का कर्तव्य होता था कि वह धर्मानुसार लोगों को न्याय प्रदान करें। कभी - कभी राजा द्वारा अपने स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को न्याय करने का अधिकार सौंपा जाता था। यह कार्य प्रायः 'धर्म महामात्य' अथवा 'प्रधान मंत्री' द्वारा किया जाता था। विभिन्न प्रकार के अन्य न्यायालयों में कुल, श्रेणी, पूग एवं गण आदि के अपने न्यायालय होते थे जिन्हें सीमित क्षेत्र में न्याय करने का अधिकार था। महाभारत के शान्तिपर्व के अनुसार अराजकता वाले राष्ट्र के धर्म की स्थिति भी बुरी हो जाती है, उस राष्ट्र की जनता परस्पर एक दूसरे को खाने लगती है अतः उस देश को धिक्कार है।[3] महाभारत के शान्ति पर्व में न्याय व्यवस्था का सबसे आदर्श

---

[1] शुक्र, 4.554.

[2] दृष्टव्य, शास्त्री, नीलकण्ठ, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 - 171.

[3] महाभारत शान्ति पर्व 6, अध्याय-32 श्लोक

विवरण मिलता है। इसके अनुसार राजा को सर्वप्रथम स्वयं वैदिक आचरणों का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए, राजा को अपने निकटतम सम्बन्धियों को भी अपराधानुसार दण्डित करना चाहिए। राजा को सदैव दीन - दुखियों के प्रति संवेदनशील होकर न्याय करना चाहिए। राजा को अपराधी का दोष सिद्ध हो जाने पर दोष के अनुसार ही दण्ड देना चाहिए।[1] महाभारत में वर्णित न्याय व्यवस्था का जो आदर्श प्रारूप मिलता है, आगे आने वाले समय में भी इसे अपनाया गया और दण्ड को आधार मानकर निष्पक्ष न्याय व्यवस्था की स्थापना का पूरा प्रयास किया गया।

चीनी यात्री फाह्यान के विवरण में गुप्तकालीन न्याय व्यवस्था के विषय में जानकारी मिलती है। गुप्तकालीन नगरों के राजकीय न्यायालय धर्मासनाधिकरण कहे जाते थे।[2] बाद के सम्राटों ने भी इस प्राचीन न्याय व्यवस्था का पालन करते हुये उसमें अपने - अपने ढंग से आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये। न्याय व्यवस्था के सही होने पर शक्तिशाली दुर्बलों पर अत्याचार नहीं कर सकते हैं और राज्य में कहीं भी किसी के साथ अन्याय नहीं होने से शान्ति रहने से ही राज्य का बहुमुखी विकास होता है। स्थानीय रक्षा का काम कुछ अंश तक ग्रामीण अधिकारियों द्वारा किया जाता था।

---

[1] दृष्टव्य, कपूर, एस.एन., प्राचीन भारतीय राजतंत्र, पृ0 - 54.

[2] दृष्टव्य, कपूर, एस.एन., पूर्वोक्त, पृ0 - 56.

राज्य में शासन संचारी भी होते थे जो देश में घूम – घूम कर सरकारी आदेशों तथा न्यायालयों की आज्ञाओं को क्रियान्वित कराते थे, उनको कर्तव्य पालन में सहायता पहुंचाने के लिये सैनिक का एक वर्ग उनके साथ रहता था।

चाउ – जु – कुआ नामक यात्री लिखता है कि – "जब प्रजा जनों में से कोई व्यक्ति अपराध करता है तो राजदरबार का मंत्री उसे दण्ड देता है और यदि अपराधी का अपराध सामान्य है, तो अपराधी को एक लोहे के चौखट से बांध दिया जाता था और उस पर एक डण्डे से पचास, सत्तर या सौ तक प्रहार किया जाता था। जघन्य अपराध के लिये सिर को काट देने अथवा हाथी के पैर के नीचे डालकर मार डालने का दण्ड मिलता था।[1]" इस तरह की दण्ड व्यवस्था निश्चित रूप से परवर्ती काल में थी और ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि दक्षिण भारतीय नरेश अपने शासन में दण्ड का उचित मापदण्ड निर्धारित करते हुए न्याय प्रदान किया करते थे।

चालुक्य और राष्ट्रकूट शासकों के शासन में ऐसे आदेशों का राजश्रावितम कहा जाता था। राज्य में पारस्परिक विवादों को हल करने के लिए ग्राम कचहरी, जातीय और

---

[1] दृष्टव्य, शास्त्री, के.ए. नीलकण्ठ, द्वारा सम्पादित फॉरेन नोटिसेज ऑफ साउथ इण्डिया, पृ0–143.

वर्गीय पंचायतों के अतिरिक्त न्याय दिलाने के लिए केन्द्रीय सरकार की ओर से न्यायालयों का प्रबन्ध था जो अधिकरण अथवा 'धर्मासन' कहलाता था। इन न्यायालयों के अध्यक्ष राजकीय अधिकारी ही होते थे। धर्मासन भट्ट (न्यायशास्त्र के पण्डित) परामर्शदाता के रूप में उनकी सहायता करते थे।[1]

राष्ट्रकूट शासन के अन्तर्गत न्याय व्यवस्था के सन्दर्भ में तत्कालीन साहित्यिक स्रोतों, अभिलेखों एवं विदेशी यात्रियों के विवरण से कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है। इतने बड़े साम्राज्य की न्याय व्यवस्था निश्चित रूप से उच्च कोटि की रही होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट वंश की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था कुछ न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ पूर्व प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था पर ही आधारित थी। प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने प्रजारक्षण को राजा के सर्वोच्च दायित्व के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि न्याय विभाग के विषय में चालुक्य वंशीय अभिलेखों में भी किसी प्रकार की अधिक जानकारी नहीं मिलती है, परन्तु न्याय विभाग का प्रमुख अधिकारी राजा ही होता था। अतः राजा से अपेक्षा की जाती है, कि वह निष्पक्ष न्याय करें। अतः इसी दायित्व की पूर्ति के लिए चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश के सम्राटों ने एक सुव्यवस्थित न्याय प्रणाली विकसित कर न्याय व्यवस्था में प्राचीन धर्मशास्त्रों में निहित परम्पराओं का

[1] वही, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ० - 171.

अनुपालन किया होगा ऐसी सम्भावना है। पूर्व प्राचीन काल की भांति चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश के काल में भी राजा ही शासन का केन्द्र बिन्दु था।

स्थानीय न्यायालयों का चालुक्य और राष्ट्रकूट प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। छोटे - छोटे विवादों का निर्णय स्थानीय निगमों द्वारा कर लिया जाता था। ग्राम सभाओं, द्वारा उन विवादों का निस्तारण किया जाता था जो किसी व्यवसाय के निगम अथवा अन्य स्थानीय संगठनों के अधिकार क्षेत्र से बाहर होते थे। ग्राम न्यायालय तथा जातीय पंचायत के अतिरिक्त नियमित रूप से गठित राजकीय न्यायालयों द्वारा न्याय की व्यवस्था थी। प्रमाण के रूप में परम्परागत प्रचार, दस्तावेज तथा गवाह अर्थात् साक्षी को प्रस्तुत करने की अनुमति भी थी किन्तु जहां कोई मानवीय प्रमाण नहीं मिलता था वहां अग्निपरीक्षा या उसके ही समान इसी प्रकार की किसी कठिन परीक्षा का सहारा लिया जाता था।[1]

➢ न्याय व्यवस्था की विशेषताएं :-

प्राचीन भारत में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिए न्याय व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक थी। निष्पक्ष न्यायालय लोगों में विश्वास उत्पन्न करके उनके अधिकारों

[1] दृष्टव्य, शास्त्री, के.ए. नीलकंठ, पूर्वोक्त, पृ0 - 171.

की रक्षा करते थे। निष्पक्ष न्यायालय के महत्व पर विशेष महत्व दिया गया है। समय और परिस्थितियों के अनुरूप न्याय व्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन भी होते रहे, लेकिन प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था की कुछ मूलभूत विशेषताएं प्रायः सभी युगों में देखने को मिलती हैं। रामायण और महाभारत काल की न्याय व्यवस्था से लेकर मौर्य, कुषाण, गुप्त, सातवाहन, चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल आदि प्रसिद्ध राजवंशों के शासन काल में न्याय व्यवस्था पूर्व रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास पर ही आधारित दिखाई देती है। चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की भी न्याय व्यवस्था प्राचीन भारत के न्याय व्यवस्था पर ही आधारित थी। इनकी महत्वपूर्ण विशेषताओं का विवेचन इस प्रकार है :-

1. चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में भी राजा ही राज्य का प्रधान, सम्मान स्रोत, न्यायाधीश और सशस्त्र सेना का नायक होता था। सम्राट् प्रशासन का ही प्रधान न था वह न्यायालयों का मुख्य एवं सर्वोच्य अधिकारी था। विवाद और विरोध की स्थिति में राज्य के प्रधान के नाते उसे यह अधिकार प्राप्त था कि वह अपने विधि मर्मज्ञों से परामर्श कर यह घोषित करे कि कौन सी व्यवस्था आचार विहित है और यदि वर्तमान कानून अथवा व्यवस्था

में कोई व्यवस्था उपलब्ध न हो तो वह नये निर्णय भी ले सकता है।[1] अपराधियों को उनके अभियोगानुसार दण्ड देना उसका प्रधान कर्तव्य था। राजा का न्यायालय अपील के लिए अन्तिम न्यायालय होता था और उसके निर्णय के विरूद्ध अपील नहीं हो सकती थी अर्थात् वह उच्चतम् न्यायालय भी था। इससे स्पष्ट है कि समय – समय पर जरूरत के मुताबिक नये – नये कानून बनते रहते थे। लेकिन इनके बनाने तथा लागू करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि ये प्राचीन स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों में निर्धारित तथा शिष्टजनों द्वारा स्वीकृत नियमों के विरूद्ध न हो।

2. राजा के न्यायालय के साथ – साथ प्रान्तों, विषयों, नाडुओं तथा ग्रामों में अधीनस्थ न्यायालय भी थे। इनके निर्णयों से असन्तुष्ट होने पर ही मुकदमा शासक के पास पहुंचता था, लेकिन इन न्यायालयों के गठन, दण्ड के स्वरूप, उसकी सीमा आदि के के विषय में लेखों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। बिल्हण लिखता है कि विक्रमादित्य के

---

[1] दृष्टव्य, शास्त्री, के.ए. नीलकण्ठ, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 – 140.

समय रामराज्य था तथा लोग घरों में ताला नहीं लगाते थे।[1] इससे यह कहा जा सकता है कि यहां अपराध कम होते थे तथा देश में अमन – चैन था।

3. दोनों राजवंशों की न्याय सभा में प्राड्विवाक, अमात्य, ब्राह्मण और पुरोहितों का महत्व दिखाई पड़ता है जिसका उल्लेख अभिलेखों से भी प्राप्त होता है। शुक्र नीतिसार में यह व्यवस्था दी गयी है कि प्राड्विवाक, अमात्य, ब्राह्मण और पुरोहित के साथ धर्मशास्त्र के अनुसार वादी और प्रतिवादी के समक्ष क्रम से व्यवहारों को देखना चाहिए और उसे कभी अकेले निर्णय नहीं देना चाहिए।[2] सम्भवतः इसका पालन चालुक्य और राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था में होता था।

पुरोहितों को स्मृतियों में राजा के परामर्शदाताओं में बहुत अधिक उच्चतम स्थान दिया गया है, ये आध्यात्मिक विषयों में राजा और

---

[1] दृष्टव्य, पाण्डेय, आर.एन., प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० – 368.

[2] शुक्र 4.528, धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोध लोभ विवर्जितः। सप्राड्विवाक सामात्यः स ब्राह्मण पुरोहितः।

उसके परिवार का मार्गदर्शन मात्र करते थे[1], न्यायिक प्रशासन में भी इनकी मदद ली जाती थी।

4. चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की दण्ड व्यवस्था काफी उदार थी। अधिकांश अपराधों के लिए प्रायः अर्थदण्ड ही दिये जाते थे। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में चार प्रकार के अर्थ दण्डों का उल्लेख मिलता है और वहां यह भी कहा गया है कि यह दण्ड तथा वध दण्ड केवल राजा को ही देना चाहिए अन्य निर्णायकों को नहीं।[2] राजस्व के संबंध में कुछ सामाजिक अपराधों के लिए दण्डों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार "कुमारी कन्याओं से दुराचार करने का आठ सौ पण दण्ड करें। किसी का धन लेने पर 32 पण, सिर फटने पर चार पण, अधिक भार उठाने पर एक सौ आठ रूपया और नगर को मैला करने वाले को उसके ही अनुसार दण्ड देना चाहिए।" राजा द्वारा स्थानीय श्रेणियों को विशेषाधिकार दिये गये थे कि वे अपराधों के अनुसार दण्ड दें।[3] विक्रमादित्य प्रथम

---

1 दृष्टव्य, याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 - 363.

2 वृह0, 1.1.91.

3 का0इं0इं0, 4, पृ0 - 158.

के एक सामन्त भोगशक्ति के अजनेरी के अभिलेख्र से ज्ञात होता है कि राजा द्वारा स्थानीय व्यापारिक श्रेणियों को विशेषाधिकार दिये गये थे कि वे राज्य के निर्णयानुसार विभिन्न प्रकार के अपराधों पर निश्चित जुर्माना वसूल करें।[1] इसके अलावा कुछ अपराधों का निर्णय नगर के आठ या सोलह महाजन जो निर्णय दें, वही मान्य होता था।[2] अपराधी के सामाजिक स्तर के अनुसार यह जुर्माना घटता बढ़ता रहता था। राजा और नगर के प्रतिष्ठित लोगों को भी अपराधियों को दण्ड देने का अधिकार था, जिससे अपराधों की वृद्धि न हो।

5. दोनों ही शासन व्यवस्थाओं में न्याय को आधार मानकर सुधारवादी दृष्टिकोंण पर विशेष बल दिया गया था और सम्भवतः प्राचीन परम्पराओं को आधार मानकर समानता का सिद्धान्त प्रचलित करने का पूरा प्रयास किया गया था। कानून के समक्ष सभी समान थे और समस्त न्यायिक पदाधिकारियों से अपेक्षा की जाती थी कि न्याय प्रदान कने में भेदभाव की कोई गुंजाइश न रख्री जाए। निष्पक्ष न्याय - व्यवस्था दोनों ही राजवंशों

---

[1] वही, पृ0 - 158.

[2] वही.

में प्रचलित दिखती है और अपराध के अनुकूल दण्ड देने की व्यवस्था का पालन धर्मशास्त्र के नियमों के अनुकूल ही किया जाता था जिसकी पुष्टि तत्कालीन साहित्यिक स्रोतों से भी होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चालुक्य और राष्ट्रकूट समय में न्याय व्यवस्था परम्परागत नियमों पर आधारित थी। न्याय व्यवस्था के लिए अलग - अलग स्तरों के न्यायालय स्थापित थे, जो यह प्रमाणित करते हैं कि कोई भी व्यक्ति न्याय प्राप्त करने के लिए न्यायालय की शरण ले सकता था। न्यायालयों का मुख्य एवं सर्वोच्च अधिकारी राजा ही होता था, जो अपराधी को उसके दण्ड के अनुसार दण्डित करता था। यद्यपि चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में दण्ड व्यवस्था भी काफी सरल एवं उदार थी। इन कालों की समृद्धि और शान्ति को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की न्याय व्यवस्था जनता के लिए हितकर थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चालुक्य और राष्ट्रकूट न्याय व्यवस्था पूर्ण तथा प्रजा को सुखी और समृद्ध बनाने में पर्याप्त सहायक थी और दण्ड को आधार मानकर निष्पक्ष और उचित न्याय प्रणाली की स्थापना द्वारा लोगों को सही दिशा की ओर उन्मुख करने के लिए प्रेरित करती थी। न्यायाधीशों की योग्यता इस कार्य को सही अंजाम देने में सहायक होती थी। विधि के परम्परागत स्रोत भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका

निर्वाह करते थे और प्राचीन काल में समय – समय पर दिये गये न्यायाधीशों के निर्णय काफी महत्वपूर्ण माने जाते थे। जहां विधि नियमों पर ध्यान दिया जाता था, वहीं परम्परायें भी अपना विशेष महत्व रखती थीं। तत्कालीन न्यायिक प्रशासन की अनेक विशेषताएं आधुनिक न्यायिक व्यवस्था से काफी मेल खाती हैं। संवैधानिक नियमों के पालन में जिस तरह आधुनिक न्यायालय काफी सतर्क दिखते हैं, ठीक यही बात प्राचीन न्याय व्यवस्था में भी थी और एक तरह से शक्ति पृथ्क्करण (Theory of Sapration of power) सिद्धान्त को भी मान्यता दी गयी थी। राजा भले ही न्याय का प्रमुख स्रोत होता था, परन्तु उसकी न्याय सभा में विद्वान् ब्राह्मणों, न्यायाधीशों, प्रमुख अमात्यों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी जो राजा को न्याय प्रदान करने में सहायता करते थे और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि विधि नियमों को अनदेखा नहीं किया जाता था। अपराध के अनुकूल दण्ड व्यवस्था तत्कालीन न्याय व्यवस्था की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

अध्याय : ६

सैन्य प्रशासन

सैन्य प्रशासन

राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना सेना पर ही आश्रित होती थी। राज्य में आन्तरिक विद्रोहियों एवं विप्लवकारियों से राज्य की रक्षा करना सेना का मुख्य कर्तव्य होता था। उत्तर भारत की भाँति दक्षिण भारत में भी प्रायः सभी राजवंशों के साम्राज्य अपेक्षाकृत बड़े थे और उनके सुव्यवस्थित शासन के लिये सेना अत्यन्त आवश्यक थी। राजा के लिए सुसज्जित और सुसंगठित सेना की आवश्यकता बतलाते हुए शुक्र ने अपना मत व्यक्त किया है कि 'जिस राजा के पास नीति और सैन्यबल होता है उसके पास लक्ष्मी चारों ओर से दौड़कर आती है।[1]' आचार्य सोमदेव ने 'राजस्व मूल क्रमों विक्रमश्च' कह कर सैन्य बल का ही महत्व व्यक्ति किया है।[2] सोमदेव ने सैन्य बल के अन्तर्गत पैदल सेना के छः भेद – मौल, भृत्य, श्रेणीबल, मित्रबल, अमित्र और आटविक बल बतलाये हैं।[3] अन्य विचारकों ने भी राज्य के सप्तांगों में बल को ही अधिक महत्व दिया है। इस बल के अन्तर्गत उन्होंने पदाति, हस्ति, अश्व एवं रथ सेना की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। कहीं – कहीं छः प्रकार की

---

[1] शुक्र, 4.864.

[2] नीति०, 5.20.

[3] वही, 22.12.

सेना का भी उल्लेख हुआ है।[1] अनेक राजनीतिक विचारकों ने सेना के कई प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए पैदल सेना को महत्वपूर्ण बताते हुए उसके छः प्रकार का उल्लेख किया है[2] –

1. मौल सेना (वंश परम्परानुगत अर्थात् उत्तराधिकारी में प्राप्त सेना)
2. भृतक / भृत सेना (वेतनभोगी सैनिकों का बल)
3. श्रेणी सेना (व्यापारियों या अन्य समुदायों की सेवाएं जो समय पर राजा की सहायता करती थीं।)
4. मित्र सेना (मित्र राज्यों तथा सामन्त शासकों की सेना)
5. आटविक सेना (जंगली जातियों की सेना)

---

[1] मनु0, 7.185, काम0 नीति0, 18.2, 24-25, कामन्दक नीतिसार में 'षड्विधि बल' (192.2)का उल्लेख हुआ है।

[2] राम0, 6.17.24, अग्नि पु0, 242, 1-2, मानसोल्लास में भी इन छः प्रकारों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है –
मौलं भृत्यं तथा मेत्रं श्रैणमाटविकं बलम्।
अमित्रमपरं षष्ठं सप्तमं नोपलभ्यते।।
मानसोल्लास, 2.6.556.

6. अमित्र सेना (ऐसी सेना जो पहले शत्रुपक्ष की थी, जिस पर राजा ने विजय प्राप्त कर अपनी सेना का अंग बना लिया हो।)

अधिकांश साहित्यिक उल्लेखों में सेना के चार प्रकारों का विशेष उल्लेख हुआ है।[1] इन चार अंगों से उक्त सेना को *'चतुरंगिणी सेना'* कहा गया है। महाकाव्य काल में चतुरंगिणी सेना का प्रारम्भ एवं विकसित रूप देखने को मिलता है। आचार्य कौटिल्य ने भी पैदल, अश्वारोही, रथारोही एवं गजारोही सैनिकों का कई स्थानों पर उल्लेख किया है जो मौर्यकाल में चतुरंगिणी सेना विद्यमान होने का सूचक है।[2] चतुरंगिणी सेना का उल्लेख रूद्रदामन के जूनागढ शिलालेख में भी मिलता है।[3] ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना के चार अंग पदाति, अश्वारोही, रथ सेना एवं गज सेना थी।[4] दक्षिण भारतीय स्रोतों में भी अनेक स्थानों पर चतुरंगिणी सेना का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में सेना का परम्परागत संगठन आदि काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक प्रचलित रहा।

---

[1] कौ0अर्थ0, 9.21, काम0नीति0, 16.6: 18.4: 19.3.

[2] अर्थ0, 153-54/4.

[3] सरकार, डी.सी., सलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, भाग-1, पृ0 - 215.

[4] वाटर्स, पृ0 - 171.

कौटिल्य द्वारा वर्णित सैन्य पद्धति पर मौर्यकालीन संगठन पूर्वतः आधारित था। प्रायः सभी राजवंशों में भी सैन्य संगठन की इसी पद्धति को महत्व दिया गया। चालुक्यों और राष्ट्रकूटों का सैन्य संगठन भी न्यूनाधिक परिवर्तन अथवा संशोधन के साथ इसी परम्परा पर ही आधारित था।

दक्षिण भारत में शासन करने वाले चालुक्य शासकों ने शासन की बागडोर अपने हाथ में रखते हुए एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना अपनी प्रबल सैन्य शक्ति द्वारा किया और तत्कालीन राजनीति को प्रभावित किया। चालुक्य नरेश सर्वदा विजिगीषु होता था। वह राज्य विस्तार का यत्न करता था। इसलिए चालुक्यों का सैनिक तन्त्र शक्तिशाली और कुशल था। उसके पास सदा एक विशाल सेना रहती थी। इस सेना में हस्ति, अश्व, रथ और पैदल सेना समाविष्ट थी। चालुक्य अभिलेखों में चतुरंगिणी सेना का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। नवसारी से प्राप्त पुलकेशिराज के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है क विक्रमादित्य प्रथम की सेना, जिसमें हाथी, रथ एवं पैदल सैनिक थे, की वृद्धि दिन - प्रतिदिन हो रही थी।[1] यही नहीं पुलकेशिन के ऐहोल अभिलेख में अर्जित सैनिकों तथा 'मौल' प्रवृत्ति छः प्रकार के सैनिकों का स्पष्ट उल्लेख आया है।[2] राष्ट्रकूट अभिलेखों में

---

[1] का.इ.इ., 4-1, पृ0 -140.

[2] ऐहोल अभि0, श्लोक-29.

चालुक्य सेना का उल्लेख 'कर्नाटक सेना' के रूप में हुआ है, जो अपने शक्ति, पराक्रम एवं अनेक युद्धों को विजित करने के लिए प्रसिद्ध थी।[1] इस काल में सेना शक्तिशाली संगठन किया गया था।

चालुक्य काल में गज सेना को प्रमुखता प्राप्त थी, जिससे सेना में अधिक संख्या हाथियों की होती थी। ऐहोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि आप्पायिक एवं गोविन्द नाम के राजाओं ने अपनी हस्ति सेना से भीमा नदी का उत्तरी भाग विजित करने का प्रयास किया था।[2] चोल, चालुक्य और राष्ट्रकूट जैसे सभी शासक प्रायः हाथियों पर बैठकर ही सेना का नेतृत्व करते थे। वास्तव में प्राचीन काल से ही हस्ति सेना का सर्वाधिक महत्व था। हाथियों की गति की प्रशंसा सोमदेव के यशास्तिलक में भी की गयी है।[3] सेना की

---

[1] ध्रुव का वर्ष अभिलेख

"कांचीशकेरलनराधिप चोलपाण्ड्य श्री हर्षवज्रटविभेदविधानवक्षम्।
कनार्टक बलमचिन्त्यमज्येमत्ये."

[2] ऐहोल अभि0, श्लोक-17.

[3] सोमदेवस्य यशास्तिलक, 3.309, मानसोल्लास में भी हाथियों को पकड़ने की विधियों पर भी प्रकाश डाला गया है –

दशाबन्धों वारिबन्धौ बन्धुश्चानुगतः परः।
उत्तमस्त्रि प्रकारः स्याद बन्ण्धः कशटिनामयम्।।
आधाश्चावपातश्च द्वौ बन्धे निन्दितौ मतौ।
विनश्यन्ति गजा यस्मात् तस्मात् तौ परिवर्जयेत्।।
(मानसोल्लास, 23.186-87.)

शक्तियों का अनुमान हाथियों की संख्या के आधार पर लगाया जाता था।[1] इसी कारण इस काल में महावतों का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया था। सम्भवतः उन लोगों का गण या संघ था।[2] कामन्दक ने भी चतुरंग बल में सर्वाधिक उपयोगी अंग गज सेना को माना है एवं उनका मत है कि सुशिक्षित, संग्राम क्षेत्र का ज्ञाता, धैर्यवान पुरूष से अधिष्ठित युद्ध में अकेला हाथी, छः सौ शिक्षित अश्वों को मारने में समर्थ होता है। ऐहोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि पुलकेशिन की विशाल हस्ति सेना के अवरोध से कावेरी का समुद्र से संबंध विच्छेद हो गया था।[3] पुलकेशिन की सेना में हस्तियों की संख्या इतनी अधिक थी कि कुनाल झील का जल काले - काले बादलों के समान आच्छादित था।[4] इस काल में गज सेना के प्रधान को सम्भवतः 'महापीलुपति[5] एवं वीरकोष' कहा जाता था। ह्वेनसांग अपने यात्रा विवरण में लिखता है कि इस काल में सैनिकों एवं हस्तियों को युद्ध क्षेत्र में जाने से पहले मदिरा पान कराया जाता था, फिर इन हाथियों से बड़े - बड़े युद्धों को विजित कर लेते थे।[6]

---

[1] का.इं.इं., 4-1, पृ0 - 143.

[2] वही.

[3] ऐहोल अभि0, श्लोक-143.

[4] वही, श्लोक-28.

[5] का.इं.इं., 4-1, पृ0 -143.

[6] बील, लाइफ, पृ0 -146-147.

तत्कालीन अजन्ता की बौद्ध चित्रकला में भी हस्तियों का अच्छा चित्रण देखने को मिलता है।[1]

चालुक्य शासकों ने एक सुसंगठित अश्व सेना को भी अपने सैन्य बल में सम्मिलित किया था। सेना में हाथियों के साथ ही घोड़ों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। सोमेश्वर ने यवन देश एवं कम्बोज के घोड़ों का उल्लेख किया है।[2] मंगलेश की अश्व शक्ति के विषय में ऐहोल अभिलेख में उल्लेख आया है कि मंगलेश ने पूर्व समुद्र तट से पश्चिम समुद्र तट तक पड़ाव डालने वाले घुड़सवाल सैनिकों से उड़ी धूलि के वस्त्र से बना चंदवा मानो दिशाओं में लगवा दिया हो, ऐसा प्रतीत होता है।[3] पुलकेशिन द्वितीय एवं विक्रमादित्य प्रथम के पास चित्रकण्ड नामक एक घोड़ा था जिसके द्वारा उन्होंने अनेक युद्धों को जीता, जिसकी गति मन से भी अधिक तेज थी।[4] अजन्ता के चित्रों में भी

---

[1] का.इं.इं., 5, 9, पृ0 – 51.

[2] मानसोल्लास, 2.6.573. सैन्धवैर्यवनोदभूतेः कम्बोज–प्रभवेरपि।
शिक्षितैर्बहुभिवहिः संयुक्तं बलमत्तमम।।

[3] ऐहोल अभि0, श्लोक – 11.

[4] का.इं.इं.,4–1,पृ0–140.
मनौजवैक चित्रकंठारण्य प्रवर तुरंगमेणोपर्जिजतस्वस्वराज्य।

अश्वारोहियों का चित्रण मिलता है जहां वे अनेकानेक अंलकारों से सुशोभित दिखाए गए हैं।[1]

चालुक्य अभिलेखों में रथ सेना का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[2] भले ही बाद में इस सेना का महत्व धीरे – धीरे घटने लगा, परन्तु अन्य सैन्य अंगों की तरह प्राचीन भारत में इसका अपना महत्व रहा है। राज्याभिषेक और राजकीय उत्सव के अवसरों पर भी इस सेना की प्रमुखता रही है। अजन्ता की 17वीं गुफा के भित्ति चित्रों में अश्वों द्वारा संचालित रथों का चित्रण किया गया है।[3] स्पष्ट है कि इस काल की सेना में रथ का उपयोग होता था। चालुक्य सेना में पदाति सेना की भी प्रमुखता थी। सेना में पदाति सैनिकों की संख्या सर्वाधिक होती थी। प्रारम्भिक चालुक्य नरेश जयसिंह की सेना में पैदल सैनिकों का उल्लेख आया है।[4] सोमेश्वर ने पदाति सेना के अंगों पर प्रकाश डाला है।

चालुक्य साम्राज्य की नौ सेना एवं उसके संगठन के विषय में कोई निश्चित तथा विस्तृत सूचना नहीं मिलती

---

[1] इण्डि0ऐण्टी0, भाग–57, पृ0 –169.

[2] का.इं.इं., 4–1, पृ0–140.

[3] याजदानी, जी0, अजन्ता, भाग–4.

[4] एपि0इण्डि0, भाग–6, पृ0 – 8.

है। ऐसा अनुमान होता है कि समुद्री प्रान्त की रक्षा हेतु नौ - सेना रखना आवश्यक रहा होगा जिससे वे राज्य की रक्षा एवं बाहरी देशों के साथ व्यापार करते थे।[1] ऐहोल अभिलेख से ज्ञात होता है कि पुलकेशिन द्वितीय ने सैकड़ों नौकाओं की सहायता से लक्ष्मीस्वरूपा नगरी पुरी को जीतने की इच्छा से आक्रमण किया था।[2] इसी अभिलेख से ज्ञात होता है कि मंगलेश ने अपनी सेना से रेवती द्वीप पर विजय प्राप्त की थी।[3] निश्चित ही मंगलेश के पास एक संगठित नौ - सेना रही होगी। कीर्तिवर्मन द्वितीय के कंडूर पत्रों से ज्ञात होता है कि पुलकेशिन द्वितीय के पौत्र विजयादित्य ने अपनी नौ - सेना की सहायता से सीलोन (लंका) को अधिकृत किया था।[4] इस तरह चालुक्य नरेश किसी न किसी रूप में नौ - सेना का प्रयोग करते थे।

चालुक्य काल में अस्त्र - शस्त्रों की विशेष जानकारी नहीं मिलती है। महमूद गजनी के इतिहासकारों ने हिन्दू सेना के विरूद्ध प्रयोग हथियारों में तलवार, बरछी, धनुष - बाण तथा गदा का वर्णन किया है।[5] पूर्ववर्ती कालों

---

[1] दृष्टव्य महालिंगम, टी0वी0, साउथ इण्डियन पॉलिटी, पृ0 - 276.

[2] एपि0इण्डि0, भाग-6, पृ0 - 10.

[3] वही.

[4] एपि0इण्डि0, पृ0 - 151.

[5] इलियट, हिस्ट्री, ।। पृ0 - 30.

में भी अस्त्र – शस्त्र का प्रयोग होता था इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस काल में भी अस्त्र – शस्त्र का प्रयोग हुआ होगा। अजन्ता के चित्रों से ज्ञात होता है कि इस काल का पदाति सैनिक धनुष – बाण का प्रयोग करता था।[1]

प्राचीन भारत में सेना की छावनी को स्कन्धावार के नाम से सम्बोधित किया जाता था। सेना युद्ध प्रयाण के अवसर पर स्कन्धावार में रूकती थी। स्कन्धावार कहां और किस प्रकार का होना चाहिये, इस विषय में कौटिल्य ने विस्तृत रूप से उल्लेख किया है।[2] प्राचीन परम्परा का पालन करते हुए चालुक्य शासकों ने अपना स्कन्धावार स्थापित किया था।

सैनिक सुरक्षा हेतु राज्य में दुर्ग का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। अर्थशास्त्र, महाभारत एवं अन्य ग्रन्थों में इसका उल्लेख हैं। कौटिल्य ने दुर्ग के चार प्रकार बताये हैं। औदक, पार्वत, धान्वन और वन दुर्ग।[3] महाभारत में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख है – धन्वदुर्ग, महीदुर्ग,

---

[1] दृष्टव्य गुप्ते, आर.एस. एवं महाजन, वी.डी., अजन्ता, ऐलोरा केब्ज।

[2] कौटिल्य, अर्थ० – 1, वार्ता।

[3] अर्थ०, 2.3.

गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, मृत्तिकादुर्ग एवं वनदुर्ग।[1] मत्स्य पुराण में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया गया है – धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग और गिरिदुर्ग [2] इसमें गिरिदुर्ग को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[3] आचार्य सोमदेव सूरि ने औदक, पर्वत, धन्वह एवं वनदुर्ग पर विशेष प्रकाश डाला है।[4] उन्होंने दुर्ग के विशेष लक्षणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि दुर्ग की स्थापना विषम स्थान में होनी चाहिए और उसमें विशाल स्थान होना चाहिए तथा घास, ईंधन, पेय जल आदि की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए और साथ ही साथ उसमें वीर पुरूषों का निवास स्थान होना चाहिए।[5] राज्य के सप्तांग सिद्धान्त के अन्तर्गत भी दुर्ग को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। राजा से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपनी और अपने राज्य की सुरक्षा के लिए दुर्ग का निर्माण अवश्य कराए। सोमदेव सूरि का कहना है कि जिस राज्य में दुर्ग नहीं होता वहां राजा की पराजय होती है। जिस तरह समुद्र के बीच नौका से पृथक होने वाले पक्षी का कोई रक्षक नहीं होता, उसी तरह संकट काल में दुर्ग विहीन राजा की रक्षा

---

[1] महा0शान्ति0, 86.5.

[2] मत्स्य पुराण, 217.6-7.

[3] वही, 217.7, सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्ग प्रशस्यते।

[4] नीति0, 20.2.

[5] वही, 30.3.

करने वाला कोई नहीं होता।[1] दुर्ग राज्य की रक्षात्मक और आक्रामक शक्तियों का प्रतीक था। सैन्य शक्ति का सही प्रयोग दुर्ग से ही सम्भव था। इसीलिए यह मान्यता प्रस्तुत की गयी कि जिस राज्य में दुर्ग सुदृढ़ होता है वहां के राजा को परास्त करना काफी दुष्कर होता है। सोमेश्वर ने भी अपने ग्रन्थ *मानसोल्लास* में अनेक प्रकार के दुर्गों पर[2] प्रकाश डालते हुए गिरि दुर्ग और जल दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ बताता है।[3]

चालुक्य काल में सामरिक एवं सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों का महत्वपूर्ण स्थान था। राज्य का संचालन राजा यहीं से करता था। चालुक्यों की समय - समय पर तीन राजधानियां यथा - बादामी, ऐहोल एवं पट्डकल में थी, जिनमें से वातापी को दुर्गीकृत करने का स्पष्ट उल्लेख पुलकेशिन प्रथम के बादामी अभिलेख से आया है, जिससे ज्ञात होता है कि उसने वातापी को सर्वप्रथम सैनिक दृष्टि से 'पुर' का रूप देकर तथा किले का निर्माण कराया था।[4] वातापी का यह दुर्ग पार्वत दुर्ग था। मंगलेश के सैनिकों द्वारा रेवती द्वीप की चाहरदीवारी को चारों ओर से घेरने का

---

[1] वही, 20.4-5.

[2] मानसोल्लास, 2.3.541-542.

[3] वही, 2.3.549.

[4] ऐहोल अभि०, श्लोक-7,श्री वल्लभोडपययासीद्वातीपुरीवधूवरताम

उल्लेख आया है। यह जल दुर्ग था।[1] पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पिष्टपुर दुर्ग को जीतने का उल्लेख मिलता है।[2] अतः यह निश्चित है कि चालुक्यों ने अपने साम्राज्य में अनेक दुर्गों का निर्माण कराया था। एक शासक होने के नाते सोमेश्वर ने भी अपने ग्रन्थ *मानसोल्लास* में इसी कारण दुर्गों की श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला है।

जिस प्रकार साम्राज्य की सीमा विस्तार एवं साम्राज्य की सुरक्षा के लिए एक सुदृढ़ तथा सुसंगठित सैन्य बल का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार सैन्य बल को सुसंगठित बनाये रखने के लिए विभिन्न सैन्य अधिकारियों की भी आवश्यकता होती है। चालुक्य अभिलेखों से विभिन्न सैन्य अधिकारियों के विषय में सूचना प्राप्त होती है। सैनिक अधिकारियों में '*सेनाधिपति*', '*महादण्डनायक*' अथवा '*प्रचण्डदण्डनायक*', '*दण्डनायक*', '*करितुरगसाहिनी*' के उल्लेख प्राप्त हैं। *सान्धिविग्रहिक* अथवा *महासान्धिविग्रहिक* की युद्ध भूमि में काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। वह शत्रु-मित्र देशों के साथ सन्धि और विग्रह करता था। वही प्रशासनिक आदेशों का प्रारूप तैयार कराकर लिपिबद्ध करता था। चालुक्य लेखों में '*बलाधिकृत*' का उल्लेख मिलता है। वह मंत्री के साथ – साथ महासेनापति और दूतक भी हुआ करता था

[1] वही, श्लोक-13.

[2] वही, श्लोक-27.

जैसा कि नवसारी एवं सूरत पत्रों से स्पष्ट होता है। नवसारी पत्रों का लेखक बप्पभट्टि महाबलाधिकृत के साथ – साथ महासान्धिविग्रहिक भी था। *दुर्गपति* भी एक महत्वपूर्ण अधिकारी था। ज्ञातव्य है कि रेवती द्वीप का दुर्गपति विजय राज था। चालुक्यों के अधिकांश सेनापति ब्राह्मण होते थे और प्रायः पुश्तदरपुश्त चालुक्य शासकों की सैनिक सेवा में बने रहते थे।[1]

यहां कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध चालुक्य शासन में नाम कमाने वाले और अभिलेखों में अत्यन्त ही अधिक चर्चित राज्याधिकारियों के उल्लेख किये जा सकते हैं। तैलप द्वितीय के ढल्ल नामक राज्याधिकारी को 1007 के लक्कुण्डी से प्राप्त अभिलेख[2] में राज्य के सारे बोझ को ढोने वाला कहा गया है। सोमेश्वर प्रथम माहवमल्ल के समय वह अपने गौरव की चरम बिन्दु पर था। वह एक ऐसे परिवार का था, जिसने पुश्तदरपुश्त चालुक्यों की सैनिक सेवा में बड़े – बड़े पदों पर भार ढोया था। हैदरबाद के नागवावि (नागै – नागइ) अभिलेख[3] में उसके पूरे परिवार की प्रशंसायें गाई गई हैं। ऐसा ही एक अन्य सेनापति रविदेव था, जिसने विक्रमादित्य

---

[1] दृष्टव्य पाठक, विशुद्धानन्द, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0–171.

[2] साउथ इण्डि इन्स्कृप्शन्स, भाग–11,52,2,6–11,13,16वें श्लोक.

[3] हैदराबाद आर्केलाजिकल सीरीज, आठवां.

षष्ठ की सेवा[1] की थी तथा सोमेश्वर प्रथम के समय से ही चालुक्य प्रशासन के अनेक मुख्य - मुख्य पदों पर रहा था। सोमेश्वर द्वितीय के समय वह सेनाधिपति और हेरिसंधिविग्रहिक के रूप में नियुक्त था। येऊर अभिलेख में उसकी प्रशंसा में लिखे गये सात श्लोकों को नीलकान्त शास्त्री[2] ने कन्नड़ काव्य के उन उच्चतम नमूनों में बताया है, जिनका किसी भी अन्य भाषा में वास्तविक अनुवाद किया ही नहीं जा सकता।

विक्रमादित्य षष्ठ का धर्माधिकारी सोमेश्वर भट्टोपाध्याय था। वह बहुत बड़ा विद्वान् था, जिसने अनेक पदवियों को धारण किया। उसके वैदिक, आर्थिक ज्ञान के कारण ही विक्रमादित्य ने उसे महामात्य और धर्माधिकारी नियुक्ति किया था।[3] सम्भवतः वह आवश्यकता पड़ने पर राजा को सैन्य मंत्रणा भी देता था। अनन्तपाल नामक एक अन्य सेनापति ने विक्रमादित्य की आज्ञा से वेंगी की विजय की थी और उसकी ओर से वहां वह गर्वनर के रूप में भी नियुक्त किया गया था। कभी - कभी राजकुमारों द्वारा भी युद्ध का संचालन किया जाता था।

---

[1] 1079ई0 को ऐहोलयेऊर अभि0 का 1077 ई0

[2] याजदानी, जी0, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ् डेकन, 1-6, पृ0 - 397.

[3] गडग अभि0 (1098 ई0) एपि0इण्डि0, भाग-15, पृ0 352-354.

चालुक्य सम्राट् अत्यन्त महत्वाकांक्षी थे, अतः अपनी सैनिक व्यवस्था को शक्तिशाली एवं कार्यकुशल बनाने की उन्होंने भरसक चेष्टा की, किन्तु सैनिक संख्या के विषय में हमारे पास कोई जानकारी नहीं है। पुलकेशिन द्वितीय ने हर्ष को नर्मदा के किनारे दक्षिण में बढ़ने से रोककर पराजित किया था। ह्वेनसांग के अनुसार उस समय हर्ष की सेना में 5000 हाथी, 2000 घुड़सवार, 5000 पैदल सैनिक थे। राज्य का विस्तार करने के बाद उसने सैनिक शक्ति को पुनः बढाया जिससे उसके पास 60,000 हाथी और 1,00,000 घुड़सवार हो गये थे।[1] इतनी विशाल सैन्य शक्ति का प्रतिरोध पुलकेशिन द्वितीय ने कैसे किया होगा, निश्चित ही उनके पास अधिक शक्तिशाली सैन्य शक्ति थी जिससे वह हर्ष को दक्षिण में बढ़ने से रोकने में सफल हो सका। परमेश्वर वर्मन के कूरम पत्रों से स्पष्ट होता है कि विक्रमादित्य प्रथम की सेना में कई लाख सैनिक थे।[2] पुलकेशिन द्वितीय की नौ–सेना में सैकड़ों नौकाओं का उल्लेख मिलता है।[3] उपर्युक्त संकेतों एवं प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चालुक्यों के पास एक विशाल तथा संगठित सेना थी, जिससे वे अपने साम्राज्य को दक्षिणापथ में स्थिर रख सके।

---

[1] बील, लाइफ, पृ0 – 146.

[2] साउथ इण्डियन इंस्क्रिप्शन्स, 1, पृ0 – 148.

[3] ऐहोल अभि0, श्लोक–13.

दक्षिण भारत में शासन करने वाले राष्ट्रकूट शासकों की सैनिक शक्ति का आतंक उत्तर भारत में हिमालय की तलहटी से लेकर बंगाल तक, नीचे समुद्र के पश्चिमी तटों से लेकर पूर्वी तटों के बीच सर्वज्ञ और सुदूर दक्षिण में पूरे तमिलनाडु तक समान रूप से व्याप्त था जो इन दिशाओं में होने वाले उनके बार – बार के धावों से पूरी तरह प्रमाणित है। किसी की सैन्य टुकड़ी को संकट के समय किसी भी दिशा में भेजा जा सकता था। जैसा बनवासी वायसराय के अधीन दक्षिण सेना को अमोघवर्ष प्रथम ने साम्राज्य के मध्य तथा उत्तरी भाग में विद्रोहों का दमन करने भेजा था।[1] राष्ट्रकूटों के पास बहुत विशाल एवं शक्तिशाली सेना थी, जिसने दक्षिण भारत में महाशक्ति के रूप में शासन किया था। अभिलेखों द्वारा राष्ट्रकूट शासकों के सैन्य प्रशासन के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। राष्ट्रकूटों के समय में सेनाएं चतुरंगिणी नहीं थी। हम इस काल के अभिलेखीय साक्ष्यों तथा समकालीन मुस्लिम लेखकों के विवरणों से कभी भी युद्धों में रथों का वर्णन नहीं पाते हैं।[2] रथों का वर्णन केवल विशिष्ट जनरलों तथा सैन्य अधिकारियों के सम्मान सूचक के रूप में किया गया है।[3]

---

[1] एपि0इण्डि0, 6, पृ0 – 29.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0–248.

[3] एपि0इण्डि0, 13, पृ0 – 334 (गोविन्द चतुर्थ का कलश दानपत्र)

राष्ट्रकूट काल में पदाति सेना की सर्वाधिक प्रमुखता थी। मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों से हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट वाहिनी पदाति सैनिकों के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध थी।[1] अलमसूदी ने राष्ट्रकूट राजा बल्हर के बारे में कहा है कि उसकी सेना में हाथी तथा अश्व असंख्य थे लेकिन उसका मुख्य हथियार पैदल सेना थी।[2]

राष्ट्रकूट शासकों ने एक सुसंगठित अश्व सेना को भी अपने सैन्य बल में सम्मिलित किया था। स्वयं राजा गोविन्द द्वितीय को एक लेख में श्रेष्ठ घुड़सवार की संज्ञा दी गयी है[3] तथा ध्रुव, गोविन्द तृतीय तथा इन्द्र तृतीय ने समस्त भारत में तीव्र आन्दोलन एक शक्तिशाली घुड़सवार सेना की सहायता से किये थे। राष्ट्रकूटों द्वारा अश्वों की गुणवत्ता के प्रति सजग रहना सूचित करता है कि उनकी सेना में अश्वारोही बल को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। राष्ट्रकूटों के पास एक सशक्त हस्ति सेना भी थी। राष्ट्रकूट लेखों से यह सूचना मिलती है कि राष्ट्रकूट राजा दान्तिदुर्ग के हाथी माही

---

[1] दृष्टव्य मिश्र, एस.एम., दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ0 – 224.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0 – 248.

[3] कडवा लेख, एपि0इण्डि0,4, पृ0–34, "निणतुरंगमैकविजय नीतलक्ष्मी नाथः"

नदी में स्नान का आनन्द उठाते थे।[1] इसी प्रकार का एक अन्य उल्लेख गोविन्द तृतीय के बेटे अमोघवर्ष प्रथम के राजकवि का मिलता है, इसके अनुसार अमोघवर्ष के घोड़ों और हाथियों ने गंगा और यमुना के जल में स्नान किया था।[2] इसके अतिरिक्त कलस अभिलेख में भी हस्ति सेना के प्रधान का उल्लेख मिलता है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट सेना में हस्ति सेना का महत्वपूर्ण स्थान था।

अभिलेखीय साक्ष्यों में 'मौल बल' अर्थात् आनुवंशिक सेना का अक्सर उल्लेख मिलता है, जिसे सर्वाधिक प्रभावी तथा विश्वसनीय सेना माना गया है।[3] मुस्लिम लेखक उस समय की आनुवंशिक सेनाओं का उल्लेख करते हैं जो राजा के लिए बिना पारिश्रमिक के युद्ध करती थी।[4] अमोघवर्ष प्रथम ने विशेष रूप से बंकेय द्वारा केडल के किले को छीनने की प्रशंसा की क्योंकि यह आनुवंशिक (मौल) सेना द्वारा सुरक्षित था।

राष्ट्रकूट साम्राज्य की नौ सेना के विषय में कोई भी सूचना हमें न ही अभिलेखीय साक्ष्यों से और न ही

---

[1] दृष्टव्य याजदानी जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 - 240.

[2] वही, पृ0 - 252.

[3] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ0-250.

[4] इलियट, पृ0 -7.

मुस्लिम साक्ष्यों से प्राप्त होती है। यहां तक की राष्ट्रकूटों के कोंकण सामन्त शिलाहारों के अनुदानों से भी नौ सेना की स्थिति के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती है।[1] एक समकालीन लेखक अबुजैद से हमें पता चलता है कि पश्चिमी तट के कुछ राजा जैसे केपकमेरिन के राजा अपनी नौ सेना रखते थे। इसलिए यह असम्भव नहीं है कि राष्ट्रकूट साम्राज्य में भी नौ सेना हो, परन्तु इस बात का कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलता है। राष्ट्रकूट साक्ष्यों से सैनिकों द्वारा प्रयुक्त अस्त्र – शस्त्रों के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। पूर्ववर्ती काल में शासकगण तलवार, वरही, धनुष – बाण तथा गदा का प्रयोग करते रहे हैं। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये हथियार दक्कन में भी सेनाओं द्वारा प्रयोग किये जाते होंगे।

राष्ट्रकूट सेना युद्ध प्रयाण के अवसर पर स्कन्धावार में रूकती थी। इस तरह प्राचीन परम्परा का पालन इस काल में भी होता था। हम राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय को जून, 769 ई0 में हैदराबाद में करीब सौ मील दक्षिण पूरब में कृष्णा और मूसी के संगम पर राष्ट्रकूट सेना के साथ पड़ाव डालते पाते हैं।[2] इसी प्रकार हम कृष्ण तृतीय को 959 ई0 में उत्तरी अर्काट जिले के मेलपादि नामक स्थन

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ0 – 257.

[2] दृष्टव्य याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 – 244.

पर एक स्कन्धावर में पाते हैं।[1] तालेगांव अभिलेख से पता चलता है कि राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम ने 768 ई0 में गंगराज्य की राजधानी मान्यनगर में अपना स्कन्धावार स्थापित किया था।[2] इस आधार पर यह स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट काल में सैन्य प्रशासन के अन्तर्गत स्कन्धावार महत्वपूर्ण स्थान था।

प्राचीन भारतीय सैन्य बलों की चर्चा करते समय कौटिल्य जैसे लेखक दुर्गों को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताते हैं और अनेक प्रकार के दुर्गों का उल्लेख करते हैं। चूँकि सारा राष्ट्रकूट साम्राज्य पहाड़ी क्षेत्रों से परिपूर्ण था, अतः यह स्वाभाविक रूप से मान्य होगा कि उनके पास भी पर्वत दुर्ग थे। अमोघवर्ष का कोनूर अभिलेख[3] केडाल दुर्ग को जीतने के कारण बंकेय नामक सेनाधिपति की प्रशंसा करता है। स्वयं गोविन्द तृतीय के वनि – दिन्दोरी[4] और राधनपुर अभिलेखों[5] में कथित है कि उसने मोरखिण्ड के पर्वत दुर्ग पर निवास करते समय दानपत्रों का प्रकाशन कराया था। यह मोरखिण्ड नामक स्थान महाराष्ट्र के नासिक जिले में अब भी विद्यमान

---

[1] वही, दकन का प्राचीन इतिहास, पृ0 – 221.

[2] दृष्टव्य दुबे, हरिनारायण, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 – 150.

[3] एपि0इण्डि0,6, पृ0 – 157.

[4] इण्डि0ऐण्टी0, 11, पृ0 –157.

[5] एपि0इण्डि0, 6, पृ0 – 242.

है। अतः निश्चित है कि राष्ट्रकूटों ने भी अपने साम्राज्य में किलों का निर्माण कराया था।

राष्ट्रकूट अभिलेखों से ज्ञात होता है कि सैन्य बल को सुसंगठित बनाने के लिए अनेक सैन्य अधिकारी होते थे, परन्तु पूर्व प्राचीन काल की भांति सम्राट् ही सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। राष्ट्रकूट शासन तथा युवराज युद्धों में सक्रिय भूमिका निभाते थे जिसका प्रमाण बहुतायत से प्राप्त होता है।

राष्ट्रकूट काल में राजा के अधीन बड़ी संख्या में सेनानायक होते थे जो विभिन्न इकाईयों के प्रमुख थे। इन सेनानायकों का रूतबा पांचवाद्ययंत्र धारक महासामंतों के समान ऊँचा था। उन्हें हाथी, रथ तथा अन्य वैभवशाली वस्तुओं के प्रयोग का अधिकार था।[1] इन सेनानायकों को शासन द्वारा अत्याधिक सम्मान और आदर सूचक चिन्ह प्रदान किया जाता था।[2] इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट अभिलेखों में अन्य अनेक सैनिक अधिकारियों यथा *बलाधिकृत, दण्डनायक, महाप्रचण्डनायक, हस्ति सेना प्रधान* आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। हस्ति सेना के प्रधान का उल्लेख कलस अभिलेख[3]

---

[1] एपि०इण्डि०,13, पृ० - 334.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एंड देयर टाइम्स, पृ०-253.

[3] एपि०इण्डि०, 13, पृ० - 334.

में मिलता है। श्वान – च्वांग[1] ने भी पुलकेशिन के समय के महाराष्ट्र के सैनिकों की युद्धप्रियता, सैनिक साहस और वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा की हैं इससे यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि तत्कालीन राजवंशों में योग्य और साहसी सैनिकों की भर्ती होती थी जो राष्ट्र रक्षा के लिए हमेशा सचेत रहते थे। आचार्य सोमदेव सूरि ने भी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए उत्साह सम्पन्न सेना पर विशेष बल दिया है। उन्होंने इस प्रकार की सेना को उत्साहित सेना के नाम से सम्बोधित किया है। इस सेना के चार गुणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है कि सेना में क्षत्रियों की संख्या अधिक होनी चाहिए, उनमें साहस और शौर्य अधिक से अधिक विद्यमान रहना चाहिए, सैनिकों के पास पर्याप्त शस्त्र होने चाहिए और उन्हें शस्त्र विद्या में प्रवीण होने के साथ – साथ अपने स्वामी के प्रति विशेष अनुराग होना चाहिए।[2]

राष्ट्रकूट सेना में विभिन्न सैन्य बलों के सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिए अधिकारी होते थे। अमोघवर्ष प्रथम

---

[1] दृष्टव्य पाठक, विशुद्धानन्द, पांचवी–सांतवी शताब्दियों का भारत, पृ0 – 136–138.

[2] नीति0, 22.15.

के रोन[1] से प्राप्त एक अभिलेख में अश्व सेना के एक परीक्षण का उल्लेख है।

राष्ट्रकूट सेना में सभी वर्ण, जातियों व धर्मों के लोग भर्ती किये जाते थे, जिसमें ब्राह्मण एवं जैन उल्लेखनीय है। कृष्ण तृतीय का बेत्तगेरी अभिलेख[2] 'गणरम्भ' नामक ब्राह्मण की अमर स्मृति का वर्णन करता है, जिसने अपने गांव की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहूति दे दी। बड़े - बड़े सैनिक पदों एवं सेनापतियों के रूप में ब्राह्मणों की नियुक्ति उनके द्वारा युद्ध संचालन और युद्धों में उनकी मृत्यु के प्रमाण अभिलेखों से प्राप्त होते हैं।[3] ब्राह्मणों के अतिरिक्त राष्ट्रकूट सेना में बंकेय क्षत्रिय तथा नारसिंह आदि प्रसिद्ध जैन सेनानायकों के उल्लेख मिलते हैं जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सैनिक सेवा हेतु किसी जाति विशेष का कोई महत्व नहीं था। अधिकांश सेना या तो मौल (पिता पुत्र क्रम से चली आती हुई) अथवा सामन्तों की ही थी।

राष्ट्रकूट सेना की वास्तविक शक्ति व संख्या निर्धारित करने के लिए कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, परन्तु अलमसूदी आदि मुस्लिम इतिहासकारों ने राष्ट्रकूटों के

---

[1] एपि०इण्डि०, 13, पृ० - 138.

[2] वही, पृ० - 334.

[3] अलतेकर, ए.एस., पूर्वोक्त, पृ० - 249-250.

समकालीन अन्य राजवंशों की सेना के आधार पर इनकी संख्या ज्ञात करने का प्रयत्न किया है। अलमसूदी हमें सूचित करता है कि गुर्जर प्रतिहारों की चारों दिशाओं में लगाई गई चारों सेनाओं में से प्रत्येक की संख्या सात से नौ लाख थी।[1] सुलेमान का कथन है कि पाल सम्राटों की हस्ति सेना में 50,000 हाथी थे, परन्तु उसी के समकालीन इब्नखुर्दब ने हाथियों की संख्या केवल 5000 बताई है। चूँकि राष्ट्रकूटों का कई बार पालों एवं प्रतिहारों से संघर्ष हुआ और राष्ट्रकूट सदा विजयी रहे, अतः इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि राष्ट्रकूटों की सेना पालों एवं प्रतिहारों की सेनाओं से संख्या एवं शक्ति में कम नहीं रही होगी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासकों की सैन्य व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी, जिसकी सहायता से दोनों वंशों के शासकों ने एक लम्बी अवधि तक दक्षिण भारत में कुशलतापूर्वक अपने – अपने साम्राज्य का संचालन किया और दक्षिण भारत के इतिहास में युग निर्माता के रूप में जाने गये। दोनों ही राजवंश के शासक अपनी युद्ध प्रियता के लिए विख्यात थे। साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के नरेश होने के कारण इन्हें एक अच्छे सैन्यबल पर भी निर्भर रहना पड़ता था और योग्य सैन्याधिकारियों के माध्यम से विजयें प्राप्त करनी होती थीं। दोनों ही राजवंशों के शासक

[1] इलियट, 1, पृ0 –23.

इस बात से अवगत थे कि राज्य में सबसे बड़े दो प्रकार के कोप आते हैं – आन्तरिक कोप और वाह्य कोप। अमात्य, युवराज तथा परिवार के लोगों द्वारा दिया गया कोप आंतरिक कोप होता था और वाह्य कोप दूसरे राज्यों द्वारा दिया जाता था। इन दोनों प्रकार के कोपों से रक्षा हेतु सैन्य संगठन को मजबूत रखना अत्यन्त आवश्यक होता था। दोनों ही राजवंश के शासकगण अधिकांश हस्ति, अश्व और पैदल सेना पर निर्भर रहते थे। जहां तक जल सेना का प्रश्न है, इस सेना का उपयोग राष्ट्रकूटों के मुकाबले चालुक्यों द्वारा ज्यादा किया गया था जिसके प्रमाण अनेक युद्धों तथा अभिलेखीय साक्ष्यों से प्राप्त होते हैं। सामन्तों की सेना की भी उस समय काफी भूमिका होती थी।

चालुक्य और राष्ट्रकूट सैन्य प्रशासन में एक मुख्य अन्तर यह था कि राष्ट्रकूट प्रशासन सामन्तों की सेना पर काफी निर्भर करता था क्योंकि सेना का एक भाग आनुवंशिक सेना तथा सामन्तों की सेना का था। सेना का एक बड़ा भाग राष्ट्रकूट राजकुमार के पास रहता था। राष्ट्रकूट सेना की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें सभी वर्गों, जातियों तथा धर्मों के लोग भर्ती किये जाते थे, जिनमें जैन तथा ब्राह्मण प्रमुख थे। चालुक्यों की सेना में अधिकांश ब्राह्मण होते थे और प्रायः पुश्तदपुश्त चालुक्य शासकों की सैनिक सेवा में बने रहते थे। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट कालीन साक्ष्यों से युद्ध के समय प्रचलित अस्त्र – शस्त्र के विषय में कोई स्पष्ट

जानकारी नहीं मिलती है। सम्भवतः पूर्ववर्ती कालों की भांति युद्ध में धनुष – बाण, तलवार, भाला इत्यादि हथियार इस्तेमाल किये जाते होंगे। दोनों ही राजवंशों के सैन्य प्रशासन में सैनिक छावनियों का उल्लेख '*स्कन्धावार*' के रूप में मिलता है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अन्तर्गत चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में भी सेना का सर्वोच्च सेनापति सम्राट् ही होता था। राजा तथा युवराज ही महत्वपूर्ण युद्धों में सेना का संचालन स्वयं करते थे। राजा के अधीन बड़ी संख्या में सेनानायक होते थे। पूर्ववर्ती कालों की भांति चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में भी सैन्य प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। लेकिन चालुक्यों की अपेक्षा राष्ट्रकूट सेना की वास्तविक शक्ति व संख्या के विषय में कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलते, केवल अनुमान के आधार पर ही विद्वानों ने इसे निर्धारित करने का प्रयास किया है। इससे स्पष्ट है कि चालुक्य तथा राष्ट्रकूट के विस्तार और स्थापित का मुख्य आधार उत्कृष्ट सैन्य संगठन और कुशल संचालन था, जिससे इन्होंने दीर्घकाल तक सफलतापूर्वक शासन किया।

अध्याय - ७

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और कूटनीति

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध और कूटनीति

प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों के मध्य उनके पारस्परिक संबंधों का होना अन्तर्राष्ट्रीय संबंध कहलाता है। विभिन्न राज्यों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने का महत्वपूर्ण साधन दूत होता था। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को स्थापित करने में दूत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे, जिसकी पुष्टि प्राचीन भारतीय आचार्यों के लेखों से होती है। रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थ इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। कौटिल्य ने दूतों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है :-

(1) निसृष्टार्थ
(2) परिमितार्थ
(3) शासनहर

अमात्य के पद की समस्त योग्यतायें रखने वाले को निसृष्टार्थ दूत कहा गया है।[1] निसृष्टार्थ दूत अपने राजा के समस्त संदेश दूसरे राजाओं के समक्ष और दूसरे राजाओं के संदेश अपने राजा के समक्ष उपस्थित करते थे। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उनकी विशेष ख्याति होती थी। अमात्य के पद की तीन चौथाई योग्यतायें रखने वालों को परिमितार्थ

[1] कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 1.16.

दूत कहा गया है।[1] अमात्य के पद की आधी योग्यता वाले दूत को शासनहर कहा गया है।[2] कौटिल्य का मत है कि दूत का धर्म ही सत्य बात को कहना है।[3] सोमदेव सूरि के *नीतिवाक्यामृत* में भी दूत की तीन श्रेणियों – निसृष्टार्थ, परिमितार्थ एवं शासनहर पर प्रकाश डाला गया है।[4] पूर्ववर्ती काल की भांति सम्भवतः दक्षिण भारत में भी दूतों का महत्वपूर्ण स्थान अवश्य ही रहा होगा।

आधुनिक युग की भांति प्राचीन युग में भी दूत अधिकृत और प्रकाश्य रूप से भेदिये का कार्य करता था। उसका काम विदेशी राजपुरूषों से जान – पहिचान करके उस देश की वास्तविक राजनीति की जानकारी प्राप्त करता था। राज्य की साधारण स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना, उसके जन, बल और साधनों का ठीक – ठीक अनुमान करना और अपने गुप्तचरों द्वारा उसके दुर्ग और सेना का प्रमाणिक विवरण प्राप्त करना दूत के प्रमुख कार्य थे।[5] संस्कृत के 'दूत' शब्द का अभिप्राय भी सन्देशवाहक या वार्ताहर है और इससे यही

---

[1] कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 1.16.

[2] वही.

[3] वही.

[4] नीतिवाक्यामृत, 13.3.

[5] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 – 235.

अर्थ निकलता है कि वह किसी विशेष कार्य या प्रयोजन से ही भेजा जाता था।[1]

चालुक्यों ने अपनी कुशल शासन व्यवस्था से दूर – दूर तक अपने दूतों को भेजकर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने मधुर संबंध स्थापित किए। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट काल में दूतों के विषय में कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलता है।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को निर्धारित करने का प्रयास किया। कौटिल्य, मनु, सोमदेव, कामन्दक, जैसे आचार्यों के ग्रन्थों में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में तीन मूल तत्व निर्देशित किए गए हैं :-

1. मंडल सिद्धान्त
2. उपाय
3. षाड्गुन्य

मंडल सिद्धान्त पर प्राचीन भारतीय राजनीतिक ग्रन्थों में विशेष बल दिया गया है। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित मण्डल सिद्धान्त का राजनीतिक क्षेत्र में अपना विशेष महत्व है। अन्य राजनीतिक विचारकों में मनु[2] और कामन्दक[3] ने

---

[1] वही.

[2] मनु0 7, 154-159.

[3] काम0 सर्ग-9.

भी इस सिद्धान्त पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। सोमदेव भी इसी मत के पोषक जान पड़ते हैं। मण्डल सिद्धान्त के अनुसार कौटिल्य ने राजाओं के 12 भेद विजीगीषु, अरिमित्र, मित्र मित्र, अरिमित्र मित्र, पष्णिग्राहसार, आक्रन्द, पष्णिग्राहसार, आक्रन्दसार मध्यम एवं उदासीन हैं।[1] सोमदेव ने भी राजाओं को इन्हीं श्रेणियों में परिगणित किया है।[2]

मंडल सिद्धान्त पड़ोसी राज्यों के पारस्परिक संबंधों की विवेचना करता है। यह सिद्धान्त विजिगीषु राजा (विजय प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाला) का सिद्धान्त है। जिसका सम्बन्ध राज्य में सीमा विस्तार से है। कौटिल्य के अनुसार आत्म, प्रत्य, प्रकृति आदि की सम्पत्ति से सम्पन्न और राजा विजिगीषु कहलाता है।[3] मंडल का केन्द्र बिन्दु विजिगीषु माना गया है। यह ऐसा शान्ति सम्पन्न राजा है जो अन्य राजाओं को विजित करने की इच्छा रखता है। मंडल सिद्धान्त का मूल तत्व यह है कि एक राजा का पड़ोसी राज्य स्वाभाविक रूप से उसका शत्रु राज्य होता है। अतः विजिगीषु राजा के राज्य की सीमा से लगा हुआ जो राज्य होता है, वह अरि शत्रु राज्य होता है अर्थात् दो पड़ोसी राज्य जिनकी सीमाएं मिलती हैं, एक दूसरे के प्राकृतिक शत्रु होते हैं। शत्रु राज्य के बाद स्थित राजा पहले राज्य का मित्र होता है, क्योंकि

[1] कौटिल्य अर्थशास्त्र, 6.2, 23-30.

[2] सोमदेव नीति, 20.29.

[3] अर्थशास्त्र, 6.2-16.

दोनों का एक ही शत्रु है। इनके अतिरिक्त मध्यम और उदासीन राज्य होते हैं। मध्यम राज्य की सीमा विजिगीषु तथा उसके शत्रु राज्य की सीमा मिलती है। उसका ध्येय यह रहता है कि विजिगीषु और उसके शत्रु के मध्य शत्रुता बनी रहे। साथ ही वह इतना शक्तिशाली भी है कि दोनों का सम्मिलित प्रतिरोध कर सके। उदासीन राज्य की सीमा विजिगीषु, अरि तथा मध्यम तीनों राज्यों की सीमा से दूर रहती है। इस प्रकार मण्डल के अन्तर्गत बारह राज्य माने गये हैं। उनका मुख्य ध्येय देश में शक्ति संतुलन बनाये रखना था।

प्राचीन भारतीय राजनीति के अन्तर्गत कुछ करने से पूर्व राजनीतिज्ञों ने कुछ उपायों से शत्रु को वश में करने का उल्लेख किया है। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में इसका विशेष महत्व है। उपायों के अन्तर्गत कुछ नीतियां निम्नवत् है :-

(1) साम
(2) दाम
(3) दण्ड
(4) भेद

➢ **साम** :-

शांतिपूर्ण उपायों के साथ शत्रु को वश में करना।

➢ **दाम :-**

जब अल्पअर्थ शत्रु को प्रसन्न करने के लिए निमित्त प्रदान किया जाता है तो उसे दाम कहते हैं। दूसरे शब्दों में शत्रु के राज्य को थोड़ा धनादि भेंट स्वरूप देकर उसे अपने पक्ष में कर लेने को दान नीति कहते हैं। यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय जगत में पथ प्रदर्शक कही गयी है।[1]

सोमेश्वर[2] ने मानसोल्लास में दान के सबसे ज्यादा प्रकारों पर प्रकाश इस प्रकार डाला है :-

1. ***अभीष्ट दान*** – अभीष्ट वस्तु का दान करना।
2. ***हाय दान*** – कुटुम्ब के भरण पोषण हेतु दान देना।
3. ***देश्य दान*** – शत्रु को राष्ट्र समर्पित करना।
4. ***काज दान*** – राष्ट्र की आय प्रदान करना।
5. ***दन्ति दान*** – गज प्रदान करना।
6. ***सरितज दान*** – अश्व प्रदान करना।
7. ***ग्रामिज दान*** – ग्राम तथा उसकी आय प्रदान करना।
8. ***शामन देय*** – स्थायी देय।
9. ***भूषावसन दान*** – रत्न, आभूषण तथा वस्त्रों का दान।

---

[1] राव, गांधीजी, डिप्लोमेसी इन ऐन्शियंट इण्डिया, पृ० – 160–61.

[2] मानसोल्लास, 2.1009–24.

10. ***पतपत्तिज दान*** – आसन, चामर, छत्र आदि का दान।

11. ***आकर दान*** – आकरों का स्वामित्व प्रदान करना।

12. ***रुक्मज दान*** – मुद्रा दान करना।

13. ***कन्यादान*** – आभूषणों से सुसज्जित कन्या का दान।

14. ***वैश्यादान*** – वैश्या का दान।

15. ***सभाबेलाकरदान*** – समुद्रतटीय पट्टन का दान।

➢ **दण्ड :-**

युद्ध द्वारा बलपूर्वक शत्रु को वश में करना।

सोमेश्वर ने दण्डनीति पर प्रकाश डालते हुए उसको दो भागों में विभाजित किया है। बलिष्ठ शत्रु के प्रति दण्ड एवं निर्बल शत्रु के प्रति दण्ड। बलिष्ठ के प्रति दण्ड के उपभेदों का उल्लेख इस प्रकार किया है[1] :-

1. ***देशनाशक दण्ड*** – शत्रु के वनों, ग्रामों एवं जलाशयों को नष्ट करना।

2. ***जनांगछेदक दण्ड*** – शत्रु देश के निवासियों का अंग भंग करना।

---

[1] मानसोल्लास, 1.2.1030–77.

3. ***ग्रोग्राह दण्ड*** – शत्रु देश शत्रुओं का बलात अपहरण करना।

4. ***धन्यहरण दण्ड*** – शत्रु देश के धान्य का अपहरण करना।

5. ***बन्दीग्राह दण्ड*** – शत्रु राज्य के लोगों को बन्दी बनाना।

6. ***देशहारक दण्ड*** – शत्रु राज्य की प्रजा को अभयदान देकर उसके राष्ट्र को स्वराष्ट्र में मिलाना।

7. ***धनादान दण्ड*** – शत्रु के ग्रामों पर आक्रमण करके वहां की सम्पत्ति पर कब्जा करना।

8. ***सर्वस्वहरण दण्ड*** – शत्रु के नगर पर आक्रमण करके उसके धन – धान्य, पशु – वस्त्र आदि का अपहरण करना।

9. ***दुर्गभंग दण्ड*** – शत्रु के दुर्गो पर आक्रमण करके वहां के निवासियों को पीड़ित करना।

10. ***स्थानदाह दण्ड*** – शत्रु के महल एवं अन्य गृहों पर आग लगा देना।

11. ***देश निर्वासिक दण्ड*** – शत्रु को देश से निष्कासित करना।

12. ***युद्ध दण्ड*** – शत्रु से युद्ध करना दण्ड का अन्तिम तरीका है। इस संदर्भ में चालुक्य शासकों ने अनेक युद्धों द्वारा शत्रु को न केवल दण्ड दिया बल्कि उनके राज्यों को भी अपने राज्य में मिला लिया था।

➢ भेद :–

शत्रु उसके मित्र तथा प्रकृतियों में भेद उत्पन्न करना अथवा मनमुटाव पैदा करना भेद है। उल्लेखनीय है कि पुलकेशिन द्वितीय ने भेद नीति द्वारा गोविन्द को अपनी ओर मिलाकर आप्पायिक को पराजित कर गौरव प्राप्त किया था।[1] राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय ने अपने बड़े भाई स्तम्भ के विरूद्ध उसके सैनिक संघ का जिस तीरता और बुद्धिमानी से उसने मुकाबला किया तथा हारे हुए शत्रुओं को भी ऊंचे – ऊंचे ओहदे देकर उसने उन्हें अपनी आधीनता मानने को जैसे विवश कर दिया, वह

---

[1] ऐहोल लेख, श्लोक–17, एपि0इण्डि0, 6, पृ0 – 1–12.

उसकी उच्चस्तरीय राजनीति तथा साम, दाम, दण्ड, भेद के कुशल प्रयोग का परिचायक है।[1]

महाभारत में इन चार उपायों[2] के साथ – साथ सात और उपायों का उल्लेख मिलता है – यंत्र, औषधि, इन्द्रजाल, साम, दान, भेद और दण्ड[3]। कामन्दक आदि कतिपय आचार्यों ने भी सात उपायों का उल्लेख किया है – साम, दाम, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा तथा इन्द्रजाल।[4] वास्तव में किसी भी राज्य की वैदेशिक नीति उपायों पर ही आश्रित होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध का तीसरा आधार षाडगुन्य है। प्रायः सभी राजनीतिक ग्रन्थों[5] में छः गुणों का उल्लेख है।

➢ **संधि :-**

दो राजाओं में जो मेल हो जाता है, उसे संधि की संज्ञा दी गयी है। उल्लेखनीय है कि जब चालुक्य साम्राज्य पर भ्रातघातकरूपी संकट आया तो जय सिंह, सामेश्वर

---

[1] पाठक, विशुद्धानन्द, दक्षिण भारत का इतिहास, पृ0 – 81.

[2] (सभा0) 5.11, (अरण्य0)149., (शान्ति0) 104.35.

[3] सभा., 5.111.

[4] काम0नीति, 17.3.

[5] महा0 12.69.64, कौ.अर्थ. 7.1–3, काम. नीति. 18.3, शुक्र0 4. 1.66.

द्वितीय के विरूद्ध हो गया और सम्भवतः चालुक्य नरेश को हटाने के लिए विक्रमादित्य से षड्यंत्र किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे उत्तेजित होकर सामेश्वर ने मालवा के विरूद्ध युद्ध घोषित किया तथा परमार आधिपत्य को विनष्ट करने के लिए भीम प्रथम के उत्तराधिकारी गुजरात शासक कर्ण के साथ मैत्री संबंध स्थापित किया।[1] सोमेश्वर प्रथम की भांति सामेश्वर द्वितीय ने भी शत्रुओं को मित्र बना लेने तथा मित्र को शत्रु बना लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई।[2] पुलकेशिन द्वारा कावेरी नदी को पारकर चोड़, केरल, पाण्ड्य राजाओं से मित्रता स्थापित करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[3]

➢ विग्रह :-

किसी राजा का दूसरे राजा के प्रति अपराध करना विग्रह कहलाता है। सोमेश्वर के मानसोल्लास में विग्रह उत्पन्न होने के आठ कारण बताए हैं[4] :-

कामज (स्त्री), लोभज (धन अपहरण), भूभव (भूमि अपहरण), मानसंभव (मान की रक्षा), अभयास्य (शरणागत रक्षा), इष्टजा (मित्र, बन्धु भृत्यु के कारण),

---

[1] एपि०इण्डि०, भाग-2, पृ० - 185.

[2] दृष्टव्य पाठक विशुद्धानन्द, पूर्वोक्त, पृ० - 150-156.

[3] ऐहोल अभिलेख, श्लोक-31, एइ०, भाग-6, पृ० - 1-12.

[4] मानसोल्लास, 2.12, 734-742.

मदोत्पि (मादेश अथवा विधा, धन, यौवनात्पद, पद एवं अविवेक) एवं एक प्रत्याभिलाषक (एक ही वस्तु प्राप्ति की अभिलाषा)।

➢ **आसन :-**

परिस्थिति की प्रतीक्षा में चुप – चाप बैठे रहने को आसन गुण की संज्ञा दी गयी है।

➢ **यान :-**

विजिगीषु द्वारा शत्रु पर विजय हेतु गमन करना यान कहलाता है।

➢ **संश्रय :-**

शत्रु का विजिगीषु अथवा किसी बलवान राजा के प्रति आत्मसमर्पण करना संश्रय गुण माना गया है। सोमेश्वर के अनुसार शक्तिहीन राजा द्वारा अपनी विजय के लक्षण न दिखाई देने पर अथवा अधिक शक्तिशाली शत्रु द्वारा पीड़ित किये जाने पर शेष स्थान का आश्रय लेना संश्रय है।[1]

---

[1] मानसोल्लास, 2.15, 449.

➢ **द्वैधीभाव :–**

एक राजा से सन्धि करके दूसरे से विग्रह करने को द्वैधीभाव गुण माना गया है। सोमेश्वर[1] ने द्वैधीभाव के अंगों को इस प्रकार व्यक्त किया है :–

1. ***मिथ्याचित द्वैधीभाव*** – चित्त से शत्रु का विरोध करना परन्तु सामने अच्छे वचन बोलना।
2. ***मिथ्यावचन द्वैधीभाव*** – वचन को प्रिय कहना परन्तु शत्रु को हानि पहुंचाने वाला कार्य करना।
3. ***मिथ्याकरण द्वैधीभाव*** – एक तरफ शत्रु का विश्वासपात्र बनना तथा दूसरी तरफ गुप्त ढंग से विनाश के लिए सोचना।
4. ***उन्मयवेतन द्वैधीभाव*** – एक पक्ष से गुप्त तरीके से वेतन प्राप्त करना। दूसरे पक्ष से सबके संज्ञान में वेतन प्राप्त करना, परन्तु उनके गुप्त मंत्र का ज्ञान प्राप्त करने स्वामी को अवगत करा देना।
5. ***युग्मप्राभृतक द्वैधीभाव*** – एक राजा से शत्रु अवरोध की बात करना, परन्तु दूसरे को अश्व, गज आदि देकर ये कहना कि "मैं तुम्हारे शत्रु का अवरोध करुंगा।"

[1] वही, 2.16, 955-60.

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में षाड्गुण्य नीति अत्यधिक सफल सिद्ध हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में तीन शक्तियों का यथावत् प्रयोग आवश्यक है :– उत्साह, प्रभु तथा मंत्र शक्ति।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में कामन्दक, सोमदेव आदि ने इन तीन शक्तियों का उल्लेख किया है। आचार्य सोमदेव सूरि का कथन है कि यदि राजा युद्धकाल में उक्त तीनों शक्तियों से युक्त होता है तब उसकी विजय अवश्य होती है। इसके अभाव में पराजय ही होती है।[1] इस तरह साहित्यिक ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों से संबंधित विभिन्न नीतियों पर प्रकाश डालते हैं।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासकों ने अपनी सुदृढ़ सैन्य शक्ति एवं कुशल प्रशासनिक संगठन के बल पर दक्षिण भारत में दीर्घ अवधि तक शासन किया। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राजाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में कुछ महत्वपूर्ण विवरण हमें प्राप्त होते हैं।

मुस्लिम लेखकों ने महाराष्ट्र से संबंधित विवरणों से फारस के मुसलमान शासकों के साथ पुलकेशिन द्वितीय के दूत – सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त गुजरात और महाराष्ट्र से अरब देशों में व्यापार सम्बन्धी

[1] सोमदेव, नीति0, 29.41.

अरब लेखकों के उल्लेखों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि पुलकेशिन सैन्यकला में जितना दक्ष था, शान्तिकालीन कार्यों में भी उतना ही प्रवीण था। 'उत्तरापथेश्वर' हर्षवर्धन से उसकी सैनिक भिड़ंत का कारण कदाचित् पश्चिमी भारत स्थित समुद्र तट से होकर भारत - अरब व्यापार ही था, जिसका लाभ दोनों ही लेना चाहते थे। अरब देशों, मध्य एशिया और योरोप का उत्तरी भारत से होने वाला सारा व्यापार मालवा से होकर ही सम्भव था, अतः पश्चिमी तट के भृगुकच्छ से प्रारंभ कोंकण तट के सभी बन्दरगाहों तक पहुंच व्यापार की दृष्टि से दोनों ही पक्षों के लिए बड़ी आकर्षक रही होगी। इसी कारण लाट, मालवा और गुर्जर क्षेत्रों में पड़ने वाले छोटे - छोटे राज्यों पर दोनों के बीच की सैनिक प्रतिस्पर्धा के मूल कारण सिद्ध हुए। इन सभी क्षेत्रों को स्वदेशी और विदेशी व्यापार से होने वाले लाभ और उनकी धन सम्पत्ति के उल्लेख श्वा - न - च्वांग प्रशंसात्मक शब्दों में करता है। तद्नुसार उज्जयिनी की "जनसंख्या धनी थी और लोग धनी थे"। सुराष्ट्र के बारे में वह कहता है कि "चूँकि यह पश्चिम की ओर जाने वाले समुद्री मार्ग पर स्थित है, यहां के सभी निवासी समुद्र से ही अपनी जीविका चलाते हैं और व्यापार द्वारा क्रय - विक्रय का काम करते हैं"। बल्लभी की "जनसंख्या धनी थी और लोग धनसम्पन्न थे। दूर - दूर से बहुमूल्य वस्तुएं वहां लायी जाकर इकट्ठी की गयी थीं। वहां लगभग एक सौ ऐसे

परिवार थे, जिनके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी[1]"। स्पष्ट है कि पुलकेशिन द्वारा महाराष्ट्र, गुजरात और कोंकण के लोगों की धन सम्पत्ति और सुखोभोग के पीछे एक सशक्त शासन द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय संबंध थे।

चालुक्य वंश के कुशल शासन व्यवस्था के अन्तर्गत पुलकेशिन द्वितीय ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अन्तर्गत फारस के शाही राजदरबार से अपने दूत संबंध स्थापित किये। टबरी का कथन[2] है कि उसने फारस के द्वितीय खुसरूपरवेज के यहां अपना एक दूतमण्डल भेजा था। ऐसा उसने खुसरू के शासन के 36वें वर्ष अर्थात् 625 ई0 - 26 ई0 में किया। टबरी दूत भेजने वाले इस भारतीय राजा का नाम प्रमश या प्रमेश बताता है, जो पुलकेशिन द्वितीय की उपाधि थी। चूँकि यह उपाधि भारत के अन्य राजाओं यथा हर्ष की भी थी, कुछ विद्वानों ने प्रमेश की पहचान को पुलकेशिन के साथ जोड़ने को अस्वीकार भी किया है।[3] अजन्ता की गुफा नम्बर एक में भी एक ऐसा चित्र उकेरा गया है, जिसे कुछ विद्वानों ने द्वितीय खुसरू और बेगम शीरीन के रूप में पहचानते हुए पुलकेशिन द्वितीय के दरबार में किसी फारसी दूतमण्डल के

---

[1] वाटर्स, भाग-2, पृ0 - 237-245 तक।

[2] दृष्टव्य मजूमदार, रमेश चन्द्र, दि क्लासिकल एज, पृ0 - 627.

[3] दृष्टव्य शास्त्री, नीलकंठ, फारेन नोटिसेज ऑफ् साउथ इण्डिया, पृ0 - 97.

भेजे जाने की कल्पना की है।[1] परन्तु इस पहचान पर भी विवाद है। इन विवादों के बीच यहां इस तथ्य पर ध्यान दिया जा सकता है कि आगे चलकर चालुक्य शासक विनयादित्य के दरबार में फारस की राजधानी में मची उथल - पुथल के कारण किसी फारसी राजकुमार ने शरण ली थी। इससे प्रमाणित होता है कि दोनों दरबारों में आपसी संबंध थे। विक्रमादित्य प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र विनयादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसने अपने पिता के जीवित रहते ही शासन संभाल लिया था। विनयादित्य के अभिलेखों में विस्तृत विजयों का श्रेय दिया गया है। उसने पल्लवों, कलभ्रों, केरलों, कल्चुरियों, मालवों, चालों, पाण्डवों तथा अन्य शक्तियों को अपने अधीन किया। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार उसने कवेर, पारसिक, सिंहल तथा अन्य द्वीपों को भेद अथवा कर देने पर बाध्य किया। यह सच है कि सिंहल और फारस के दरबारों में इस समय उथल - पुथल मची हुई थी और वहां के कुछ राजकुमारों ने बादामी के राजदरबार में शरण ली थी, जिससे पता चलता है कि चालुक्यों का अन्तर्राष्ट्रीय संबंध अनेक बाहरी देशों के साथ भी था।

चालुक्य शासकों ने भी पूर्ववर्ती कालों की भांति राज्यों को जोड़ने हेतु वैवाहिक संबंधों का सहारा लिया जिसके अन्तर्गत विष्णुवर्धन ने अपनी पुत्री शील महादेवी का

---

[1] दृष्टव्य याजदानी, जी0, अजन्ता, 1, पृ0 - 46-49,
शास्त्री, नीलकंठ, फॉरने नोटिसेज ऑफ् साउथ इण्डिया, पृ0 - 9.

विवाह राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव प्रथम के साथ किया। गंग नरेश ने अपनी पुत्री का विवाह विजेता पुलकेशिन द्वितीय से किया, जिनसे विक्रमादित्य उत्पन्न हुआ। सबसे मुख्य बात यह है कि जब 642 ई0 में पल्लव नरेश नरसिंहवर्मन प्रथम से युद्ध करते हुए पुलकेशिन द्वितीय वीरगति को प्राप्त हो गया तो 642 – 55 ई0 अर्थात् 13 वर्षों तक बादामी पर पल्लवों का अधिकार स्थापित रहा। 655 ई0 में जब विक्रमादित्य प्रथम ने अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिए समकालीन पल्लव नरेशों को पराजित किया तो उसे अपने नाना गंग नरेश दुर्वनीति से काफी सहायता प्राप्त हुई थी।[1] इस प्रकार इन संबंधों के कारण ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत में विक्रमादित्य को काफी सहयोग प्राप्त हुआ था। राष्ट्रकूट वंश के संस्थापक दन्तिदुर्ग ने भी अपनी पुत्री रेवा का विवाह पल्लव नरेश नन्दिवर्मन द्वितीय के साथ किया था, जो बाद में पल्लव नरेश दन्तिवर्मन की माँ बनीं। दन्तिदुर्ग ने अपने अभिमान में कांची पर अधिकार भी कर लिया था, जो पल्लवों की राजधानी थी, परन्तु बाद में उपरोक्त वैवाहिक संबंध के कारण नन्दिवर्मन द्वितीय को कांची वापस कर दिया।[2]

चालुक्य शासन काल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को सुचारू रूप से चलाने के लिए विदेश विभाग होता था। इस

---

[1] दृष्टव्य दि क्लासिकल एज, पृ0 – 242.

[2] दृष्टव्य मिश्र, श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ0 – 203.

विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी 'महासान्धिविग्रहिक' कहलाता था।[1] यह अमात्य होता था। इसका पद इस काल में बहुत महत्वपूर्ण था। युद्ध और सन्धि के विषय में अन्तिम निर्णय उसी की राय से होता था। सन्धि की शर्तें भी तैयार करना उसी का काम था। साथ ही उसके पास पूर्वकालीन अन्य राज्यों के साथ संबंधों, विजयों और पराजयों की पूरी सूचना रहती थी। इस विभाग का कार्य किस प्रकार चलता था, इसकी सूचना अभिलेखों से नहीं मिलती। इस काल में अनुदान - पत्र लेखन का कार्य प्रायः इसी विभाग द्वारा होता था। सम्भवतः राजा के मौलिक आदेशों के अनुसार अनुदान - पत्रों को लिपिबद्ध किया जाता था।[2] चालुक्यों के अधिकांश अनुदान इसी विभाग द्वारा लिपिबद्ध किये गये थे।

शासन व्यवस्था में राष्ट्रीय प्रबन्धन के साथ ही साथ विश्व शान्ति और दूसरे राष्ट्रों के साथ दूत संबंध और अन्तर्राष्ट्रीय मधुर संबंध बनाना भी एक आवश्यक कार्य था। पारस्परिक सहयोग, मैत्री संबंध और मानवीय संकट कालीन स्थिति को सुधारने के लिए ही प्राचीन काल से दूसरे राष्ट्रों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करना एक आवश्यक कृत्य माना गया है, जिससे मानवता की सुरक्षा, संकटकालीन स्थिति में सहयोग, पारस्परिक विवादों की समस्या का

---

[1] एपि0इण्डि0,भाग - 19, पृ0 - 65.

[2] वही, भाग-21, पृ0-139, मिताक्षरा-याज्ञ0 स्मृति, अध्याय-1, खण्ड-5. पृ0-320.

समाधान और व्यापार में वृद्धि भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के आधार पर होता है, जिससे आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

चालुक्य नरेश अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए समय – समय पर अपने दूत मण्डलों द्वारा दूसरे देशों के साथ राजनीति संबंध स्थापित करते थे। चालुक्य राजवंश ने अपनी कुशल शासन व्यवस्था के माध्यम से दूर – दूर तक अपने दूतों को भेजकर अन्तर्राष्ट्रीय जगत से अपने मधुर संबंध स्थापित करके व्यापार में भी वृद्धि की। इस प्रकार चालुक्य राजाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने में विशेष रूचि ली थी। राष्ट्रकूट नरेशों ने अपनी सफल नीतियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। उन्होंने वैवाहिक संबंधों द्वारा दूसरे राजवंशों के साथ अपने महत्वपूर्ण सम्बन्धों को स्थापित करने का यथेष्ट प्रयास किया।

अध्याय - ८

सामन्तवादी व्यवस्था

सामन्तवादी व्यवस्था

भारतीय राजनीति में सामन्तवादी व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन काल से ही अस्तित्व में थी। प्राचीन भारत में मौर्य, गुप्त, वर्धन, गुर्जर, चोल, चालुक्य तथा राष्ट्रकूट आदि साम्राज्यों में इस प्रकार की प्रथा बहुतायत से देखने को मिलती है। यहां तक कि विदेशी निरीक्षकों ने भी भारतीय राजनीति में सामंतीय अवस्था पर ध्यान दिया। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासक भी साधारणतयः इसी सिद्धान्त का पालन करते थे, जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्यों के अन्तर्गत बड़ी संख्या में सामंतीय राज्य होते थे, लेकिन चालुक्यों की अपेक्षा राष्ट्रकूटों के अधिक सामंती राज्य थे। दोनों राजवंशों के सामंतों को अपने स्वामी के प्रति असैनिक व सैनिक दोनों तरह के कर्त्तव्यों को निभाना होता था। सामन्तों का प्रमुख कर्त्तव्य समय - समय पर कर अदा करना तथा कुछ युद्ध जैसी आपदाओं के समय शासकों की सैनिक सहायता करना था। चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में सामंतों पर नियंत्रण भी रखे जाते थे। वे अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र शासन करते थे परन्तु अपने सम्राट् के प्रति उत्तरदायी थे। दोनों ही साम्राज्यों के विघटन का एक प्रमुख कारण सामंतवादी व्यवस्था माना जा सकता है, जब इन राजवंशों की केन्द्रीय शक्ति संगठित रही तब तक सामंतों पर नियन्त्रण रहा, लेकिन केन्द्रीय शक्ति के

कमजोर होते ही वे स्वतंत्र हो गये तथा इन राजवंशों को विघटित कर अपना एक अलग राज्य स्थापित किया।

सामन्तवादी मूलतः एक अर्थवादी व्यवस्था है जिसका वाह्यस्वरूप राजनीति पर आधारित है। यह कृषि सम्बन्धी सामाजिक व्यवस्था थी जो भूमि वितरण के आधार पर बनी। राजनीतिक वाह्यस्वरूप के संगठनात्मक ढांचे से ज्ञात होता है कि जहां राजा बिचौलियों को बड़े – बड़े भूखण्डों का स्वामित्व प्रदान कर सेना, व्यवस्था, कर, न्याय आदि की अपनी जिम्मेदारी कम कर लेता था।

यूरोपीय समाज को पांचवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक सामन्तवादी कहा जाता है। यूरोपीय सामन्तवादी समाज की मुख्य विशेषताएं थीं कि राजा और काश्तकारों के बीच एक नया जमींदारों का वर्ग बना। ये राज्य की ओर से भूखण्ड प्राप्त करके उस पर अपना पूर्ण अधिकार न केवल कृषि बल्कि खनिज सम्पदा, बस्ती के लोगों और आर्थिक नियमन पर रखते थे। वे राजा को निर्धारित रकम दे देते थे जिसके बदले राजा ये सारे अधिकार उन्हें प्रदान करता था। वे स्वयं उस जमीन पर खेती न कर सकने के कारण उसे काश्तकारों में बांट देते थे जिसके बदले में उपज का अधिक भाग तथा बेगार अपने जमींदारों को देते थे। यह प्रथा कृषि दासत्व (कृषक दास) पर आधारित थी, इसका आधार आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी, इसका प्रशासनिक स्वरूप भूमि – खण्डों के

दान पर था, इसमें उत्पादन वहां के किसानों तथा मालिकों के उपभोग के लिए था।

प्राचीन काल से ही भारत में साम्राज्य का कुछ भाग प्रशासनिक नियंत्रण में तथा प्रांतों का कुछ भाग सामंतीय राज्यों के अधीन होता था जिन्हें शाही शक्ति के प्रति राजभक्ति तथा राजकर के बदले अत्यधिक मात्रा में स्वायत्त सत्ता प्राप्त थी। प्राचीन भारत में मौर्य, गुप्त, वर्धन तथा गुर्जर आदि साम्राज्यों में इस प्रकार की प्रथा बहुतायत से देखने को मिलती है।[1]

साहित्य में 'सामन्त' शब्द का प्रथम उल्लेख व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। अभिलेखों में भी अशोक के अभिलेखों में सबसे पहले इसका उल्लेख हुआ है। पर वहां सामन्त का वह अभिप्राय नहीं है जो मौर्योत्तर काल से लिया जाने लगा था। मौर्योत्तर काल में इस व्यवस्था ने एक नया मोड़ लिया। अब ब्राह्मणों को भूमिदान देने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। इस प्रकार का सर्वप्रथम अभिलेखीय प्रमाण द्वितीय शताब्दी में सातवाहन शासक गौतमीपुत्र शातकर्णी का प्राप्त होता है। इसमें बौद्ध भिक्षुओं को कुछ ग्राम दान का उल्लेख मिलता है। यद्यपि भूमि दान

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए.एस., दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 – 262.

की परम्परा अत्यन्त पुरातन है। रामायण, महाभारत, पालिग्रन्थों से प्राङ मौर्यकाल में भूमिदान के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं पर कहीं भी दाता ग्रहीता का कोई प्रशासनिक अधिकार प्रदान नहीं किया गया है।

गुप्तकाल में सामन्तवाद की स्थिति अधिक दृढ़ हुई। सामन्तों को केन्द्रीय सत्ता से भी जोड़ा गया तथा अपने क्षेत्र में उनको केन्द्रीय स्वीकृति के बाद एक अधीनस्थ शासक की हैसियत से कार्य करने की छूट दी गई। इस समय अधिकारियों को बड़ी - बड़ी सामन्ती उपाधियां दी जाने लगी। अर्द्ध सामन्ती प्रथा भी चल पड़ी। अधिकारी वंशानुगत होने लगे। कुछ उपाधियां सामन्तवादी बन गईं। ये शासन के अंकुश से बाहर होते थे। प्रशासन, न्याय, दण्ड तथा कर के वही अधिकारी थे।

दक्षिण काल में इसका ज्ञान वहां के अभिलेखीय प्रमाणों से ज्ञात होता है। वहां विशिष्ट, अवैतनिक श्रमिक, भोजन पर आधारित श्रमिक तथा विशिष्ट प्रयोजनों के लिए उपयुक्त श्रमिकों की सेवा सामन्तों द्वारा ली जाती थी। अधिकारियों को सेवा के बदले भूमि ही दी जाती थी। यह व्यवस्था मन्दिरों के द्वारा अपने अधिकारियों पर अधिक प्रचलित थी। इससे सामन्ती व्यवस्था अधिक बढ़ी। सामान्य कर्मचारियों को भी निश्चित राजस्व पर भूमि दी जाती थी। पर यह दान यहां मात्र सेवा काल तक ही उपभोग के लिए दिया

जाता था। सैनिक अधिकारियों को भी जागीरें प्रदान की जाती थी। मन्दिरों के अधिकारी और भू–स्वामी दोनों ही यहां बिचौलिए का कार्य करते थे। यहां सामन्तों के बीच स्तरीकरण भी उनके भूमि धारक के बीच था। मुख्यतः चोल और पल्लव शासकों के समय इस व्यवस्था की अधिक प्रमुखता राजनीतिक क्षेत्र में दीखती है। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासक भी साधारणतयः सामन्तवादी व्यवस्था का पालन करते थे जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्य के अन्तर्गत बड़ी संख्या में सामंतीय राज्य होते थे।

चालुक्यों के साम्राज्य में कई छोटे – छोटे राज्यों के शासन का संचालन कार्य सामन्तों द्वारा सम्पादित किया जाता था। पराजित शासक द्वारा सम्राट् की अधिसत्ता स्वीकार कर लेने पर उसे अपने क्षेत्र में केन्द्रीय सत्ता के अधीन सामन्त के रूप में शासन करने का अधिकार प्राप्त हो जाता था। वे शासन द्वारा प्रदत्त भूमि का उपयोग करते थे।

चालुक्य अभिलेखों से भी सामन्तों के विषय में सूचना प्राप्त होती है। चालुक्य शासन काल में राजा द्वारा विभिन्न राजकुमारों को भी प्रान्तीय शासक नियुक्त किया जाता था जो आंतरिक प्रशासन के लिए स्वतंत्र होते हुए भी केन्द्र सरकार के प्रति उत्तरदायी होते थे। यहां सामंतों की भी यही स्थिति दिखाई देती है।

बादामी से शासन करने वाले चालुक्यों तथा कर्नाटक, महाराष्ट्र के मान्यखेट से शासन करने वाले राष्ट्रकूटों के समय प्रांतीय गवर्नरों की नियुक्ति में राजकुमारों को अधिक वरीयता दी जाती थी। उदाहरणार्थ :- पुलकेशिन के चार पुत्रों की और ध्रुव के पुत्रों की नियुक्ति गवर्नरों के रूप में हुई थी[1] तथा प्रान्तों के नीचे वाले कुछ प्रशासनिक क्षेत्रों में सामन्त जैसे अधिकारियों की नियुक्तियां होती थीं। चालुक्य काल में सामन्त नायक, दण्डनायक, महादण्डेश्वर, राजा, महाराज और उर्रेयार कहे जाते थे। परन्तु सामन्तों की अपने - अपने क्षेत्रों में अधिकार या सीमाएं क्या थीं? यह ज्ञात नहीं होता है, लेकिन उनमें जो प्रमुख सामन्त थे, उन्हें भंवर, पालकी व हाथियों के उपयोग तथा 'पंचमहाशब्द' जैसे विरूद्ध प्राप्त होते थे तथा छोटे सामन्त कुछ कम स्वतंत्र होते थे।

चालुक्य प्रशासन में सामन्तों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। चालुक्य काल में सामन्त युद्ध में आवश्यकता पड़ने पर अपने राजा को सैनिक सहायता प्रदान करते थे। वे अपने - अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र शासन करते थे परन्तु अपने राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे। वे राजा को समय - समय पर कर तथा भेटें भी प्रदान करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि चालुक्य काल में सामन्तों का विशिष्ट स्थान था।

---

[1] दृष्टव्य महालिंगम,, साउथ इण्डियन पॉलिटी, पृ0 - 316.

राष्ट्रकूट साम्राज्य में भी सामन्तवादी व्यवस्था प्रचलित थी। अनेक प्रमाणों से हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट राजाओं ने ब्राह्मणों तथा मन्दिरों को अधिक गांव दान किये थे। राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग ने 753 - 54 ई0 में कोल्हापुर के इलाके में एक ब्राह्मण को भूमिकर, अधिकारियों को यदा - कदा दिये जाने वाले शुल्क आदि तमाम कर वसूल करने और दशापराधदंड के अधिकार प्रदान किये थे।[1] 806 - 7 ई0 में गोविन्द तृतीय ने नासिक के इलाके में एक ब्राह्मण को उपर्युक्त अधिकारों के साथ एक गांव दान करते हुए उस गांव में चाटों और भाटों का प्रवेश भी वर्जित कर दिया।[2] इन सभी अधिकारों का उल्लेख 794 ई0 के पैठन प्लेटों में भी हुआ है।[3] अमोघवर्ष ने 871 ई0 में कुछ ब्राह्मणों को एक गांव इन्हीं अधिकारों के साथ दान किया था।[4] इस प्रकार गोविन्द तृतीय के समय से पहले भी अधिक अधिकारों के साथ अनुदान देने का जो सिलसिला शुरू हुआ वह लगभग एक सदी तक चलता रहा। किन्तु गोविन्द पंचम 933 - 34 ई0 के एक अनुदानपत्र में ग्रहीता को बेगार का अधिकार नहीं दिया गया है और न दान किये गये गांवों में सरकारी अमलों

---

[1] इण्डि0 ऐण्टी0, 11, पृ0 - 112-113, पंक्ति - 29-44.

[2] वही, 11, पृ0 - 156-159, पंक्ति - 34-50.

[3] एपि0इण्डि0, 3, नं0-17, पंक्ति - 57-58.

[4] वही, 18, नं0 - 26, पंक्ति - 66-67.

का प्रवेश ही वर्जित किया गया है।[1] यद्यपि राष्ट्रकूट अनुदानपत्रों की शर्तों में अन्तर होते रहे, परन्तु राष्ट्रकूट राज्य में पुरोहितों और ब्राह्मणों को अनुदान में गांव देने की प्रथा दो सदियों से अधिक काल तक चलती रही। गोविन्द चतुर्थ के काम्बे दानपत्र से ज्ञात होता है कि अपने सिंहासनारोहण के समय उसने धार्मिक एवं शैक्षणिक प्रयोजनों के लिए ब्राह्मणों को 600 गांव और मन्दिरों को 800 गांव दान किये।[2] राष्ट्रकूट राजाओं के सामन्तों और मंडलेश्वरों ने भी धार्मिक अनुदान दिये। गुजरात शाखा के कर्क्कराज सुवर्णवर्ष ने 821 ई0 में धार्मिक विद्वानों को एक क्षेत्र सदा के लिए दान कर दिया और उसमें अनियमित तथा नियमित राजकर्मचारियों तथा सिपाहियों का प्रवेश निषिद्ध था।[3] स्पष्ट है कि कुल मिलाकर राष्ट्रकूटों और सामंतों ने विद्वान् ब्राह्मणों को अत्यधिक गांव देकर ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी सत्ता को मजबूत किया।

राष्ट्रकूट अनुदानपत्रों में राज्याधिकारियों और सामन्तों को गांव देने का स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलता, लेकिन उनकी राज्य व्यवस्था का विशद् अध्ययन करने के बाद अलतेकर का ऐसा मानना है कि बहुत से राज्याधिकारियों को

---

[1] इण्डि0 ऐण्टी0, 12, पृ0 - 251, पंक्ति - 50-53.

[2] एपि0इण्डि0, 7, नं0 - 6, पंक्ति - 46-49.

[3] वही, 21, नं0 - 22, पंक्ति - 48-51.

वेतन के रूप में 'लगान – मुक्त' भूमि मिली हुई थी।[1] यहां हम 'लगान मुक्त' के स्थान पर 'राजस्व मुक्त' कहें तो ज्यादा उचित रहेगा। अलतेकर का यह भी कहना है कि कभी – कभी राज्याधिकारियों को वेतन नकद और जिंस दोनों रूपों में दिया जाता था।[2] इस प्रकार एक जाली गंग अभिलेख में देश – ग्रामकूट – क्षेत्र अथवा जिला – प्रधान के राजस्व – मुक्त खेत का दो बार उल्लेख आया है।[3] स्पष्ट है कि ग्राम – प्रधान को भी जिसे राष्ट्रकूट साम्राज्य में ग्रामकूट कहा जाता था, इसी रूप में वेतन दिया जाता था। दक्षिण महाराष्ट्र में भी ग्राम प्रधान को राजस्व मुक्त भूमि मिलती थी। गुजरात के राष्ट्रकूटों के राज्य में राजस्व – एकांश दशमिक और डादशमिक दोनों प्रणालियों के अनुसार संगठित थे। गुजरात के राष्ट्रकूटों के साम्राज्य में दिए गए एक अनुदान में 84 गांवों के एकांश का उल्लेख है।[4] अमोघवर्ष तृतीय के शासनकाल में भी 12 गांवों के एक एकांश का उल्लेख मिलता है।[5] स्पष्ट है कि यह सब क्षेत्रीय इकाइयां राजस्व वसूल करने के लिए संगठित की गई थी और राष्ट्रकूटों के

---

[1] द्रष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 – 189.

[2] वही, पृ0 – 189.

[3] द्रष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पु0 – 179.

[4] इण्डि0ऐण्टी0, 12, नं0 – 160, पंक्ति – 45-6.

[5] वही, 12, पृ0 – 266.

अधीन ये एकांश सामंतों या राज्याधिकारियों को जागीर के तौर पर दिये जाते थे और वे इन एकांशों का प्रशासन चलाते थे। कतिपय अधिकारियों को वेतन के बदले कुछ खास कर भी सौंप दिये जाते थे। राष्ट्रकूट काल में खाद्य पदार्थों, साग - सब्जियों आदि पर जिंस के रूप में लगाए कर स्थानीय अधिकारियों के वेतन में शामिल होते थे।[1] अलतेकर का मानना है कि भोग - कर, जो उपरिकर के ढंग का ही था, ऐसे सामान्य या अतिरिक्त करों का बोधहोता है जो मुकस्सिल क्षेत्रों के राज्य कर्मियों के उपभोग के लिए थे।[2] यूरोप की सामंती प्रणाली के अन्तर्गत प्रशासन चलाने वाले सामंत को राज्य प्रत्यक्ष रूप नकद जिंस में वेतन न देकर राजस्व ही उन्हें सौंप दिया करता था।[3]

राष्ट्रकूट काल में सैनिक सेवा के एवज में भूमि - दान के अनेक प्रमाण मिलते हैं। कभी - कभी पल्लव राजा अपने सेनानायक के विजय - अभियानों की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए गांवों के नाम उसके नाम पर रख देते थे और उन्हें अनुदान में ब्राह्मणों को देते थे।[4] लेकिन राष्ट्रकूट सेनापतियों की वीरता को शायद उपभोगार्थ गांव देकर पुरस्कृत

---

[1] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 - 181.

[2] वही, पृ0 - 216.

[3] दृष्टव्य शर्मा, रामशरण, भारतीय सामंतवाद, पृ0 - 82.

[4] इण्डि0ऐण्टी0, 8, पृ0 - 279- 280.

किया जाता था।[1] अलतेकर का मानना है कि राष्ट्रकूट अभिलेख में उल्लिखित ग्रामपति पुरस्कार में प्राप्त गांवों के स्वामी थे।[2] चूंकि महाराष्ट्र में ग्राम - प्रधान को ग्रामकूट कहा जाता था और वह ग्रामपति से भिन्न व्यक्ति था।[3] इसलिए सम्भव है कि ग्रामपति सैनिक अािकारी ही रहा हो। स्पष्ट है कि सैनिक सेवा के लिए पुरस्कार के रूप में नये सामंतों के गठन से सामन्तों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी। राष्ट्रकूट साम्राज्य में सैनिक सेवा के लिए लोगों को पुरस्कत करने के लिए नई - नई जागीरें बनाई जाती थीं। अमोघवर्ष प्रथम ने कक्कं की निष्ठपूर्ण सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उसे नर्मदा और ताप्ती के बीच का क्षेत्र दे दिया[4], जो 862 ई0 तक गुजरात के राष्ट्रकूटों के हाथों में रहा[5] और गुर्जर प्रतिहारों के खिलाफ सुरक्षा दुर्ग का काम करता रहा।[6] उधर उन सरदारों ने भी अपने सामंतों को जागीरें दीं।

राष्ट्रकूट काल के सामंतीय राज्यों के अन्तर्गत सामंतों की आंतरिक स्वायत्ता समान नहीं थी। छोटे सामंतों

---

[1] एपि0इण्डि0, 3, नं0-37, पंक्ति - 47.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 - 189.

[3] वही, पृ0 - 189.

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 - 86-87.

[5] वही, पृ0 - 86-87.

[6] इण्डि0ऐण्टी0, 12, पृ0-158 : कक्कं के प्रभु के लिए स्वामी शब्द का प्रयोग हुआ है।

को कम स्वायत्ता प्राप्त थी। इन्हें राजकीय अनुमति की आवश्यकता पड़ती थी तथा उनके पास किसी गांव की हस्तांतरिक करने की शक्ति भी नहीं प्राप्त थी। गोविन्द तृतीय के एक सामंत ने जब एक जैन मुनि को एक गांव देना चाहा तो उसे अपने स्वामी की अनुमति लेनी पड़ी।[1] इसी प्रकार बनवासी के शासक बंकेय के निवेदन पर अमोघवर्ष प्रथम ने एक जैन मन्दिर को एक गांव दान दिया।[2] इसी प्रकार ध्रुव के सामंत शंकरगण ने एक गांव दान करने के लिए उसकी अनुमति ली थी।[3] किन्तु बड़े सामंतों को व्यापक अधिकार प्राप्त थे, वे गांवों को हस्तांतरित कर सकते थे तथा कर भी लगा सकते थे। हमें ज्ञात होता है कि छोटे और बड़े सामंतों में अंतर चाहे जो रहा हो, राष्ट्रकूटों के साम्राज्य में उपसामंत बनाने की प्रवृत्ति बहुत व्यापक थी। विदित होता है कि दक्षिण महाराष्ट्र में सौदत्ति के रट्टों जो पहले राष्ट्रकूटों के तथा बाद में परवर्ती चालुक्यों के सामंत हो गए, अपने उपसामंत बनाए थे, क्योंकि उन्हें 'देसकारों का प्रभु कहा गया है'।[4] अतः अनेक शक्तिशाली सामंत अपने स्वामी के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त रहकर अपने उपसामंत बनाया करते थे।

---

[1] वही, 12, पृ0 – 18

[2] एपि0इण्डि0, 4, नं0-4, पंक्ति – 34.

[3] एपि0इण्डि0, 9, नं0-26, पंक्ति – 27-28.

[4] इण्डि0ऐण्टी0, 14, पृ0 – 25.

राष्ट्रकूट काल में हम केवल तीन अधिकारियों विषयपति, राष्ट्रपति और ग्रामकूट का उल्लेख 753 - 54 ई0 के एक अनुदान पत्र में पाते हैं।[1] कृष्ण प्रथम के एक अनुदान पत्र में उक्त अधिकारियों में से पहले दो और एक तीसरे अर्थात् भोगपति का ही उल्लेख आया है।[2] इसके अतिरिक्त 794 ई0 के एक अनुदान पत्र में दो नये अधिकारियों आयुक्त और नियुक्तक[3] का उल्लेख है। इस प्रकार हमें कुल पांच प्रकार के ही नियमित अधिकारी देखने को मिलते हैं। इस सम्बन्ध में यह कहना ठीक नहीं होगा कि अन्य अधिकारियों का उल्लेख इसलिए नहीं हुआ है कि अनुदानों से उनका सम्बन्ध नहीं था।[4] वास्तव में राष्ट्रकूट शासन प्रणाली में बहुत अधिक अधिकारियों की व्यवस्था इसलिए नहीं थी, क्योंकि राष्ट्रकूट राजा अपने अधीनस्थ सामंत राजाओं और सामंतों के द्वारा ही प्रशासन चलाते थे।

राष्ट्रकूटकालीन साम्राज्य में राज्याधिकारियों को सामंतवादी नाम और रूतबा देने की प्रथा जोर से चल पड़ी थी। प्रान्तीय शासकों को महासामंत या महामंडलेश्वर का दर्जा

---

[1] वही, 11, पृ0 - 112-13, पंक्ति - 28-29.

[2] एपि0इण्डि0, 14, नं0 - 6, पंक्ति - 42.

[3] वही, 3, नं0 - 17.

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 - 261.

दिया जाता था[1], और वे अक्सर राजा या रासा (कन्नड़) विरूद्ध धारण करते थे।[2] ध्रुव का महासंधिविग्रहिक श्री मांदल्ल पंचवाद्यों के प्रयोग के अधिकार से सम्पन्न सामंत थे।[3] कुछ विषयपति भी सामंत – राजाओं वाली स्थिति का उपभोग करते थे।[4] भुक्तियों या तालुकों के प्रधन अधिकारी भोगिक या भोगपति भी कभी – कभी सामंत राजाओं वाली उपाधि धारण करते थे।[5] कर्नाटक स्थित सोरतुर का शासक कुप्पे अमोघवर्ष प्रथम का महासामंत था।[6] युवराज भी सामंतीय विरूद्ध धारण करते थे, क्योंकि युवराज को भी सामंती सम्मान (विरूद्ध) दिये जाते थे।[7]

राष्ट्रकूट काल में सामंतों द्वारा 'पंचमहाशब्द' प्राप्त करना बहुत बड़े सम्मान का विषय माना जाता था। राष्ट्रकूट[8]

---

[1] एपि0इण्डि0, 19, नं0 – 4, 'ए' पंक्ति, – 4.

[2] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 – 173.

[3] एपि0इण्डि0, 10, नं0 – 19, पंक्ति – 65-66.

[4] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 – 177.

[5] वही, पृ0 – 178.

[6] वही, पृ0 – 182.

[7] दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 – 152.

[8] एपि0इण्डि0, नं0 – 12, पंक्ति–39 : इण्डि0ऐण्टी0, 12, पृ0 – 184, पंक्ति – 1 : दृष्टव्य अलतेकर, ए0एस0, पूर्वोक्त, पृ0 – 42 में उद्धृत कर्क्क द्वितीय का अजोली – छरोली अभिलेख।

राजाओं ने अपने कुछ सामंतों को यह प्रतिष्ठा पद प्रदान किया था। कुछ उपसामंतों को भी 'पंचमहाशब्द' का प्रयोग करने का अधिकार था। यहां हम कोंकण के शिलाहारों के सामंत महासामंत निंबदेवरस[1] और गुजरात के राष्ट्रकूटों के सामंत महासामंत उद्धवरस[2] के उदाहरण ले सकते हैं। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट काल में सामंतों तथा महासामंतों को उनकी योग्यता के आधार पर विरूद्ध धारण किये जाते थे।

राष्ट्रकूट साम्राज्य में सामंतों को अपने स्वामी के प्रति असैनिक व सैनिक दोनों तरह से कर्त्तव्यों को निभाना होता था। सामंतों का सबसे बड़ा असैनिक कर्त्तव्य स्वामी को नियमित रूप से राजकर अदा करना होता था।[3] सामंतों का सैनिक कर्त्तव्य भी अत्यधिक महत्वपूर्ण था। उनकी यह जिम्मेदारी थी कि युद्ध के अवसर पर वे अपने स्वामी की सैनिक सहायता करें जैसा कि इन्द्र तृतीय के सामन्त राजनरसिंह ने गुर्जर प्रतिहार शासक महिपाल के विरूद्ध युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[4] वेंगी के चालुक्यों ने जो राष्ट्रकूटों के सामंत थे, उन्हें सैनिक सहायता दी थी। जिस

---

[1] एपि0इण्डि0, 19, नं0 – 4, 'ए', पंक्ति – 4-5.

[2] वही, 3, नं0 – 9, पंक्ति – 12-19.

[3] दृष्टव्य, शर्मा, रामशरण, भारतीय सामन्तवाद, पृ0 – 89.

[4] वही.

प्रकार राष्ट्रकूट राजा अपने सामंतों से सैनिक सेना की अपेक्षा रखते थे, उसी प्रकार उनके सामंत भी अपने उपसामंतों से सैनिक सेवा की अपेक्षा रखते थे जिसका प्रमाण शिलाहार, महामंडलेश्वर, गंडरादित्यदेव के कोल्हापुर अभिलेख से हमें प्राप्त होता है।[1]

राष्ट्रकूट काल में सामंत राजाओं पर तरह – तरह से अनेक नियंत्रण रखे जाते थे। यदि सामंत विद्रोह का साहस करते थे और युद्ध में पराजित होते थे तो उन्हें अनेक अपमान सहने पड़ते थे। कभी – कभी पराजित सामंत – राजाओं की सारी संपत्ति और राज्य छीन लिये जाते थे और उन्हें राजा अपने आश्रितों के निर्वाह के लिए उनके बीच बांट देता था। कृष्ण तृतीय ने दक्षिण अर्कॉट जिले में चोलों का राज्य जीतने के बाद ऐसा ही किया था।[2] लेकिन सम्राट् के नियन्त्रण के बावजूद सामंत केन्द्रीय राजनीति में हस्तक्षेप किया करते थे। सामंत लोग राजाओं को हर सम्भव सैनिक औरप्रशासकीय सहायता प्रदान करते थे, परन्तु जैसे ही उन्हें अवसर मिलता था वे अपनी स्वतंत्रता घोषित करने में कोई परहेज नहीं करते थे। राजा की दुर्बलताओं के कारण जब भी केन्द्रीय शासन कमजोर होता था, सामन्त उसका पूरा फायदा उठाने की कोशिश करते थे। राजवंश की नींव को हिलाने में

---

[1] वही.

[2] एपि०इण्डि०, 4, नं० 40, श्लोक – 34–35.

भी उनकी भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती थी। उत्तराधिकार के संघर्ष के समय भी वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और प्रशासन को पूरी तरह से प्रभावित करते थे। इससे राजनीति पर काफी प्रभाव पड़ता था और कभी – कभी तो शासक उनकी सहायता के लिए काफी इच्छुक हो जाता था। इस तरह सामंतवादी व्यवस्था साम्राज्य के लिए काफी घातक सिद्ध होती थी और राजवंश की जड़ों को खोखला करने में काफी सहायक होती थी। दक्षिण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत इस व्यवस्था के काफी प्रतिकूल परिणाम सामने आए और इसने तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

(Bibliography)

आधारभूत ग्रन्थ

1. *अग्नि पुराण* — आनन्दाश्रम, पूना, 1900.
   अनु0 एम0एन0दत्त, वाराणसी, 1967.

2. *अर्थशास्त्र – कौटिल्यकृत* — सम्पा0 आर0शामशास्त्री, मैसूर, 1993.
   टी0 गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1924–25.
   सम्पा0 और अनु0 आर0पी0 कांगले, दि0 कौटिलीय अर्थशास्त्र, तीन भाग, बम्बई, 1960–65.

3. *कामन्दकीय नीतिसार* — सम्पा0जी0शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1912.
   अनु0 पंडित जे0पी0मिश्रा, बम्बई, 1874.
   एम0एन0दत्त, कलकत्ता, 1896.

4. *गौड़वहो – वाक्पतिराजकृत* — सम्पा0 एस0पी0पंडित, बम्बई, 1887.

5. *गरूणपुराण* — खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1906.

6. *देवल स्मृति* — आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना।

7. *नवसाहसांक चरित पद्यम्गुप्त परिमलकृत* — सम्पा0 वामन शास्त्री बम्बई, 1895.

8. *नीतिवाक्यामृत सोमदेवसूरिकृत* — सम्पा० एन०एस० वेंकटानाथाचार्य, मैसूर यूनिवर्सिटी, 1960.
सम्पा० सुन्दरलाल शास्त्री, द्वितीय संस्करण, वाराणसी, 1976.

9. *बृहस्पतिस्मृति* — सम्पा० के.वी. रंगास्वामी आयंगर, बड़ौदा, 1941.

10. *मानसोल्लास सोमेश्वरकृत* — बड़ौदा संस्कृत सीरीज 4 खण्डों में।

11. *मत्स्य पुराण* — आनन्दाश्रम पूना, अनु० सत्यव्रत शास्त्री, दिल्ली, 1972.

12. *मिताक्षरा* — सम्पा० जे०आर० घाटपुरे, बम्बई, 1914, अनु० एस०सी० विद्यारत्न, इलाहाबाद, 1918.

13. *मनुस्मृति* — सम्पा० गोपालशास्त्री वाराणसी, 1970, अनु० जी० बुलर, दिल्ली, 1964.

14. *महाभारत* — हिन्दी अनुवाद गीताप्रेस गोरखपुर, नीलकण्ठ की टीका सहित, पूना, 1929, अनु० पी०सी०राय, कलकत्ता, 1884–96.

15. *मार्कण्डेय पुराण* — सम्पा० के०एम० बनर्जी, कलकत्ता, 1862. अनु० एफ०ई० पार्जिटर, कलकत्ता, 1904.

16. *याज्ञवल्क्य स्मृति* सम्पा0 यू0सी0पाण्डेय, वाराणसी, 1967.

17. *राजतरंगिणी कल्हणकृत* सम्पा0 एम0ए0स्टीन, बम्बई 1892.
अनु0 एम0ए0स्टीन, वेस्टामिनिस्टर, 1900.

18. *राजनीति रत्नाकर चण्डेश्वरकृत* सम्पा0 के0पी0जायसवाल, पटना, 1936.

19. *विक्रमांकदेव चरित बिल्हणकृत* सम्पा0 विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय।
अनु0 एस0सी0बनर्जी और एक0के0गुप्ता कलकत्ता, 1965.

20. *विष्णुस्मृति* सम्पा0 जे0जॉली, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1962.

21. *वीरमित्रोदय* लेखक मित्र मिश्र, वाराणसी, 1906.

22. *शुक्रनीतिसार* सम्पा0 जीवानन्द विद्यासागर, कलकता, 1890.
अनु0 बी0के0 सरकार, द्वितीय संस्करण, दिल्ली 1975.

अभिलेख

1. *Dikshit, M.G.* Select Inscriptions of Maharastra, 5th to 12th Century A.D. Poona, 1947.
   Sources of the Medieval History of the Deccan iv, Poona, 1951.

2. *Fleet J.F.* Corpus Inscriptions Indicarum Vol. III, Calcutta, 1988 (Reprint) Varanasi, 1970.

3. *Hultzsrch, E.* South Indian Inscriptions, Five Volms.

4. *Mirashi, V.V.* Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. IV, Ootacamund, 1955.

5. *Pandey, R.B.* Historical and Literary Inscriptions, Varanasi, 1962.

6. *Sircar, D.C.* Select Inscriptions bearing on Indian History and Civilization, Vol. I & II.

आधुनिक ग्रन्थ

(i) हिन्दी ग्रन्थ

1.	*अग्रवाल, वासुदेवशरण*	हर्षचरित – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1962. कादम्बरी – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1962 पाणिनि कालीन भारतवर्ष, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969.
2.	*अलतेकर, ए0एस0*	प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, वाराणसी, 2003.
3.	*उपाध्याय, रामजी*	प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, इलाहाबाद, 1966.
4.	*उपाध्याय, वासुदेव*	भारतीय सिक्के, 1948. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, 1970.
5.	*कपूर, एस0एन0*	प्राचीन भारतीय राजतन्त्र, नई दिल्ली, 1995.
6.	*काणे, पी0वी0*	धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–II, (अर्जुन चौबे कश्यप का हिन्दी अनुवाद), लखनऊ, 1965.

7. *गोपाल, लल्लनजी* प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा, वाराणसी, 1999.

8. *गोयल, श्रीराम* प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग–1, जयपुर, 1982.

9. *जायसवाल, के०पी०* हिन्दू राज्यतन्त्र, पटना, 1924.

10. *जायसवाल, एस०के०* हिन्दू राजशास्त्र, दिल्ली, 1924.
प्राचीन भारतीय समाज लखनऊ, 2002.

11. *दुबे, हरि नारायण* दक्षिण भारत का इतिहास, इलाहाबाद, 1991.

12. *पाठक, विशुद्धानन्द* उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, 1990.
दक्षिण भारत का इतिहास (600–1300ई० तक) लखनऊ 2006.
प्राचीन भारत की आर्थिक संस्कृति, लखनऊ, 2005.
उत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन, लखनऊ, 2007.

13. *पाण्डेय, राम निहोर* दक्षिण भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, 2000.
संगम युग, इलाहाबाद, 1986.

14. *पाण्डेय, श्याम लाल* भारतीय राजशास्त्र प्रणेता, लखनऊ, 1983.
शुक्र की राजनीति, लखनऊ, वी0एस0 2009.
कौटिल्य की राज्य व्यवस्था, लखनऊ, वी0एस0 2013.

15. *बाशम, ए0 एल0* अद्‌भुत भारत (वेंकटेश चन्द्र पाण्डेय द्वारा 'ए वण्डर दैट वाज इण्डिया' का हिन्दी अनुवाद), आगरा, संशोधित संस्करण।

16. *मजूमदार, आर0सी0* प्राचीन भारत में संगठित जीवन (कृष्ण दत्त बाजपेई द्वारा 'कारपोरेट लाइफ इन एशियन्ट इण्डिया का हिन्दी अनुवाद'), दिल्ली, 1966.

17. *मिश्र, एस0एम0* दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, नई दिल्ली, 1995.

18. *याजदानी, जी0* दकन का प्राचीन इतिहास (मंगला नाथ सिंह तथा कृष्ण मोहन श्रीमाली द्वारा अनूदित), नई दिल्ली, 1977.

19. *राय, उदय नारायण* प्राचीन भारत में नगर तथा नगरजीवन, इलाहाबाद, 1985.

20. *रेऊ, विश्वेश्वर नाथ* राष्ट्रकूटों का इतिहास, 1994.

21. *विद्यालंकार, सत्यकेतु* प्राचीन भारत की शासन संस्थायें एवं राजनीतिक विचार, नई दिल्ली, 1994.

22. *शर्मा, रामशरण* प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं शासन संस्थायें, नई दिल्ली, 1979.
पूर्वमध्यकालीन भारत का सामंती समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रकाश, दिल्ली, 1996.
भारतीय सामंतवाद, दिल्ली, 1965.

23. *शास्त्री, के०ए०एन०* दक्षिण भारत का इतिहास (वीरेन्द्र वर्मा द्वारा 'ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इण्डिया' का हिन्दी अनुवाद), पटना, 1998.
चोलवंश (मंगलानाथ सिंह द्वारा 'दि चोलाज' का हिन्दी अनुवाद), पटना, 1979.

24. *श्रीवास्तव, बलराम* दक्षिण भारत का इतिहास, वाराणसी

25. *त्रिपाठी, ह०ना०* प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, वाराणसी, 1965.

अंग्रेजी ग्रन्थ

1. *Agrawala, V.S.* Matsya Purana-A Study, Varanasi, 1963. Vamana Purana-A Study, Varanasi, 1964.

2. *Aiyanger, Ramaswami, K.V.* Aspects of Social and Political system of Manu Smrti, Lucknow, 1949. Some Aspects of Ancient Indian Polity, Madras, 1935. Hindu Administrative Institutions in South India, Madras, 1931.

3. *Aiyanger, S.K.* Ancient India and South Indian History and Culture, Part-I, Poona, 1941. Beginnings of South Indian History, Madras, 1918. Evolution of Hindu Administrative Institution in South India, Madras, 1931.

4. *Aiyar, C.P. Ramaswamy* Indian Political Theories, Madras, 1937.

5. *Aiyar, Narayan, R.A.* The History of the Hindu Law in Vedic Age and in the Post Vedic Times down to the Institute of Manu, Madras, 1925.

6.	*Altekar, A.S.*	The Rashtrakutas and their times, Poona, 1934.
		State and Government in Ancient India, Delhi, 1958.
		History of Village Communities in Western India, Bombay, 1927.
7.	*Anjaria, J.J.*	The Nature and Grounds of Political obligations in the Hindu State, Bombay, 1935.
8.	*Bandyopadhyaya, N.C.*	Development of Hindu Polity and Political Ideas, Calcutta, 1927.
		Kautilya, Calcutta, 1927.
9.	*Basaka, R.G.*	Some Aspects of Kautilyan Political Thinking, University of Burdwan, 1967.
10.	*Beni Prasad*	Theory of Government in Ancient India, Allahabad, 1927.
		The State in Ancient India, Allahabad, 1928.

11. *Bhandarkar, D.R.* Some Aspects of Ancient Hindu Polity, Banaras, 1929

12. *Bhandarkar, R.G.* Early History of the Deccan, Bombay, 1894.

13. *Birendra Nath* Judicial Administration in Ancient India, Patna, 1979.

14. *Bozeman, A.* Politics and Culture International History, Princeton, 1960.

15. *Chattopadhyaya, S.* Early History of North India, Calcutta, 1958.
Some Early Dynasties of South India, Delhi, 1974.

16. *Chopra, P.N. Ravindram, T.K. and Subrahmanayam, N. (Editors)* History of South India, Vol. I, New Delhi, 1979.

17. *Chowdhury, R.K.* Ancient Indian Law and Justice, Banaras, 1958.
Kautilya's Political Ideas and Institutions, Varanasi, 1971.

18. *Das Gupta, R.P.* Crime and Punishment in Ancient India, Calcutta, 1930.

19. *Das, Ram Mohan* Crime and Punishment in Ancient India with a Particular Reference to the Manu-Smrti, Bodha Gaya, 1982.

20. *Dikshitar, V.R.R.* War in Ancient India, Madras, 1998
Hindu Administrative Institution, Madras, 1929.

21. *Diwakar, R.R.* Karnataka Through the Ages, Bangalore, 1968.

22. *Elliot, W.* Coins of Southern India, London, 1886.

23. *Foster, J.W.* The Practice of Diplomacy, Boston, 1906.

24. *Ghoshal, U.N.* Contributions to the History of the Hindu Revenue system, Calcutta, 1929.
A History of Indian Political Ideas, oxford, 1959.
History of Public Life in Ancient India, Calcutta, 1944.

25. *Jaiswal, S.K.* Polity and Administration in the Matsya Purana, Jaipur, 1996.

26. *Jayaswal,K.P.* Manu and Yajnavalkya, Calcutta, 1930, Hindu Polity, Calcutta, 1934.

27. *Kosambi, D. D.* An Introduction to the Study of Indian History, Bombay, 1956

28. *Krishna Rao, M.V.* Studies in Kautilya, Mysore, 1953.

29. *Law, N.N.* Studies in Ancient Indian Polity, Calcutta, 1914.

Interstate Relations in Ancient India, Calcutta, 1920.

30. *Mahalingam, T.V.* South Indian Polity, Madras, 1955.

31. *Majumdar, A.K.* Chalukyas of Gujarat, Bombay, 1955.

32. *Majumdar, B.K.* The Military System in Ancient India, Calcutta, 1960.

33.	*Majumdar, R.C. and The Pusalkar, A.D. (Editors)*	Age of Imperial Kanauj, Bombay, 1965. The Struggle for Empire, Bombay, 1966.
34.	*Mishra, B.B.*	Polity in the Agni Purana, Calcutta, 1965.
35.	*Mookerji, R.K.*	Local Government in Ancient India, Oxford, 1920.
36.	*Narasimha Murthy, A.V.*	Studies in South Indian Coins, Madras, 1991.
37.	*Nayak Hussain H.M. and Gopal, B.R. (Editor)*	South Indian Studies, Mysore, 1990.
38.	*Pandey, A.B.*	Early Medieval India, Allahabad, 1960.
39.	*Panikkar, K.M.*	The Origin and Evolution of Kingship in India, Baroda, 1928.
40.	*Pusalkar, A.D.*	Studies in the Epics and Puranas, Bombay, 1955.

41. *Ramesh, K.V.* Chalukyas of Vatapi, Delhi, 1984.

42. *Soletore, B.A.* Ancient Indian Political Thought and Institutions, Asia Publishing House, 1963.

43. *Sarkar, B.K.* Political Institutions and Theories of Hindus, Calcutta, 1939.

44. *Sharan, Paramatma* Political Ideas and Institutions in Ancient India, Meerut.

45. *Shastri Nilakantha, K.A.* The Theory of Pre-Muslim Polity, Madras, 1932.

46. *Sircar, D.C.* Early Pallavas, Lahore, 1935.
Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, Delhi, 1960.

47. *Spellman, J.W.* Political Theory of Ancient India, Oxford, 1964.

48. *Vardachariar, S.* The Hindu Judicial System, Lucknow, 1946.

49. *Vidya Prakash* Coinage of South India, Varanasi, 1968.

50. *Viswanath, S.V.* International Law in Ancient India, Language & Green Co. 1925.

51. *Vyas, S.N.* India in the Ramayana Age, Delhi, 1967.

52. *Zimmer, H.* Philosophers of India, New York, 1956.

विदेशी स्रोत

1. *Beal, S.* Life of Hiuen Tsang, London, 1911.

2. *Elliot, H.M. and Dowson J.* History of India as told by its won Historians, 8 vol., London, 1966-77.

3. *Mc Crindle, J.W.* Ancient India as described in classcial literature, West minister, 1901.

4. *Nainer, S.N.* Arab Geographer's Knowledge of Southern India, Madras, 1942.

5. *Renaudot, E* Ancient Accounts of India and China by two Mohammedan Travellers, London 1733.

6. *Watters. T.* On Yuan Chwang's Travels in India, 2 vol. London, 1904-5.

शोध पत्रिकायें (Journals)

- Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
- Epigraphica Indica, Calcutta, Delhi.
- Indian antiquary, Bombay.
- Indian Historical Quarterly, Calcutta.
- Journal of the Andhra Historical Research Society, Rajahmundry.
- Journal of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta.
- Journal of Banaras Hindu University, Varanasi.
- Journal of Bihar and Orissa Research Society, Patna.
- Journal of Ganga Nath Jha Research Institute, Allahabad.
- Journal of the Orissa Historical Research Society.
- Journal of Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta.
- Proceedings of the Indian History Congress.
- Journal of U.P. Historical Society, Lucknow.
- Journal of the Numismatic Society of India, Banaras Hindu University, Varanasi.

- Bulletin of Museums and Archaeology, State Museum, Lucknow.
- Panchala, Panchala Sodha Sansthana, Kanpur.
- Puravritta, Journal of the Department of Ancient Indian History & Archaeology, Lucknow.

DATA BASE COMPLETED

चालुक्य और राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० एस० के० जायसवाल

रीडर

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधार्थिनी

प्रतिभा सिंह

Forwarded

28.4.09

Professor & Head
Department of Ancient Indian
History & Archaeology
University of Lucknow

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ

2009

RH
934.007
P 19 C
515041
~~520041~~
LUCKNOW UNIVERSITY
TAGORE LIBRARY
LUCKNOW

उपसंहार

उपसंहार

प्राचीन भारतीय इतिहास में दक्षिण भारत का इतिहास अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसके अन्तर्गत चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंश दक्षिण भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजवंशों में से एक थे। इन दोनों ही राजवंशों ने अपनी पूर्ववर्ती उत्तर भारत के मौर्य, गुप्त एवं वर्धन सम्राटों की परम्परा का आधार ग्रहण करते हुए एक विकसित शासन – व्यवस्था की स्थापना की जिसने दक्षिण भारत के राजनैतिक उत्कर्ष को चरम् सीमा पर पहुंचा दिया। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राजवंशों ने प्राचीन भारतीय परम्पराओं का आधार ग्रहण करते हुए भी दक्षिण भारतीय राजनीति में आवश्यकतानुसार कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। इन दोनों राजवंशों ने दक्षिण भारत के राजनैतिक क्षितिज पर कई शताब्दियों तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा। इन राजवंशों की शासन सत्ता की दीर्घ अवधि में दक्षिण भारत अपनी शान्ति की पराकाष्ठा पर था। चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। विल्हण रचित '*विक्रमांकदेवचरित*' में किये गये उल्लेख के अनुसार चालुक्य उस व्यक्ति के वंशज थे जिसे ब्रह्मा ने अपनी हथेली से जन्म दिया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने चालुक्यों को भारतीय क्षत्रिय माना है। एक किंवदन्ती के अनुसार चालुक्य का जन्म हारीति के जल पात्र से उस समय हुआ था, जब वे देवताओं का तर्पण कर रहे थे। इसी कारण चालुक्यों ने स्वयं को हारीतिपुत्र कहा है।

चालुक्य वंश के अभिलेखों से पता चलता है कि यह सोमवंशी क्षत्रिय थे और वाराह उनका राजचिन्ह था। इस विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य क्षत्रिय वंश से संबंद्ध थे और उत्तरापथ से दक्षिणापथ की ओर गये थे जहां इन्होंने पांचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक शासन किया।

राष्ट्रकूट वंश के उद्‌भव के विषय में भी इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ इतिहासकारों का मत है कि राष्ट्रकूट यादव वंश के थे। फ्लीट का मत है कि राष्ट्रकूट राठौरों के वंशज थे। भण्डारकर का मत है कि राष्ट्रकूट तुंग वंश से सम्बन्धित थे। तुंग के पुत्र का नाम रट्ट था और उसके नाम पर ही इस वंश का नाम राष्ट्रकूट पड़ा। सर्वाधिक न्यायसंगत मत अलतेकर का है। इनके मतानुसार राष्ट्रकूट वंश रठिक अथवा महारठी वंश की संतान थे। राष्ट्रकूट (या रठिक) का अर्थ राष्ट्र (प्रान्त) का कूट (पति) जैसे ग्रामकूट (ग्रामपति) होता है। अतः प्रारम्भ में यह जाति प्रान्तीय अधिकारी होती थी जो बाद में एक जाति के रूप में संगठित हो गयी। यह कर्नाटक के मूल निवासी थे और इनकी भाषा कन्नड़ी थी।

चालुक्य वंश का सबसे शक्तिशाली, महान् शासक पुलकेशिन द्वितीय था जो सर्वाधिक योग्य सम्राट् था। उसने 609 ई0 से 642 ई0 तक सफलतापूर्वक चालुक्य वंश के शासन का संचालन किया। पुलकेशिन द्वितीय न केवल महान्

विजेता ही था, वरन् उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ भी था। इस वंश की अन्य शाखाओं में वेंगी के चालुक्य एवं पश्चिमी चालुक्यों में भी अनेक पराक्रमी और योग्य नरेशों ने शासन किया। इनमें तैलप द्वितीय, इन्द्र वर्मन, विष्णुवर्धन तृतीय, विजयादित्य प्रथम एवं विजयादित्य द्वितीय आदि प्रमुख थे। दक्षिण भारत के प्रमुख राष्ट्रकूट वंश के शासकों के विभिन्न अभिलेखों और ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि दन्तिदुर्ग मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंश एवं साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। दन्तिदुर्ग चालुक्य वंश का सामन्त था। इस राष्ट्रकूट शासन ने धीरे – धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करके स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का प्रयास किया जिसमें वह सफल भी हुआ परन्तु सम्पूर्ण चालुक्य शक्ति का नाश राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम द्वारा किया गया। राष्ट्रकूट शासनकाल की दीर्घ अवधि में भी अनेक पराक्रमी और योग्य नरेशों ने शासन किया जिनमें ध्रुव, गोविन्द तृतीय, कृष्ण तृतीय, इन्द्र तृतीय, अमोघवर्ष द्वितीय, खोट्टिग आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कर्क द्वितीय राष्ट्रकूट वंश का अन्तिम शासक था जिसे चालुक्य सम्राट् तैलप ने युद्ध में परास्त कर राष्ट्रकूट वंश को समाप्त कर दिया।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने एक सुव्यवस्थित व उत्कृष्ट शासन व्यवस्था लागू की। चालुक्यों के समय जो शासन पद्धति थी उसका पूर्ण निखार तो हमें राष्ट्रकूटों के समय में ही दिखाई देता है, किन्तु राष्ट्रकूट

शासकों के जो उद्देश्यपरक मानदण्ड थे, उन सभी मानदण्डों का बीजारोपण चालुक्य शासकों के समय ही स्पष्ट रूप से हो चुका था। उन मानदण्डों में प्रमुख थे, सम्पूर्ण भाव वाली धार्मिक सहिष्णुता और उदारता, सभी सम्प्रदायों को बराबर का प्रश्रय, सभी धर्मों के मंदिरों के निर्माण और उनके खर्चों को चलाने हेतु पूरी - पूरी राजकीय सहायतायें, मंदिरों के जनकल्याणकारी स्वरूप, विद्या और कलाकेन्द्रों के रूप में उनका विकास तथा राजपरिवारों के विभिन्न धर्मों को मानने वाले सदस्यों का एक साथ रहना आदि।

प्राचीन भारत के अन्तर्गत पूर्ववर्ती कालों की भांति चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों की शासन पद्धति भी राजतंत्रतात्मक थी तथा राजा ही साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चालुक्य और राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने अनेक विरूद् धारण किये थे, जिससे इनकी विजयों और कृत्यों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों में उत्तराधिकार की परम्परागत पद्धति लागू थी। प्रायः राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता था। यद्यपि इस परम्परा का अपवाद भी पाया जाता है किन्तु इससे इन राजवंशों के वंशानुगत उत्तराधिकार को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों के काल में शासकों की शिक्षा - दीक्षा और शासन के कार्यों की देख - रेख का विशेष प्रबन्ध उनके युवराजत्व काल में ही कर दिया जाता था। चालुक्य

अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि राजा की मृत्योपरान्त युवराज का विधिवत् राज्याभिषेक किया जाता था, परन्तु राष्ट्रकूट शासकों द्वारा अभिषेक के अवसर पर धारण की गयी उपाधियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्रकूट शासक भी सिंहासनारोहण से पूर्व अपना राज्याभिषेक अवश्य कराते थे। ऐसा लगता है कि इस समय की राज्याभिषेक की परम्परा वैदिक कालीन परम्परा से बिल्कुल भिन्न थी और शायद शपथ ग्रहण की भी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। राजा के पश्चात् साम्राज्य में अमात्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। चालुक्य राजवंश में शासन कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा राजा की सहायता हेतु मंत्रिपरिषद् की स्थापना की गई थी परन्तु राष्ट्रकूट काल में किसी मंत्रिपरिषद् के संगठन का कोई स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु इतना निश्चित है कि इतने बड़े साम्राज्य के शासन संचालन के लिए अधिकारियों की आवश्यकता अवश्य होती होगी। राज्य व्यवस्था की देख - रेख के लिए विभिन्न राजकीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इनके चयन में प्रायः शासकीय योग्यता, सैन्य - दक्षता तथा कूटनीतिक निपुणता का विशेष ध्यान रखा जाता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट प्रशासन में स्त्रियां भी शासन कार्य में भाग लेती थीं। चालुक्य प्रशासन में राजमहिषी एवं महामण्डलेश्वर की पत्नी का भी महत्वपूर्ण स्थान होता था।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट काल में शासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए साम्राज्य को कई प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त किया गया था। चालुक्यों का साम्राज्य मंडल (प्रान्त) विषय, भुक्ति (तहसील) व ग्राम में विभाजित था, जिनके अधिकारी कमशः महामण्डलेश्वर, विषयपति, भोगपति, गामुंड (ग्राम अधिकारी) कहलाते थे। इसी प्रकार राष्ट्रकूटों का साम्राज्य राष्ट्र, विषय, भुक्ति व ग्राम में विभक्त था। प्राचीन काल की भांति इन दोनों कालों में भी ग्राम शासन की सबसे छोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई के रूप में थी। राष्ट्रकूट शासन प्रणाली में ग्राम का प्रशासन कार्य प्रायः पटवारी तथा ग्राम प्रधान के द्वारा संचालित होता था। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट दोनों ही प्रशासनों में ग्राम स्वायत्तशासी थे।

राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी राजस्व व्यवस्था पर ही निर्भर होती है। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट वंश के राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत राजाओं ने प्रजा पर विभिन्न प्रकार के कर लगाये थे। यह कर नकद और अनाज दोनों ही रूपों में लिये जाते थे। चालुक्य काल में विभिन्न करों के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें भूमि कर, उपरिकर, गृहकर, सामयिक कर, भोगकर आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त अपराधियों पर लगाया गया अर्थदण्ड का धन राज्य की सम्पत्ति होती थी। पूर्ववर्ती कालों की भांति चालुक्य और राष्ट्रकूट काल में भी आय का प्रमुख साधन भूमिकर ही था। राष्ट्रकूटों की अपेक्षा चालुक्यों के शासन में करों की संख्या

अधिक थी परन्तु तत्कालीन उन्नत सामाजिक जीवन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इन करों का उपयोग प्रजा के कल्याणार्थ ही अधिक होता था। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट शासक जनता से वसूले गये करों को राज्य की समृद्धि तथा विकास के लिए व्यय करते थे। इस प्रकार दोनों राजवंशों की शासन प्रणाली में समृद्धि एवं ऐश्वर्य वृद्धि की समुचित व्यवस्था की गई थी।

चालुक्य और राष्ट्रकूट साम्राज्यों की न्याय व्यवस्था के विषय में स्पष्ट जानकारी तो प्राप्त नहीं होती है परन्तु कुछ लेखों से ज्ञात होता है कि चालुक्य और राष्ट्रकूट शासकों ने प्राचीन भारतीय परम्पराओं पर आधारित रहकर न्याय व्यवस्था स्थापित की। न्याय व्यवस्था का प्रधान राजा होता था। न्याय व्यवस्था के लिए अलग – अलग स्तर पर न्यायालय स्थापित थे। चालुक्य और राष्ट्रकूट न्याय व्यवस्था में स्थानीय ग्राम सभायें एवं अन्य स्थानीय संस्थायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। मंडल, विषय, भुक्ति और ग्रामों में क्षेत्रीय न्यायालय होते थे। दोनों ही कालों की न्याय प्रणाली में दण्ड विधान उदार था और प्रायः अर्थदण्ड ही दिये जाते थे। न्याय व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य सुधारवादी दृष्टिकोंण था।

चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओं ने अपनी साम्राज्य की सुरक्षा के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया था। इन्होंने अपनी विशाल एवं बलशाली सेना की सहायता से ही

विस्तृत भू – भाग पर दीर्घ अवधि तक कुशलतापूर्वक शासन किया। पूर्व प्राचीन परम्परा की भांति इस समय राजा ही सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। राजा के पश्चात् युवराज सैन्य संचालन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। चालुक्य और राष्ट्रकूट सैन्य प्रशासन में गज सेना, अश्व सेना, पदाति का विशेष उल्लेख मिलता है। इन सैन्यांगों के अतिरिक्त चालुक्य सैन्य प्रशासन में एक शक्तिशाली नौ सेना भी मुख्य रूप से विद्यमान् थी। राष्ट्रकूटों की सैन्य व्यवस्था भी निपुण तथा उदार थी और इसी सैन्य संगठन के आधार पर उन्होंने उत्तरी भारतीय अभियान में गौरवपूर्ण सफलताएं अर्जित की थीं। चालुक्य तथा राष्ट्रकूट कालीन सैन्य प्रशासन की प्रमुख विशेषता थी कि उन्होंने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा हेतु विशाल सैन्य संगठन को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए विभिन्न सैन्याधिकारियों की नियुक्ति की थी। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट राज्यों में नियमित सैन्य बल थे। आवश्यकता पड़ने पर सामन्त लोग भी अपनी सेनायें भेजते थे। तत्कालीन अनेक स्रोतों से अस्त्र – शस्त्रों एवं दुर्गादि की आवश्यकता पर भी प्रकाश पड़ता है।

चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राजाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। पूर्ववर्ती कालों की भांति इन राजवंशों के शासकों चालुक्यों और राष्ट्रकूटों ने बाहरी देशों में दूतमण्डल भेजे थे। चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने ईरान के शासक खुसरो द्वितीय

के दरबार में एक दूतमण्डल भेजा था। चालुक्य नरेश सोमेश्वर के मानसोल्लास नामक ग्रन्थ से जो मण्डल सिद्धान्त एवं षाड्गुण्य नीति पर प्रकाश पड़ता है, वह पूर्ववर्ती विचारकों कौटिल्य, मनु एवं कामन्दक आदि से काफी मेल खाता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को स्थापित करने हेतु इन नीतियों का प्रयोग होता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि चालुक्य नरेश प्रायः योग्य एवं कुशल प्रशासक थे। राजा प्रमुख प्रशासक था जिसके सहायतार्थ मंत्रिमण्डल नियमित अधिकारितंत्र था। साम्राज्य के विभागों प्रान्त, जिला एवं स्थानीय स्तर पर संस्थायें प्रशासन में सुचारू रूप से अपनी भूमिकाएं निभाती थीं। चालुक्य नरेशों के शासनकाल में धर्म, कला एवं संस्कृति की उल्लेखनीय प्रगति हुई तथा अर्थ व्यवस्था संतोषजनक रही। इसी प्रकार राष्ट्रकूट प्रशासन में भी राजा सर्वोच्च प्रशासक एवं नीतिज्ञ था। युवराज की प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका थी। राष्ट्रकूट राजाओं की राजसभा प्रशासन की महत्वपूर्ण अंग थी, जिसमें महत्वपूर्ण अधिकारी, सामन्त, दूत एवं स्थानीय अधिकारी उपस्थित रहते थे। विभिन्न प्रशासनिक अनुभागों में स्वायत्तशासी संस्थायें कार्यरत थीं। वे कुशल एवं सुयोग्य शासक थे, जिसकी छत्रछाया में धर्म, कला, अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति के क्षेत्र में विशिष्ट प्रगति हुई।

इस प्रकार चालुक्य और राष्ट्रकूट शासन व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि दोनों ही शक्तियां दक्षिण भारत के इतिहास में अपने - अपने समय की श्रेष्ठतम थीं तथा दोनों ही राजवंशों ने अपने कुशल शासन व्यवस्था से अपने साम्राज्य का अत्याधिक विकास किया। ये दोनों ही राजवंश भारतीय इतिहास में अपनी सुसंगठित शासन व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय प्रशासन, ग्राम प्रशासन, राजस्व व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सैन्य प्रशासन की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। दोनों ही राजवंशों में काफी समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। चालुक्य और राष्ट्रकूट दोनों ही राजवंशों ने प्राचीन काल से चली आ रही परम्परागत विशेषताओं के आधार पर ही आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए दक्षिण भारत के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण उल्लेखनीय योगदान दिया जो कि पूर्ण रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास में विद्यमान् है। जो कुछ असमानतायें दिखती हैं वह राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की गयी थीं।

शासन व्यवस्था के दृष्टिकोंण से दोनों राजवंशों के मध्य असमानताओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

- ❖ चालुक्यों के समय में विभागों का जितना विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है, उतना राष्ट्रकूटों के समय

नहीं होता। राष्ट्रकूटों के समय केवल तत्कालीन कुछ साक्ष्यों से ही विभागों और उससे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है। केवल अनुमान लगाया जाता है कि पूर्ववर्ती शासन व्यवस्था की तरह अनेक विभागों की सहायता से शासन का कार्य संचालित होता होगा।

- ❖ राष्ट्रकूटों के समय उत्तराधिकार के संदर्भ में कभी – कभी ज्येष्ठता के सिद्धान्त का उल्लंघन पाया गया है। यही कारण रहा है कि राष्ट्रकूटों के समय में उत्तराधिकार को लेकर आपसी संघर्ष हुए। इसके प्रभाव आने वाले समय में देखने को मिले और राजकीय पदाधिकारियों, सामन्तों आदि ने इसमें भूमिका निभायी।

- ❖ दोनों ही राजवंशों के अन्तर्गत महिलाओं ने शासन कार्य में काफी सक्रियता दिखाई लेकिन जितने ज्यादा विवरण चालुक्य वंश में मिलते हैं उतने राष्ट्रकूटों के समय में नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि चालुक्य वंशीय प्रशासनिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ – चढ़ कर रही।

- ❖ चालुक्यों ने अपने सैन्य संगठन के अन्तर्गत जल सेना का जितना उपयोग किया उतना सम्भवतः

राष्ट्रकूटों के समय में नहीं किया गया। केवल समकालीन कुछ राजवंशों के साक्ष्यों के आधार पर ही ये अनुमान किया जाता है कि राष्ट्रकूट शासक भी कभी – कभी जल सेना का उपयोग करते रहे होंगे।

❖ सामन्त व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्तों से कर प्राप्त करने के उल्लेख विशेष तौर पर राष्ट्रकूटों के समय ज्यादा प्राप्त होते हैं। कुछ विशेष प्रकार के कर राष्ट्रकूटों के समय ज्यादा लगाये गये प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ जब कोई सरकारी अधिकारी गांव में सरकारी कार्य हेतु रूकता था तो उसका सारा खर्चा गांव वाले ही उठाते थे, यह एक तरह का विशेष कर था जिसका उल्लेख राष्ट्रकूटों के समय में मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि कुछ विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार के कर लगाने की प्रथा राष्ट्रकूट काल में थी।

❖ सामन्ती राज्यों का जितना बोलबाला राष्ट्रकूटों के समय हुआ, उतना सम्भवतः चालुक्यों के समय नहीं हुआ। राष्ट्रकूटों के समय सामन्ती राज्यों की संख्या काफी थी और उन्होंने तत्कालीन राजनीति को प्रभावित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। अधिकांश राज्यों का शासन इन

सामन्तों द्वारा ही संचालित होता था। कभी - कभी यह सामन्त राजा के चुनाव आदि में भी बढ़ - चढ़ कर भाग लेते थे।

इस प्रकार दोनों ही राजवंशों की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक समानतायें और असमानतायें दृष्टिगोचर होती हैं।